

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178874

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No.

H83
T36A

Accession No.

P. G. H615

Author

ठाकुर, रामचन्द्र .

Title

आम्रपाली . 1947 .

This book should be returned on or before the date last marked below.



भारतके प्राचीन लिच्छवी गणतंत्र
में उत्पन्न, अभूतपूर्व, अद्भुत
वीरांगना नर्तकी की मार्मिक कथा

आ म्र पा ली

(भाग १-२)

[ऐतिहासिक उपन्यास]

लेखक

रामचन्द्र झाकृ. एम० ए०

अनुवादक

दाऊलाल लाडू " दर्शन "



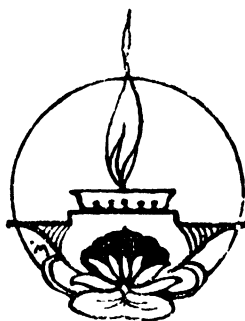
वोरा ऐन्ड कंपनी, पब्लिशर्स, लिमिटेड

२, राउंड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बम्बई नं. २.

प्रथम संस्करण, जनवरी १९४७

मूल्य चार रुपया

Post Graduate Library
College of Arts & Commerce, O. U.



भारतके महान इतिहासवेत्ता
पूज्य
श्री० गौरीशङ्कर ओझा
को
सादर समर्पित !

वक्तव्य

‘आम्रपाली’ गुजरातीके सर्व श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासोंमेंसे एक है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता रा. ब. गौरीशंकर हीराचंद ओभा, तथा प्रसिद्ध साहित्यिक श्री० कन्हैयालाल मुंशी और श्री० मोहनसिंह सेंगर आदिने इस उपन्यासकी कथा-वस्तु और भाषा सराहा है।

गुजरातीके प्रसिद्ध साहित्यकार श्री० रामचन्द्र ठाकुर ‘आम्रपाली’के रचयिता हैं; आप लेखक होकर फिल्म-निर्देशक भी हैं। इसे पढ़ने पर पाठक जान सकेंगे कि इस उपन्यासमें फिल्मोपयोगी प्रतिन्यास Scenerio और संवाद आदिका अज्ञात रूपसे प्रादुर्भाव हुआ है, जो साहित्यमें एक नई चीज है। स्वयं लेखक ने अपनी भूमिकामें इस ओर संकेत किया है।

उपर्युक्त शैलीके अस्तित्वसे उपन्यासकी भाषा शैली और प्रवाहमें गूढ़ता न होकर क्रियात्मकता या स्पष्टता अधिक है, और मेरी समझमें यह शैलीकी एक विशिष्टता है।

भारतकी अंतर-प्रांतीय भाषाओंको एक दूसरे के समीप लानेकी मेरी कई दिनोंसे इच्छा थी, इस बार स्वयं लेखकका भी आग्रह था। इसमें मुझे एक नवीनता मालूम होती है और उत्साह मिलता है, यह जानकर कि इस उपन्यासके मूल भाषा-प्रवाह और शैलीको मैंने कमसे कम परिवर्तित करनेका प्रयास किया है, ताकि इस पुस्तककी रचना शैलीमें जो भी कुछ नवीनताएँ हैं, उनसे हिंदी-प्रेमी अवगत हों, और रस ले सकें।

भारतकी अंतर प्रांतीय भाषाओंके साहित्यमें परस्पर विनियम होता रहे यह मेरी आकांक्षा है; एक देशकी अंतर-प्रांतीय भाषाओंमें समन्वय होना स्वाभाविक भी है।

इस बार मैंने अपनी इसी भावनाको कार्य रूपमें परिणित किया है, यह
सत्साहस है या दुस्साहस, इसका निर्णय स्वयं पाठक करेंगे।

प्रुक्त-संशोधनमें रह गई त्रटियोंके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। अशुद्धिपत्र
अन्यत्र दिया गया है।

अनुवादक

भूमिका

सन् १९३२ में सवाक् चित्रपट काफी ख्याति पा चुके थे; उन दिनों कॉलेजमें पढ़ते पढ़ते आर्थिक कठिनाई उपस्थित होनेसे मैंने चित्रपटके लिए कहानी लिखनेका निश्चय किया।

कॉलेजमें, पाली भाषा मेरा खास विषय था। गुजराती-साहित्यमें पाली भाषाके अवतरण या अंग प्रकाशित करनेके लिए आचार्य धर्मानन्द कोसाम्बी के सिवा अन्य किसीने विशेष प्रयास नहीं किया। इसलिए मैंने उस वक्त साथ साथ यह भी निश्चय कर लिया कि मैं पाली-साहित्यको गुजराती पाठकोंके सम्मुख यथाशक्ति विस्तृत, और विशुद्ध रूपमें प्रस्तुत करूँगा। इसी विचारको लेकर मैंने एक साथ तीन नाटकोंकी तैयारी करना प्रारंभ किया; जिनके नाम 'आम्रपाली' 'अशोक' और 'अरहतबुद्ध' थे। उपर्युक्त परिस्थितिको लेकर सबसे पहले मेरा ध्यान 'आम्रपाली' की ओर गया और उसे चित्रपटके अनुकूल 'पटकथा'के रूपमें तैयार किया।

किंतु, नतीजा कुछ दूरा ही निकला; चित्रपटके निर्माताओंने पच्चीस सौ वर्ष पहलेके भारतीय इतिहासको छूनेसे साफ़ इन्कार कर दिया। तब ही एक मित्रने राय दी कि यदि मुझे सच्ची साहित्यसेवा करनी हो तो इस पटकथाका उपन्यासमें रूपान्तर करूँ। तब ही मैंने उपन्यास लिखना प्रारंभ किया, और दो दो, चार चार महीनोंके अन्तरसे अध्याय लिखते रहनेके बाद ठीक पाँच वर्षोंके बाद इसे समाप्त कर सका हूँ। यथेष्ट प्रयासोंके बाद भी, मैं, पटकथामें लिखे गये चलचित्रके अनुकूल कई प्रसंगोंको इच्छा होते हुए भी दूर नहीं कर सका हूँ।

पाली भाषाका साहित्य, सम्पूर्णतया बौद्धधर्मका ही साहित्य हैं, अर्थात् यों कहें कि भगवान् बुद्धका अथेति इतिहास भी उसीमें सन्निहित है; साथ ही उनके उपदेश, प्रचार, दत्त्वज्ञान आदि भी । मैं इस उपन्यासके द्वारा पाली-साहित्यकी ओर अँगुली-निर्देश कर सका हूँ यह जानकर हृदय पुलकित होता है ।

आज से २६०० वर्ष पहले इस भारत भूमिपर कई प्रकारकी राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक क्रांतियोंका सहसा स्फुरण हुआ था । भारत, 'जम्बूद्वीप' के नाम पुकारा जाता था । अनेक धर्म संस्थापक, अपने अपने अलग सम्प्रदाय बनाकर लोगोंको अपने पंथके अनुयायी बनानेके लिए ग्राम ग्राम विचरण करते रहते थे । आर्यों और अनार्योंका युद्ध तब तक समाप्त हो चुका था । आजकल जैसी मजबूत अथवा संकीर्ण वर्ण-व्यवस्था उन दिनों न थी; स्त्रियाँ घूँघटमें न छुपी रहती थीं । चौथे वेदको कोई पहचानता भी न था । सर्वत्र ब्राह्मणोंकी सर्वश्रेष्ठताका प्रचार जोरशोरसे होता था फिर भी उन दिनों ऐसे बहुतसे क्षत्रिय थे जो ब्राह्मणोंके आचार-पाश तोड़ ताड़ कर स्वतंत्र रहते थे । यद्यपि, इस समय की चार जातियाँ उन दिनों भी थीं; इतना ही नहीं, शूद्रोंको छोड़कर चंडाल, पुकफुसर् तथा पत्नी पकड़ने वाले बहेलिये और रथ बनानेवाले रथकारर की निम्न माने वाली जातियाँ भी थीं । एक तरहसे, इन दिनोंकी अठारहों जातियाँ उस समय भी थीं ।

जम्बूद्वीपमें—भारतमें—छोटे बड़े अनेक स्वतंत्र राज्य थे । केवल उत्तर-भारतमें उस समय सोलह राज्य अवस्थित थे, जिनके नाम अंक्रमे, मगध, काशी, कोशल, वज्जि, मल्ल, चेती, वंस, कुरु, पंचाल, मच्छ, सूरसेना, अस्सक, अवन्ती, गांधार और कम्बोज थे । इनमें अधिकांश प्रांतों का शासन राजा लोग करते थे और कई जगहों पर 'लोकशासन' विद्यमान था । वर्तमान संयुक्त-प्रांत और बिहारमें एकसे अधिक प्रजातंत्र राज्य थे, और उन सबोंमें प्रमुख था—लिच्छवि गणतंत्र ।

ऊपर लिखे गये सोलह राज्योंमें एक वज्जियोंका राज्य था; ये लोग

बहुत शक्तिशाली माने जाते थे । क्षेत्रफलकी दृष्टिसे यद्यपि यह आसपासके राज्योंकी अपेक्षा छोटा था, तथापि उसके एक ओर स्थित सर्वाधिक शक्तिशाली महाकौशल राज्यका महाराजा, और दूसरी ओर उतना ही शक्तिशाली मगध का सम्राट् उससे सदा भयभीत रहते थे । वज्जियोंके आठ 'कुल' थे जिनमें प्रमुख दो ही थे—मिथिलाके विदेही और वैशालीके लिच्छविगण । वज्जिनिवासी कट्टर प्रजातन्त्रवादी थे, किंतु वज्जियोंमें सबसे अधिक अनुशासित, सुन्दर और विशिष्ट शासन लिच्छवियोंका ही था । संसारमें सबसे पहिले प्रजातन्त्र किसने स्थापित किया, इसका निर्णय तो इतिहासकार ही करेंगे, लेकिन इतना निश्चित है कि छब्बीस सौ वर्ष पूर्व, वर्तमान उत्तर-विहारमें एक श्रेष्ठ प्रजातन्त्र विद्यमान था, जिसे 'लिच्छवी-गणतन्त्र'के नामसे जाना जाता था ।

लिच्छवियोंकी राजधानी वैशाली थी । वर्तमान तिर्हुतमें, मुजफ्फपुरसे कुछ दूर, प्राचीन नगरी राजगृहसे लगभग चालीस कोसपर वैशाली नगरी स्थित थी । वैशालीके संथागार^१ में जनता द्वारा चुने गये राजा, उपराजा और नेता गणोंकी सम्मिलित लिच्छवी परिषद् बैठती थी । मि० रिसडेविज्ञान के कथनानुसार ७७०७ लिच्छवी प्रतिनिधियोंका गणतंत्र सारे लिच्छवी प्रदेश पर शासन करता था । उनका अधिष्ठाता कोई महाराजा अथवा सम्राट् न था; संथागारमें वे सब समान थे, एक थे । वर्षमें, निश्चित अवसरोपर वे लोग एकत्रित होते थे । राजनीति और सामाजिक नीतियोंका निश्चय और निर्माण वहीं होता था और उनके अनुसार सम्पूर्ण अनुशासनके साथ उनका शासन कार्यरत होता था, तथा सबोंके द्वारा बिना किसी विरोधके, स्वीकृत भी होता था । बोद्धारिका, अन्तकारिका, सेनापति, उपराजा और राजा ये क्रमवर्ती श्रेष्ठ उपाधियाँ थीं । जनतः द्वारा चुने हुए शासकको 'राजा' कहा जाता था ।

लिच्छवीगण, प्रमुखतः क्षत्रिय थे; किन्तु वे अपने आप-पासके अन्य सभी क्षत्रिय कुलोंसे आचार, विचार और व्यवहारमें बिल्कुल भिन्न थे । लिच्छवीगण अज्ञस्वी, लम्बे और मनोहर शरीरवाले होते थे, और रणक्षेत्र में अजेय योद्धा माने जाते थे । शस्त्रास्त्रोंके खेल उनका मुख्य विनोद होता

था । वे निपुण धनुर्धारी, वन्य कुत्तोंको लेकर आखेटके लिए जाते और अष्टमी चतुर्दशी और पूर्णिमाको मांस-भक्षण करते थे । उनके ऐक्य और अनुशासन की तो गौतम बुद्धने प्रशंसाकी है । प्रत्येक लिच्छवी जन्मजात स्वातंत्र्य-प्रेमी होता था । कई बार उसकी स्वतन्त्र-प्रकृति, स्वेच्छा और क्रूरतामें भी बदल जाती थी । उनके शत्रु, उन्हें हमेशा 'क्रूर' कहकर ही पुकारते थे । स्वभावसे वे सदा स्वतन्त्र थे; और जब तक रहे, स्वतंत्र होकर ही रहे !

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता विन्सेन्ट स्मिथके मतानुसार वे लोग मूलतः तिब्बत के निवासी थे । श्री. विद्याभूषण उन्हें ईरानी मानते हैं; डॉडसन साहब उन्हें 'शक' समझते हैं और बुद्धके प्रमुख शिष्य मोग्गल्लयान उन्हें एक जगह 'वशिष्ठ वंशज' कहकर सम्बोधित करते हैं । कुछ भी हो, वे थे शुद्ध क्षत्रिय ही । उन्हें सुन्दर पोशाक पहिने, तीव्र वेगसे रथ दौड़ाने, युद्ध करने और विलास भोगनेका शौक था । रणक्षेत्रमें वे अजित माने जाते थे, झुकना तो वे सीखे ही न थे ! उन्हें जीतनेके लिए मागधियोंको डेढ़ सौ वर्ष तक युद्ध करना पड़ा और अंतमें अजातशत्रु, कूटनीतिज्ञ सुनीत वर्षकार ब्राह्मणकी सहायतासे उन्हें अपने पक्षमें, मिलानेमें कार्यकारी हुआ । मगधराज अजातशत्रु लिच्छवियोंका भानजा था, ऐसा एक स्थानपर उल्लेख आता है ।

प्रस्तुत उपन्यास एक प्रकारसे उन लिच्छवियोंकी ही कहानी है । मैंने, उनकी शूरता, निर्भयता, आवेश, और अहंभावको इस उपन्यासके पृष्ठोंपर चित्रित करनेका प्रयत्न किया है । ऐसा कहा जाता है कि उन्हें वेदोंमें श्रद्धा न थी । दूसरे शब्दोंमें वहाँ ब्राह्मणोंका जरा भी महत्व न था । उनके स्वातन्त्र्य-प्रिय स्वभावका लाभ अनेक धर्मप्रवर्तक लेते थे; या लेनेका प्रयत्न करते थे । वे लोग सर्वमान्य यज्ञों और देवी देवताओंको पूजते थे । मरनेके बाद वे मनुष्यके शवको जंगलमें, किसी निश्चित स्थानपर पशुपक्षियोंके उपभोगके रख देते थे । उन लोगोंका मुख्य धर्म या कर्तव्य, युद्धप्रिय होनेके कारण स्वदेश और स्वदेशीयके लिए अपना बलिदान कर देना ही था । बहुतेरे ईर्ष्यालु पड़ोसी उन्हें अधर्मी समझते थे ॥ वशालीके संथागारमें लिच्छवी

गणतंत्रकी परिषद राजनैतिक और सामाजिक शासनकी रूपरेखा तैयार करती थी । यदि किसी समस्याका काफ़ी वादविवादके बाद भी निराकरख न होता, तो उनके प्राचीनतम और पूज्य ग्रन्थ प्रवेणी-पुस्तक (पवेणीपोथ्यकम्) को आधार मानकर सभी उसमें दी गई आज्ञाका अनुसरण करते थे । इतना ही नहीं, वे लोग 'प्रवेणीपुस्तक' के द्वारा निश्चित नियमके विरुद्ध एक शब्द भी निकालना महापाप समझते थे । उस परिषदमें प्रत्येक सभासद निःसंकोच होकर आलोचना कर सकता था । किन्तु, एक बार बहुमतसे जो निर्णय परिषद द्वारा स्वीकार किया जाता , उसके बाद प्रत्येक लिच्छवीको प्राण देकर भी उसे शिरोधार्य करना होता था । एक स्वरसे बोलने, और एक विचारसे व्यवहृत करनेवाले लिच्छवियोंका अनुशासन और ऐक्य सभी राज्योंको चकित कर देता था ।

लिच्छवियोंकी अति विलासप्रियता, यही उनका सबसे बड़ा दुर्गुण था । युद्धमें वे जितने क्रूर थे, उतने ही विलासी शारीरिक सुखभोगमें थे । संध्याके बाद वैशालीके बाहर, महाउद्यानमें, विलासी लिच्छवी, नर्तकियों और गणिकाओंको लेकर घूमते थे । एक स्त्रीके लिए मरना मारना उनके लिए खेल था । दूसरे देशों या प्रान्तोंके सामाजिक नियमोंको वे बिल्कुल नहीं मानते थे । उनका स्वतंत्र स्वभाव राजनैतिक हितके सिवा किसी भी बंधनमें बँधना नहीं चाहता था । जिस तरह एक वारमें वे शत्रुका सिर काटते, उतनी ही शीघ्रतासे कोई भी बंधन तोड़ना आसान था, और उसी तरह प्रेम करना भी । सचमुच वे दुर्दम्य और दुर्जय थे !

और इन्हीं लिच्छवियोंने, संसारको, अहिंसाका महान क्रांतिकारी पुरुष प्रदान किया है; जगतके एक महान धर्मप्रवर्तक श्री महावीर स्वामी वैशाली के थे । गुप्तवंशका मगध सम्राट चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी पाटलिपुत्रपर सम्मिश्रित शासन करते थे । ये दोनों प्राचीन भारतवर्षके अद्वितीय युगल हैं । यही कुमारदेवी एक लिच्छवी कन्या थी । लिच्छवियोंने ही अपनी एक

१ कुंडनग्राम—वैशालीके एक ग्राममें जन्म । २—क. मा. मुंशी कृत ध्रुवस्वामिनी देवी ।

राजकुमारी चेलना, मगधराज बिंबिसार श्रेणिकको महारानी पदके लिए भेंट की थी; और इन्हीं लिच्छवियोंने प्रख्यात नर्तकी आम्रपालीको भी जन्म दिया ।

आम्रपालीके विषयमें अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं । थेरीगाथा^३ का टीकाकार उसके एक पुनर्जन्मका विवेचन करके कहता है कि एक भूलके कारण, वैशाली नगरीके बाहर, एक बड़े उद्यानके आम्रवृक्षके नीचे वह स्वयंभू प्रकट हुई । उस उद्यानके मालीने उसे पाला पोसा । आम्रवृक्षके नीचे पायी जानेके कारण उसका नाम आम्रपाली रखा गया । बड़ी होनेपर वह अनूप सुन्दरी अनेक लिच्छवी राजकुमारोंमें स्पर्धा और परस्पर कटुता उत्पन्न करनेकी कारण बनी । निदान उसके लिए नर्तकी बननेका अंतिम निर्णय किया गया । दुल्वके कथनानुसार जो युवती प्रचंड द्वन्द्वकी कारण बनती, उसे लिच्छवि गण विवाहके योग्य न समझते थे, उसे लोकरंजनके लिए अविवाहित रहना होता था; इसलिए आम्रपालीको भी नर्तकी बनना पड़ा । अनेक वर्षोंके बाद अपने पुत्र विमल थेरके उपदेशसे पालीको ज्ञान प्राप्ति हुई । उसने संसार-त्याग किया और गौतम बुद्धकी शरणमें, मिश्रुसंधकी एक उच्चकोटिकी थेरी बनी ।

महा परिमिब्बान सुत्त^४ में उल्लेख किया गया है कि आम्रपालीने गौतम-बुद्धको उनके मंघके साथ अपने यहाँ भोजनके लिए निमंत्रित किया था; बुद्धने भी अन्य निमंत्रणोंको छोड़कर पहले इस नर्तकीका ही निमंत्रण स्वीकार किया । उसके बाद आम्रपालीने एक बिहार (मठ) बंधवाकर मिश्रुसंधको भेंट किया । पालीत्रिपिटकमें इन दो प्रसंगोंका एकसे अधिक बार उल्लेख किया गया गया है । आम्रपालीका दूसरा उल्लेख अवदानकल्पलताके पाल्यावदानमें है, किंतु यह पुस्तक पाली भाषामें नहीं है ।

मूल बौद्ध धर्मका साहित्य 'पाली त्रिपिटक' में ही समाप्त होता है; 'पालीत्रिपिटक' बौद्ध धर्मके वे आधारभूत २६ ग्रन्थ हैं, जिन्हें तीन भागोंमें विभाजित किया गया है ।

प्रत्येक विभागको पिटक कहते हैं। तीनों भाषाओंके नाम विनयपिटकम्, सुत्तपिटकम् और अभिधम्मपिटकम् २ हैं। प्रस्तुत उपन्यासमें वर्णित सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक घटनाएँ इन्हीं ग्रन्थोंके आधारपर लिखी गई हैं—विशेषकर सुत्तपिटकम्के आधारपर। पात्रोंको भी पाली-साहित्यके अनुरूप ही चित्रित करनेका प्रयास किया है। उदाहरणके तौरपर, प्रख्यात विद्वान प्रो० जेकोबी अपने 'जैनसूत्रों' की प्रस्तावनामें, सुत्तपिटकम्के मज्झिमनिकाय' ग्रन्थों और अन्य पाली ग्रंथोंमें उल्लिखित 'निगगठोनाटपुत्तो' (निग्रंथो ज्ञातपुत्रो) को महावीर स्वामी सिद्ध करनेका प्रयास किया है, और वर्तमान जैनोके पूर्वजोंका उस समयके निग्रंथोंके रूपमें ही उल्लेख किया है, 'जैन' रूपमें नहीं।

इस तरह ऊपर लिखे अनुसार इस ग्रंथमें ऐतिहासिक घटनाएँ बहुत कम हैं। आत्मपाली, विमल, बिबिसार, पाटिक पुत्र ऐतिहासिक पात्र हैं। पाली साहित्यमें न होते हुए भी, जिन घटनाओंकी उपन्यासकी रूपरेखामें नितान्त आवश्यकता थी; ऐसी अनेक घटनाएँ दूसरे आधारोंसे ली गई हैं। बहुतसे पात्र मेरी कल्पनाके हैं लेकिन उनके आचार-विचारोंका चित्रण आधारभूत ग्रन्थोंसे प्राप्य, उस समयके समाज और राजनीतिके अनुरूप ही है।

मैं यह नहीं जानता कि ऐतिहासिक उपन्यास मुख्यतः इतिहास होता है, या ऐतिहासिक नींवपर खड़ी की गई कल्पना की इमारत; किन्तु इस पुस्तकके लिखनेका मेरा उद्देश्य इतिहास-दिग्दर्शनकी अपेक्षा छठी-सातवीं शताब्दी ईस्वी पूर्वके समाज और मनुष्योंका दिग्दर्शन करना विशेष है। मैंने मुख्य आधार पाली भाषाके ग्रन्थोंका ही लिया है, लेकिन साथ ही साथ

१—संग्रह, २—समर्थ टीकाकार बुद्धिघोष अपनी 'अट्टसालिनी' में इन तीनों पिटकोंका क्रमशः 'आणादेसना' 'बोहार देसना' और 'परमत्थ देसना' के रूपमें उल्लेख करते हैं; जिनके विषय, भिक्षुओंको आज्ञाका उपदेश, संसारियोंको व्यवहारका उपदेश और संसारत्यागियोंको परमार्थ, निर्वाण और तत्त्वज्ञानका उपदेश है।

दूसरे ग्रन्थोंकी भी संहिता ली है, जिनकी सूची अन्यत्र दी गई है। जहाँ तक हो सका है, पात्रोंके नाम पाली भाषामें ही रखे हैं।

जैसा कि मैंने कहा है, उपन्यास लिखनेका यह मेरा पहला प्रयास है। मेरा मुख्य उद्देश्य विचारधारा और मननीय प्रसंगोंको ऐतिहासिक पात्रों द्वारा प्रस्तुत करना ही रहा है।

यदि मेरा यह प्रयास प्रोत्साहनके योग्य होगा तो, भूमिकाके प्रारम्भमें उल्लिखित कथाओं और मूल पाली ग्रन्थोंको पाठकों और साहित्य रसिकोंके सम्मुख प्रस्तुत करनेमें अपनी सामर्थ्यानुसार कुछ भी उठा न रखूँगा; और उसे अपना सौभाग्य समझूँगा।

श्री कन्हैयालाल मुंशीने पांडुलिपि पढ़कर इस पुस्तककी जो महत्ता प्रदर्शित की है, इसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। इसी तरह मैं बम्बईके 'प्रिन्स ऑफ बेलस' म्यूजियमके विद्वान क्यूरेटर श्री० रण-छोडलाल ज्ञानीका भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे कई अप्राप्य आधारभूत ग्रन्थ पानेमें मदद दी है।

गुजरात और गुजरातीका मैं जन्मतः ऋणी हूँ, जिसको लेकर आम्नपाली-के प्रारंभ करनेका मूल हेतु भी अंतमें कार्यकारी हुआ है। लक्ष्मी प्रोडक्शंस-के साहित्य प्रिय अधिष्ठाता श्री० चिमनलाल त्रिवेदीके संभूत उत्साह और गुजरातके कलाप्रिय दिग्दर्शक, नन्दलाल जसवन्तलालके प्रयत्नोंके परिणाम-स्वरूप आज 'आम्नपाली' चित्रपट (फ़िल्म) के रूपमें हिन्दुस्तानके सम्मुख प्रस्तुत हुई है; मैं इन दोनों महानुभावोंका आभारी हूँ।

(तृतीयावृत्तिसे)

रामचन्द्र ठाकुर

आधार-भूत ग्रन्थोंकी सूची

पाली

१. तिपिटकानि (तिपिटक)
२. अट्ठसालिनी (बुद्धघोष)
३. धम्मपद अट्ठकथा
४. महावंस (सिंगली)

संस्कृत

१. अवदान कल्पलता (जमेन्द्रकृत)
२. दिव्यावदान
३. अवदानशतक

गुजराती

१. २५०० वर्ष पूर्व नुं हिन्दुस्तान
२. सेणिय बिबिमार (जैन कार्यालय, सुशीलकृत)

हिन्दी

१. अम्बपाली रामरतन भटनागर 'हज़रत'
२. अज्ञात शत्रु श्री० जयशंकर 'प्रसाद'
३. बौद्धकालीन भारत श्री० जनार्दन भट्ट बी. ए.
४. प्राचीन-भारत हरिमंगल मिश्र एम. ए.
५. भारतके प्राचीन राजवंश विश्वेश्वरनाथ रेड्डी
६. प्राचीन भारत गंगाप्रसाद मेहता एम. ए.
७. मगधका प्राचीन इतिहास रामशरण उपाध्याय

अंग्रेज़ी

१. बुद्धिस्ट इंडिया टी. डब्ल्यू. रिसडेविङ्ग
२. बुद्धिज़्म "
३. बुद्धिस्ट सूत्राञ्चल "
४. सॉम्स ऑफ़ सिस्टर्स श्रीमती रिसडेविङ्ग
५. जातकाञ्च रॉबर्ट चामर्स
६. पाली लिटरेचर ऑफ़ बर्मा एम. एच. बोड
७. ए हिस्टरी ऑफ़ सिविलिजेशन इन एन्शयन्ट इंडिया आर. सा. दत्त
८. अर्ली हिस्टरी ऑफ़ इंडिया ए.विन्सेन्ट स्मिथ
९. एन्शयन्ट इंडिया विलियम रॉबर्टसन
१०. जैन सूत्राञ्चल हरमन ज़कोबी
११. ए मॅन्युल ऑफ़ इण्डियन बुद्धिज़्म एच. कर्न
१२. एन्शयन्ट इण्डिया एस. के. आर्यगर
१३. विमेन इन बुद्धिस्ट लिटरेचर डॉ० विमलचरण लॉ.
१४. ज्योप्रॉफ़ी ऑफ़ अर्ली बुद्धिज़्म "
१५. सम धर्त्रिय ट्राइङ्ग ऑफ़ एन्शयन्ट इण्डिया
१६. राजगृह इन एन्शयन्ट लिटरेचर
१७. बुद्धिज़्म प्रिमिटिव एन्ड प्रेजन्ट इन मगध एण्ड सीलोन
१८. बुद्ध, एन्ड ए गॉस्पेल ऑफ़ बुद्ध
१९. लिटररी हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत बुद्धिज़्म
२०. बुद्ध
२१. पाली एण्ड संस्कृत

आर. कोप्लिस्टन
 ए. के. कुमार स्वामी
 के. नरीमान
 ओल्डनबर्ग
 आर. ओ. फ्रैंक



आम्रपाली

आम्रपाली



(१)

‘चिरंजीव, तू किसलिए जीता है ?’

‘अपनी पत्नीको विधवा नहीं देखना चाहता इसलिए ।’

‘तुझे जीनेका कुछ अधिकार नहीं है !’

‘क्यों ?’

‘तू युवक है पर तुझमें युवकके प्राण नहीं!’

‘सचमुच ?’

‘हाँ, तू वीर है पर व्यर्थ है, तू ... तू मनुष्य होकर भी पत्थर है... पाषाण है!’

‘वाह ! वाह !! इस सुन्दर प्रशंसाके लिए धन्यवाद ! पर कृपया यह समझाओगे सुधीर, कि मनुष्य होते हुए भी, तुम्हारी दृष्टिमें, पत्थर और मुक्त में कुछ भी अन्तर क्यों नहीं है ?’— शिर जरा नीचे झुकाकर, विनोदी चिरंजीवने, क्रोधित सुधीरको, और अधिक चिढ़ानेके ढंगसे पूछा ।

सुधीरका रक्त खौल हुआ, उसकी इच्छा हुई कि नीचे झुके हुए उस चिरंजीवका शिर ही तोड़ दे, फिर भले ही अपने परम मित्रको मार डालनेके अपराधमें ‘प्रवेणी-पुस्तक’ जो दंड दे उसे स्वीकार करना हो, और मरनेके बाद जो

नरक मिले उसे भी भोगनेके लिए तैयार होना पड़े—पर उसे यह क्रोध दवाना पड़ा क्योंकि इसके सिवा दूसरा मार्ग ही न था बोला—

‘चिरंजीव, तू पत्थर भी नहीं मिट्टीका ढेला है ढेला, समझा । तुझपर जरा भी विश्वास नहीं किया जा सकता । तू मेरा मित्र नहीं, तू मे ...

‘सुधीर !...’ चिरंजीव सिर उठाकर बीचमें ही बोल उठा—‘तू कहे -उसे, मैं मारनेको प्रस्तुत हूँ, मैं स्वयं मरनेको तैयार हूँ, पर तू एक लड़की को देखनेके लिए परगँवमें एक पराये घरमें घुस जाय और मैं तेरी प्रतीक्षामें बाहर चक्कर काटूँ, यह तुझसे नहीं होता... हो ही नहीं सकता !’

‘चिरंजीव!’ अचानक सुधीर, चिरंजीवके पास झपट आया और विरोध दिखाकर बोला—‘उसे लड़की मत कह, आम्रपाली लड़की नहीं युवती है, युवती, समझा ?’

‘हाँ,हाँ, भाई युवती है, सुन्दर युवती है, अद्भुत है, अप्सरा है, किन्नरी है बस ! गाँवसे निकलकर यहाँ वैशाली नगर आनेमें दोपहर तक उसके लिए जो भी तू बड़बड़ाया वह सब कुछ यह युवती ही है, पर इसके लिए संथागारमें जाना छोड़कर तुझे पहरा देनेके लिए खड़ा रहूँ ? मैं इतना अधम नहीं हूँ ! यदि आम्रपाली से तुझे प्रेम ही करना हो तो कर, उसके घरमें ही आत्महत्या करनी हो तो वह भी कर, मुझे कोई एतराज नहीं; पर मैं लिच्छवी हूँ, क्षत्रिय हूँ ! आम्रपालीके लिए तेरी प्रेम-तपस्यामें, मैं कदापि नहीं पड़ सकता । मुझे संथागारमें उपस्थित होना ही चाहिए । कठिनाईसे तीन महीनेमें एक दो बार सम्मिलित होनेवाले लिच्छवि राजाओंकी शौर्य-प्रेरक सभा छोड़कर यहाँ तेरा द्वारपाल बनूँ ? कभी नहीं ।’

प्रेमी मनुष्य जितना विचित्र है, स्वयं प्रेम उतना विचित्र नहीं होता; चिढ़ा हुआ सुधीर सहसा द्रवित होकर उसे समझाने लगा— ‘चिरंजीव, प्रिय मित्र ! ऐसा न कह; मुझे अधिक समय न लगेगा ! तू भगवान बुद्धका सौ बार नाम लेगा इतनेमें तो मैं आ ही पहुँचता हूँ ।’

‘मैंने अभी भी शाक्यपुत्र गौतमका धर्म स्वीकृत नहीं किया है !’ गंभीर

मुँह बनाकर चिरंजीवने कह सुनाया ।

सुधीर समझा नहीं बोला—‘मेरा तो मन ठिकाने नहीं और तुझे विनोद सूझा है; चिरंजीव ! महलमें आते ही मैं तीर फेंकू तो समझ लेना कि कार्य सफल हुआ है; यहीं, तेरे पैरके आगे ही तीर आयेगा । तू तो जानता ही है कि धनुर्विद्यामें तू मुझे नहीं पहुँच सकता ! कह चिरंजीव हाँ कह केवल हाँ ! नहीं तो मेरा सारा श्रम मिट्टीमें मिल जायगा !... फिर शीघ्र ही हम समय पर संधागार पहुँच जाएँगे ।...

‘पर...’

‘बस’ उसका मुँह बन्द करते हुए, सुधीर बोला— ‘आम्रपालीको तूने देखा नहीं इसीलिए आनाकानी करता है, पर यदि तू एक बार उसे देख ले...

‘—तब ? तूने उसे कब देखा ? पाँच वर्ष पहिले ही न ? उस समय तेरी अवस्था युवतियोंके सौंदर्य निहारनेकी नहीं थी; मैं तेरे साथ ही था, मैंने आम्रपालीको नहीं देखा और तूने भी नहीं । मूर्ख, तुझ जैसे कितने ही नव-युवक पाली को देखे बिना ही उससे प्रेम करते हैं, यह तू जानता है ? तू कोई नई बात नहीं कर रहा है !’

‘चिरंजीव, तू विवाहित है, मेरी दशा तू नहीं समझेगा !’

‘ठीक है; ब्याहे हुए व्यक्ति जवान थोड़े ही होते हैं; किन्तु इतना तो मैं दीपकके समान देखता और समझता हूँ कि तू मूर्ख है !’

सुधीर मुँह फाड़कर चिरंजीवकी ओर देखने लगा । एक क्षण कोई नहीं बोला । सहसा चिरंजीवके मुखपर कृत्रिम क्रोध और विनोदके चिन्ह दृष्टि-गोचर हुए, वह फड़क उठा—‘मूर्ख, क्या कोई प्रेम करनेवाला नवयुवक इस तरह बातोंमें समय गँवाता है ? लिच्छवी का पुत्र, नन्दीग्रामका युवक, चिरंजीवका मित्र होकर ! अरे, आगे बढ़, दौड़ ! झपट !! नहीं तो वैशाली नगर का ही कोई दूसरा युवक भाग्यशाली होकर—’

चिरंजीव वाक्य पूरा करे उसके पहिले तो सुधीर वैशालीके महाराजा महानामके नैभवशाली प्रासादमें अदृश्य हो गया ! मुखपर हल्की मुस्काह लाकर चिरंजीव अपने उत्तरीयसे ललाट परके स्वेदबिन्दु पोंछने लगा ।

सुधीर और चिरंजीव, दोनों युवक थे; यौवनका ओज उनके अंग अंग पर विकसित था; लिच्छवियोंका शुद्ध रक्त उनकी नस नसमें हिलोरें लेता था ! वैशालीसे थोड़ी ही दूर स्थित एक ग्रामसे वे अभी ही वैशालीमें आये थे।

पच्चीस सौ वर्ष पूर्वके भारतमें—जंबूद्वीपमें, लिच्छवीका नाम लेते हुए प्रत्येक क्षत्रिय युवक, एक प्रकारके विचित्र गौरवका अनुभव करता था।

उन महाप्रतापी लिच्छवियोंका वर्णन अर्थात् स्वतन्त्र प्रजा की कथा—स्वतन्त्रता की कहानी है; बल्कि उससे भी अधिक एकता की कथा है। कहा जाता था कि हिमालय को तोड़ना सरल है किन्तु लिच्छवियों की पंक्ति विच्छिन्न करना अशक्य है ! लोग मानते थे कि लिच्छविगण अजेय हैं। भगवान बुद्धने भी एक प्रसंग में कहा था कि 'जहाँ तक लिच्छवियोंमें साम्य और एकता है वहाँ तक उनको कोई जीत नहीं सकेगा।'

ऐसे शूर थे वे लिच्छविगण—रणवीर और अजेय; निर्भय तथा स्वातंत्र्य प्रेमी !

लिच्छवियों का राज्य ही विभिन्न प्रकार का था; वे कहलाते तो क्षत्रिय ही थे; उन्होंने अपने सम्बन्ध भी अन्य क्षत्रिय वंशों से जोड़े थे—परंतु रीतिरिवाजोंमें तो वे अपने पूर्वजोंका ही अनुकरण करते थे; उन पर किसी सम्राटका शासन न था, गुलामीको वे पहिचानते तक न थे। युद्धमें उत्सर्ग होनेमें ही प्रत्येक लिच्छवि अपने जीवनकी सार्थकता समझता था; वे जहाँ जाते जीतते थे, जहाँ हारते वहाँ उत्सर्ग होते थे। मगध, कौशल, शाक्य, काशी—इन सब राज्यों की तेजस्विता लिच्छवियोंके आगे मन्द पड़ गई थी। लिच्छवियोंके तीर और लिच्छवीका प्रेम, अचूक गिने जाते थे।

लिच्छवि-प्रदेशकी छोटी छोटी जागीरोंके अधिपति 'राजा' कहलाते थे। ऐसे सब राजा, उपराजा और महाराजा, वर्षमें किन्हीं निश्चित दिनों को, और विशेष आवश्यकता होने पर कभी भी, राजधानी वैशालीमें सम्मिलित होते थे। नगरके मुख्य सभा-पराडप-संथागारमें वे सब बैठते थे। वहाँ वे उन सभी सामाजिक, राजनैतिक और दूसरे विषयों पर, जो कि समस्त लिच्छवि समाज अथवा देश पर प्रभावकारी होते, वार्तालाप करते थे। प्रत्येक व्यक्ति स्वतः-

न्त्रता से बोल सकता, और समय आने पर लड़ भी सकता था। यदि वाद-विवाद उम्र होने पर, कोई मार्ग न मिलता तब, लिच्छिवियोंके पवित्र और अमूल्य 'प्रदेणी पुस्तक' के आधार पर अंतिम निर्णय किया जाता, और वही मार्ग निश्चित और अंतिम माना जाता था। 'प्रदेणी-पुस्तक' के आधार पर, सन्थागारमें एक बार निर्णय हो जानेके पश्चात् कोई उसका विरोध नहीं कर सकता था, क्योंकि ऐसा करना देशद्रोह और पाप माना जाता था। उस समय सच्चा और आदर्श प्रजावाद जीवित था। प्रायः हिमालयकी गोदमें स्थित, लिच्छिवियोंका यह प्रदेश, पूरे प्रायद्वीपमें अनुपम था।

लिच्छविगण वेदोंको प्रामाणिक नहीं मानते थे; ब्राह्मणों पर वे दृष्टिपात न करते थे; क्योंकि निरर्थक भोजन, धनव्यय और तदनु रूप व्यर्थ बातें उन्हें पसन्द न थी। उनमें चार वर्णोंका भेदभाव न था; किसी को भी स्वतन्त्रता से रहने, बोलने, तथा जीनेकी सुविधा थी, और इसीलिए दूसरे राष्ट्रों से पूरे सम्पर्क होते हुए, और उनके रीतिरिवाजोंके अनुसार रहते हुए भी तथा स्वयं क्षत्रिय और भारतीय कहलाते हुए भी वे पूर्वजोंके शौर्य और परम्परापर ही चलते थे, और इसीलिए वे सबोंसे, विभिन्न हो गये थे।

सुधीरकी बात सच निकली; अभी तो चिरंजीवकी साँस भी धीभी नहीं हुई थी कि, आम्रपाली के उस परम प्रेमी सुधीर का तीर, चिरंजीवके पास ही के छोट्टेसे गुलाबके पौधेमें घुस गया। चिरंजीवके प्रसन्न हो कर, पीछे देखते-ही दूसरे तीर भी आ गिरे; उनके पीछे धनुष, और उसके साथ ही तरकश भी आ गया। उसके बाद तरक्षण ही सुधीर का मुकुट आया, और मुकुटका साथ छोड़नेकी मनशा न हो इस तेजसे सुधीर का पूरा शरीर चिरंजीव के पैरों आगे आ पड़ा।

चिरंजीव विस्फारित नेत्रोंसे देखने लगा कि एक अत्यन्त सबल मनुष्य हाथं मलता और किटकिटाता हुआ दूर खड़ा था। चिरंजीवने अपने पैरों में लौटते सुधीरको देखा।

अपमानित सुधीर फिर से अवश्य महलकी ओर भागता किंतु चिरंजीव अपने मित्रकी वीरताको फिरसे धूलमें रौंदती देखना नहीं चाहता था; उसने

दूर खड़े हुए राक्षसी दासका बल निमिषमात्रमें माप लिया और अधिक देर किये बिना, सुधीरको, उसके मुकुट और धनुषबाण सहित बाहर खींच ले गया। इतना ठीक था कि चिरंजीव शारीरिक बल और चतुराईमें सुधीरसे विशिष्ट था, नहीं तो, ...

‘नहीं तो क्या करता ?’ चिरंजीवने सुधीरको कठिनता से रथमें डालकर संथागार ले जाते हुए, पूँछा।

‘क्या करता ?’ सुधीर, क्रोधमें तीर सम्हालते हुए बोला।

‘हाँ, हाँ, क्या करता ? गांधार का वह पहाड़ी शरीर वाला द्वारपाल तुम्हें वक्ष से मसलकर रोटीकर डालता ! आम्रपाली का एक अति विनीत प्रेमी, उसीके दासके हाथसे पिटकर मरे, यह देखने की तुम्हें जरा भी इच्छा न थी।’

‘उहँ, बाण मेरे पास ही पड़े थे, वह पास आता उसके पहिले तो मैं, उसे उसके पूर्वजोंके पास स्वर्गमें पहुँचा देता !’

‘फिर वही भूल ! मान ले कि तू उसे मार ही डालता, उसके बाद तो आम्रपालीके पिता महानाम और लिच्छवियोंके नेता ‘प्रवेणी पुस्तक’ लेकर ही बैठते ! तुम्हें संथागारमें घसीट कर ले जाया जाता; अनेक शूरवीरोंके बीच मैं, प्रेम करने जाते हुए, चोरी करनेका दोष भी तेरे ही सिर मढ़ा जाता; लोग हँसने लगते; एक दास को मार डालने की कायरता तेरे नामके साथ लगती; और लिच्छवियों का एक बलवीर युवक, एक भी युद्धमें लड़े बिना, एक भी स्त्रीका प्रेम पाये बिना, देशहितका एक भी कार्य किये बिना, कायर की मौत मर जाता ! इतना ही नहीं बल्कि हमारे गांवके लिच्छवी युवकोंके बुद्धिबल और शक्ति पर ही कलंक क। टीका लग जाता ! . . . इसलिए एक मित्र समझकर ऐसे पाप से तुम्हें बचाना, मेरा कर्तव्य था।

सुधीर बिना चाहे भी हँस ही पड़ा; बोला--‘बोलनेमें तो, मैं तुमसे सदा हाँऊंगा ही’ . . .

‘छिः, पर मान, कि वह लड़की मिलती नहीं, वह युवती मिली होती

तब तू क्या करता सुधीर ? '

‘आम्रपाली थी ही कहाँ ? कुछ निराश होकर सुधीर बोला—‘वह तो अपने गांव, नन्दीग्राम गई है’

चिरंजीव, सुधीर की निराशाका मन्तव्य समझ गया । उसके मुखपर एक हल्की-सी स्मितरेखा खिल गई । सहसा चाबुककी भनक सुनाई दी; घोड़े उछले, रथ की गति तीव्रतर हुई और सुधीर ने चौंककर चिरंजीव की ओर देखा ।

‘क्यों, यह क्या करता है, चिरंजीव ?

‘नन्दीग्राम जाना है !’ चिरंजीव ने कहा । संथागारकी सभा समाप्त होनेके पहिले तो मुझे यहाँ आना ही चाहिए !’

(२)

‘लिच्छवियों !’ वायुमें कम्पन उत्पन्न करनेवाला, रण-हुँकारके समान वह नाद सबोंने सुना और लिच्छवियों से उमड़ते हुए वैशालीके संथागारमें शब्दों और शस्त्रोंके एक क्षणके निनाद के बाद वहाँ नीरव शांति फैल गई । सभामें बैठे हुए प्रत्येक राजा और उपराजा की दृष्टि, सर्वश्रेष्ठ प्रतिभावान लिच्छवि गणनायक महानाम पर जा लगी । सिंहकी एक दहाड़ जिस प्रकार बन के प्रत्येक प्राणीको जागृत कर देती है, वैसे ही वृद्ध महानाम का प्रचंड कंठरव प्रत्येक लिच्छवी का हृदय चेतन करनेके लिए पर्याप्त था ।

‘लिच्छवियों !’ तीक्ष्ण दृष्टि डालकर महानामने कहा—‘वज्जिभूमि लिच्छवियों की स्वतन्त्र भूमि है; वह किसी एक लिच्छवी की नहीं, प्रत्येक लिच्छवी उसका पुत्र और रक्षक है ! जहाँ तक लिच्छवियोंका सिंहनाद वैशालीमें सुनाई देता है, जहाँ तक हममें साम्य और एकता है, वहाँ तक मागधी युवराज बिंबिसार जैसे सैकड़ों बिंबिसार, वैशाली की तिल भर पृथ्वी को भी नहीं छू सकते ! मागधी अपने लिप्सित आक्रमणोंसे हमारे शत्रु बने हैं; और मागधी युवराज बिंबिसार भी हमारा शत्रु है !’

‘तत्क्षण, चारों दिशाओंसे एकही ध्वनि उठी—‘बिंबिसार हमारा शत्रु है !

‘कट्टर शत्रु !’ एक युवक बीच में ही चिल्ला उठा; हर एक की दृष्टि, जिस ओरसे यह आवाज आई थी वहाँ जा लगी—यह चिरंजीव था। सहसा आवेशमें आकर वह बोल उठा, क्योंकि दो वर्ष पूर्व उसका पिता भी एक मागधीके हाथों मरा था। क्षणिक निस्तब्धताके पश्चात् आसपासके सभी युवक एकाएक बोल उठे—‘बिंबिसार हमारा कट्टर शत्रु है !’

अनुभवी वृद्धोंने युवकोंको देखकर अनुमोदन किया; वृद्ध महानाम भी गांभीर्य छोड़कर गुनगुनाये—‘कट्टर शत्रु !’ अन्तमें सभाति महानाम खड़े हुए: सामने ही, संथागारके बीचोबीच, स्वर्णजटित पाट पर, सोनेसे गुँथे हुए सुंदर पतले रेशमी वस्त्रमें रखे हुए ताड़पत्रों पर हाथ रखकर वे गंभीरता पूर्वक बोले—

‘सभासदों ! पवित्र प्रवेणी पुस्तक के आदेशानुसार आज हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हमारा देश पराजित करनेको उद्यत मागधियोंके साथ हम किसी प्रकारका सम्बन्ध न रखें ! यह प्रतिज्ञा सब सभासदोंको स्वीकार हो ! जिसे कुछ कहना हो वह राजा, उपराजा या महाराजा सभाके सम्मुख अपना विरोध प्रस्तुत करे !’

महानामके बोलनेके बाद संथागारमें फिरसे पूर्ववत् शांति छा गई। कुछ समय पश्चात् चारों ओर दृष्टि डालकर, उन्होंने उक्त प्रतिज्ञा दूसरी बार दोहराई; किन्तु सब शांत रहे। तीसरी बार फिर वही प्रतिज्ञा कही, किसीने शब्द तक न निकाला ! अन्तमें, सबको शांत देखकर वे बोले—‘सभाजनों ! सभाकी यह शांति बताती है कि यह प्रतिज्ञा सबको स्वीकृत है; मैं लिच्छवि-गणकी इच्छानुसार आज्ञा करता हूँ कि इस समयसे, मागधियोंके साथ संबंध रखनेवाला लिच्छवी देशद्रोही समझा जाएगा !’

अंतिम शब्दोंके पूरे होते ही सभागृहमें एक गगनभेदी तुमुल नाद उठा—‘मागधियोंसे संबंध रखनेवाला लिच्छवी देशद्रोही है !’

देशद्रोह, विशेषकर लिच्छवियोंमें, घोर अपराध माना जाता था; ऐसा अपराध कि जिसका कोई निवारण ही न था ! लोग देशद्रोही पर थूकते,

पत्थर फेंकते, उसके सब कुटुम्बी तो मानों जीते जी ही मृत हो जाते थे। छोटे छोटे बालकोंको नैतिक भय दिखानेको, या युवकोंमें तिरस्कार की घृणा प्रज्वलित करनेके लिए देशद्रोहीके नामका घृणात्मक उदाहरण दिया जाता था, और वह भी यहाँ तक कि या तो देशद्रोहीके आत्मीयोंको आत्महत्या करनी पड़ती या स्वदेश छोड़कर ही भाग जाना पड़ता !

... उसी क्षणसे लिच्छवी संथागार द्वारा किया हुआ वह निर्णय समस्त देशके लिए अनुलंघनीय आज्ञा बन गई। सभा विसर्जित हुई।

संथागारसे बाहर निकलनेके बाद प्रत्येक व्यक्ति महानामकी प्रशंसा कर रहा था। उनके प्रभावसे हर कोई प्रभावित था: वैशालीका प्रत्येक महानकार्य उनके प्रोत्साहन और सम्मतिसे होता था। संथागारसे निकला हुआ उनका गर्जन, देशके कोने कोनेमें गुंजायमान होता था। उनका मुख, सदा ही शांतिमयी मन्द मुस्कानसे विकसित रहता था। वे शायद ही कभी जोरसे बोलते थे, किन्तु जब बोलते तब हुंकार करते थे ! उस समय किसी लिच्छवी का साहस न होता कि वह उनके सामने जाकर खड़ा रहे; सब कोई केवल सुनते ही रह जाते थे। हाँ, जब किसी कारणवश उनका हृदय अत्यन्त क्षुब्ध हो उठता और कोई अन्याय उनके लिए असह्य हो उठता तब ही उन्हें अपना बोल तेज करना पड़ता था !

आजकी सभा होनेका कारण असाधारण था। लिच्छवियोंका, उनके पड़ोसी मागधियोंके साथ आंतरिक वैमनस्य बहुत समयसे चला आ रहा था। स्वातंत्र्यप्रिय लिच्छविगण, साम्राज्यवादी मागधियोंके साथ हर किसी विषय पर लड़ पड़ते थे। सत्ता, विजय और शौर्यके मदमें मदमाती मागधी राज-पुरुषोंकी आँखें, उन अजेय, दुर्विनाश लिच्छवियोंके स्वतन्त्र ऐश्वर्य पर जमी हुई थीं। किन्तु साथही साथ वे, लिच्छवियोंको भलीभाँति पहिचानते भी थे।

मागधियोंके अनेक प्रलोभनोंको लिच्छवियोंने तिरस्कृत कर दिया था। सरल और शक्तिमान लिच्छवियोंने मागधियोंके अगाध वैभव और सुखसाधनों को दुतकार दिया था। वे मागधियोंको शत्रु न मानते हुए भी उनसे सम्बन्ध जोड़नेमें हिचकिचाते थे। दोनों राज्योंमें संबंध पहिलेसे स्थापित होते हुए, भी

शनैः शनैः आपसमें कलहकारक प्रसंग उपस्थित हो ही जाते थे। इसलिए जब मार्गधियों की सार्वभौम सत्ता की महत्वाकांक्षा लिच्छवियोंकी स्वतंत्रतामें बाधक होने लगी, तब वे सहसा सचेत हो गये; और अब सदाके लिये निर्णय कर देनेके लिए सब लिच्छवी नेता तत्परतासे, वैशालीके संथागारमें सम्मिलित हुए और मार्गधियोंको शत्रु रूप मान लेनेका निश्चय कर लिया !

संथागारके बाहर रथोंका मेलासा एकत्रित हो गया था। बाहर निकलते हुए सभासद अपना अपना मन्तव्य प्रकट कर रहे थे; एक उपराजा अपने साथ चलते हुए चिरंजीवसे कहने लगा, 'महानामके जैसा दूसरा देशभक्त पाना दुर्लभ है !, चिरंजीवने भी समर्थन किया—'कहते हैं कि इनके नाम पर वैशाली का एक एक युवक प्राण देनेके लिए तैयार है !'...

'इनके नाम पर ... ?' 'इनके' पर जोर देता हुआ पास से ही किसीका गम्भीर कंठरव सुनाई दिया, दोनों चौंक कर उस ओर घूमे—देखा कि वैशाली का एकमात्र अप्रतिम कूटनीतिज्ञ अभयराज वहाँ खड़ा था। पंचावन वर्ष पार करके, राजनैतिक दावपेंचका वह अजोड़ खिलाड़ी अभयराज, ओठोंकी अपेक्षा आँखोंसे अधिक बातें करता था। उसका रहस्यमयी मुस्कानवाला मुँह, बड़ेसे बड़े धैर्यशाली को भी बेचैन कर सकता था। वादविवादमें वह अजेय माना जाता था !

उपराजा प्रौढ़ था, अभयराज उसे विस्मित देखकर हँस पड़ा। उपराजा बिना कुछ कहे जाने लगा, वह अभयका गूढ़ार्थ समझ गया था। तब अभय ने चिरंजीवकी ओर देखा—

'चिरंजीव, तू मुझे नहीं पहिचानता, पर मैं, तेरे स्वर्गीय पिताको अच्छी तरह पहिचानता था !'

'जी, मेरे पिताने आपके विषयमें कई बार बातें की थीं !'

'ओः हो ! तू मुझे पहिचान भी गया ! वैशालीमें तो तू पहिली ही बार आया है न ? अच्छा चल, मेरे यहाँ चल...' सहसा रुककर, अर्धभरी आवाजसे, मुस्करा कर अभय फिर कहने लगा—'मैं तुझे महानामके घरभी ले जाऊँगा !... चिरंजीव चौंक उठा—'वहाँ क्यों ?'

‘प्रत्येक युवक महानामका भक्त है, क्या तू यह नहीं जानता ?’... चिरं-जीव कुछ संकुचित हो गया; कुछ ठहर कर गंभीरतासे बोला-‘महाशय, मैं तो वहाँ होकर आया हूँ; आप कहें तो मैं अपने एक मित्रको आपके पास ले आऊँ?’ उसे वैशाली देखना है, और महानामको भी !’

‘बहुत ठीक, कहाँ है वह ?’

‘अभी यहाँ आ ही पहुँचेगा: उसे गणनायक महानाम से मिलनेकी अत्यधिक इच्छा है !’...

चिरंजीव के शब्दों में गर्भित भाव समझनेमें कुशाग्र अभयको कुछ भी देर न लगी। आम्रपालीके पीछे पागल होनेवालोंमें एक और, उसीके घर आने वाला था ! उसने मना न किया।

उससे कुछ ही दूर, संथागारसे बाहर निकलकर आगंतुकोसे बातें करते हुए महानाम आ रहे थे: एक रथको देखकर वे चौंक पड़े- ‘अरे ! मेरा रथ यहाँ कहाँ से ? मैं तो जीवकके रथमें आया था !’...

इसी बीच सहसा रथके अग्रभागमें से, जिस तरह बादलके हट जाने पर चाँद चमक उठता है वैसे ही आम्रपाली का मुख बाहर निकला; और क्षण भर, हाँ क्षणभर तक आसपास खड़े हुए लोगोंने बातें बंद कर दीं: वे आम्रपालीकी ओर टकटकी बाँध कर देखने लगे—

इतना रूप ! इतनी मादकता !! ऐसा अस्फुट यौवन ! हृदयके धकधक वेगको तीव्रतम कर देने वाली यह नृत्यांगना !!... कवियोंके काव्यमें से, कथा-कारोंके वर्णनमें से, कलापतियोंके चित्रणमें से उद्भूत, तेजस्विता और सौंदर्य के सत्व जैसी यह सुन्दरी, सम्मोहक सौंदर्य बिखेरती हुई रथ पर खड़ी थी। चिरंजीव, विवाहित चिरंजीव भी इस अद्भुत आम्रपालीको देखता ही रह गया। आम्रपालीके पास उसका भाई आनन्द भी खड़ा था- उन्नत, तेजस्वी और वीर।

‘धूर्तों !’... रथके पास पहुँचकर, आम्रपाली और आनन्दको देखकर महानाम बोले-इतनेमें तुम नन्दीग्राम से आ भी गये ?

पर अभी तो महानामने अपना वाक्य भी पूरा न किया था कि एक

रथ पूरे वेगसे दौड़ना हुआ पालीके रथसे टकराता हुआ आगे निकल गया; रथके सारथीके हाथ लगाममें घुरी तरह उलझ गये थे और उन्नत अश्व पूरी शक्तिसे दौड़ रहे थे !

एक क्षणमें पाली, पुनः अपने रथ पर चढ़ गयी और 'हाँ या ना' की आवाज निकलनेके पहिले ही उसने अपना रथ उस रथके पीछे छोड़ दिया । कुछ ही दूर जाने पर आगे दौड़नेवाले रथका एक पहिया निकल गया; पाली ने अपने घोड़ोंको तेज किया, घोड़े उड़े; और आगेवाले रथके सारथी समेत उछलकर नीचेके गड्ढेमें गिरनेसे पहिले ही पालीने घोड़ोंको पकड़ लिया; किन्तु रथ स्थिर होते होते एक पत्थर की टक्कर लगनेसे उछल पड़ा और रथ का सारथी एक बार उलटकर जमीन पर गिरा और बेसुध हो गया !

संथागार के सभासद रथके पास दौड़ आये; भीड़को चीरता हुआ चिरंजीव क्षीप्रतासे, दूटे हुए रथके पास आ पहुँचा, और पाली की गोदमें पड़े हुए युवककी ओर इंगित करके सामने खड़े हुए अभयराजसे कहा,—'यही मेरा मित्र है ।' फिर चिरंजीव नीचे बैठ गया; दुपट्टे से हवा करते हुए बोला—'सुधीर, सुधीर, आँखें खोल, देख तो सही भाई—!'

सुधीरने आँखें खोलीं; चिरंजीवका प्रफुल्ल मुख देखा, पासमें ही अपने आँखोंके सम्मुख किसी अद्भुत सौंदर्यदेवीको देखा; देखकर वह स्तब्ध रह गया । चिरंजीवके शब्द कान पर टकराये—'यह आम्रपाली है, तुम्हें जीवन-दान देनेवाली आम्रपाली !'

आम्रपाली का नाम नुनते ही सुधीरकी आँखों के सामने अंधेरा छा गया और पाली की ओर देखकर मुस्करानेकी चेष्टा करते हुए वह पुनः पाली की गोदमें लुढ़क गया; चिरंजीव ने उसे उठा लिया ।

महानाम, पालीके रथपर बैठने जा रहे थे कि अभयराजने उन्हें रोक लिया—'गणराज, बहुत दिनोंसे इन्कार करते आ रहे हो, किन्तु आज तो मेरे आमन्त्रणके लिए हाँ कहनी ही होगी, आज 'ना' नहीं सुनी जायगी ।

'आऊँगा अभयराज, अवश्य आऊँगा !'

‘कब ! कल सूर्यास्त के बाद ?’

महानाम अधिक बोलें नहीं, मुस्कराते हुए सिर हिलाकर वे रथ में बैठ गये; अभय हँसकर उन्हें देखता हुआ पीछे हटा। और उस समय आम्रपालीने देखा कि अभयराज उसके पिताको नहीं, स्वयं उसे देख रहा था ! जिस तरह किसी भयंकर विषधर सर्प की फुफकार उसकी ओर आ रही हो और वह उसे दूर करना चाहती हो, इस तरह उसने शरीरको एक ओर खींचकर घोड़ोंको जोरसे चाबुक लगाई। आनन्द चौंका, महानाम चौंके और रथ दौड़ने लगा।

अभयराज, पालीके दूर जाते हुए रथको चुपचाप देखता ही रहा; उसकी अँगुलियाँ कटिमें बंधी हुई छोटी कटार पर धीरे धीरे थिरक रही थीं, उसकी आँखोंमें एक अवर्णनीय भाव चमक रहा था !

उसके पास ही खड़े रथमें चिरंजीवने सुधीरको सुला दिया। पाली को देखनेसे उत्पन्न होनेवाली मुस्कान, सुधीर के बेसुध होने पर भी दूर नहीं हुई थी !

[३]

‘तेरी पत्नी तुझे मिल जाए तो उसे ठीक ठीक पहिचान सकेगा ?’

‘तू भी क्या बकता है संजय ! छः महीने हम साथ रहे हैं तब क्या मैं उसे पहिचान नहीं सकता ? पर गाँवमें आकर क्या तू अपनी मति ही गँव। बैठा है ? सात वर्षमें उसका चेहरा ऐसा कितना बदला होगा ?’

‘तुझे विश्वास है कि वह पाली के साथ ही रहती है ?’

‘हाँ, भाई हाँ, हमारे राजपुरोहित ने उसे देखा है; हमारे मंत्री महाराज ने उसे देखा है, और एक एक मागधी व्यापारी जो यहाँ आ चुका है, वह महाराज बिंजिसार से, पाली के साथ साथ मेरी रेवा की भी प्रशंसा करता है, भूला नहीं है !’

‘चुप भी रह ! हम वैशालीकी सीमा में प्रविष्ट हो चुके हैं; यहाँ हम छद्मवेश में आये हैं यह न भूल; यदि किसी को जरा भी सन्देह हुआ कि

ये युवक मगधराज बिंबिसारके मनुष्य हैं, तो अपने वक्ष भालोंसे विन्धे हुए ही समझना ! मालूम है न, लिच्छवियोंका प्रेम और तीर एक समान लक्ष्यगामी अचूक और मर्मभेदी होते हैं ! एक बार उनसे छू जाने पर फिर वे प्राणों के साथ ही छूटेंगे ।

‘मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि लिच्छवियों की दृष्टिमें हम सब शत्रु हैं, किन्तु यदि रेवा को न देखना होता तो मैं यहाँ पैर ही काहे को रखता: यहाँ तो तू मुझे घसीट लाया ! अस्तु तू अच्छी तरह जानता है न कि रेवा ने मुझे बुलाया है ?

‘हाँ, हाँ, हमारे राजपुरोहित का छोटा भाई क्या झूठ कहता था ? पर तू रेवा को देखते ही कहीं बोल न बैठना ! तुम दोनों की सुलह मैं कर दूँगा !’

‘संजय ! मैं मानता हूँ कि मैं गँवार हूँ, पर एक बात अभी तक मेरी समझ में नहीं आई कि पाली को देखने के लिए तू इतना क्यों अकुला रहा है ! तू तो अर्धवृद्ध ब्राह्मण है, पाली के साथ तेरा विवाह कदापि नहीं हो सकता !’

‘यहाँ विवाह करना ही कौन चाहता है !’

‘ऐं, तब तो तू पाप करता है. घोर पाप ! जिस कुमारी कन्यासे तुझे विवाह करना नहीं उससे प्रीत जोड़ता है ? छिः संजय, तू पागल है !’

‘पाली के लिए कौन पागल नहीं है !’

‘शीघ्र ही उसका विवाह कर देना चाहिए’

‘और उसका पिता भी यही विचार करता है, किन्तु पाली व्याह नहीं कर सकती !’

‘संजय ! तेरी बुद्धि का लोहा सभी मगधवासी मानते हैं और मुझे भी उस पर अभिमान है; राजनीतिक दावपेंच और कूटनीति में तू निपुण है; तू शिक्षित है, और मैं ब्राह्मण होते हुए भी गँवार हूँ किन्तु किसी समय तू ऐसी मूर्खतापूर्ण बात कह देता है कि मुझ जैसे भी तुझे मूर्ख नहीं, गधा कहने को लाचार होते हैं...’ इतना कहकर ब्रह्मदत्त, जैसे किसी महापंडित को पराजित कर दिया हो ऐसे आनन्द से खिलखिला कर हँस पड़ा । कुछ देर

बाद हँसी रोककर बोला—‘पाली सुन्दर है, युवती है, रूपकी राशि है और इस भारतवर्ष के एक कोनेसे दूसरे कोने तक वह प्रख्यात है फिर भी तू कहता है कि पाली विवाह नहीं कर सकती ?’

अंतिम वाक्य बोलते हुए ब्रह्मदत्त ने आवाज एकदम ऊँची कर दी किन्तु संजय ने उसे उतनी ही शक्ति से दबाकर कहा—‘हाँ !’

‘किस तरह ?’ ब्रह्मदत्त ने पूछा ।

‘पाली एक है और उससे विवाह करनेवाले अनेक हैं, लाखों हैं, इस-लिए पाली ब्याह नहीं कर सकती ?’

‘ओफ़ !’

‘किन्तु जिसने पाली से प्रेम नहीं किया, वह युवक नहीं है !’

‘ओह !’

पालीके लिए जिसने अपना जीवन धोखेमें नहीं डाला वह मनुष्य नहीं है !’

‘हूँ !’

जिसने पाली को नहीं देखा, उसने जगतमें कुछ नहीं देखा !’ पाली एक है और अनूप है !’

‘देख संजय, मैं गँवार हूँ सही, इतनी बड़ी बात मुझे समझमें भी नहीं आती पर तू ऐसी बात करता है जिससे शंका होती है कि कहीं मैं तो पाली से प्रेम नहीं करने लगा !’

‘तू चिन्ता न कर, प्रेम तरे पास आनेके पहिले ही अपने आप घुट घुट कर मर जाएगा ! इसीलिए तो मैं तुझे महाशिव कहता हूँ !’

‘तू चाहे जो कह ! अब तो मैं पाली को देखे बिना रहने वाला नहीं; ऐसी कैसी वह पाली है कि जो उसे देखे वही उसकी पीछे पागल ! ऐ पाली ओ...ओ...ओ... अंतिम ‘ओ’ ब्रह्मदत्त जोर से बोल दिया; उसका मेंह खुला ही रह गया ! संजयने घबरा कर पूछा—‘क्या है ?’

ब्रह्मदत्तने वैशाली की सीमांतके कुए पर पानी भरने वाली पनिहारियों की ओर अंगुली-निर्देश किया . . . !

कुए पर मानों यौवन की बाढ़ आई थी; कुए से पानी खींचते हुए, हाथ कँचे नीचे होने पर, कितनी ही युवतियोंके, बारीक वस्त्रोंमें से उनके मनोहर अवयवोंकी आकर्षक क्रिया दिखाई देती थी। सिर पर गागर रखते हुए किसी का पीन पयोधर-प्रदेश, किसीके चपल पद, किसीके हृदय-भेरी तिरछे नयन किसीके अर्धस्फुटित ओठों पर खेलती हुई मुस्कान, ब्रह्मदत्त जैसे गँवार और संजय जैसे चतुर को भी मुँह खुलाकर पृथ्वीसे जोड़ देने के लिए पर्याप्त थी !

. कुएके आसपास, कुछ ही दूरपर, वैशालीके कई युवक इन सुन्दरियोंको देख रहे थे; किंतु सबसे बड़ी बात तो यह थी कि दो तीन युवक किसी किसी पनिहारीको कंकरी भी मारते थे। और यही बतानेके लिए ब्रह्मदत्तने इंगित भी किया था। . . . बहुत ही अनिच्छापूर्वक, संजयने, पनिहारियोंकी ओर लगाई हुई आँखें कंकरी मारने वालोंकी ओर घुमाई और बोला—‘इसमें इतने बड़े ‘ओ’ करने जैसा क्या था, यह तो यहाँ का रिवाज है !’

ब्रह्मदत्त जैसे यह बात मानना न चाहता हो उस तरह आँखें फाड़कर बोला—‘लड़कियोंको कंकरी मारनेका ?’ ‘हाँ, हाँ, हाँ ! कंकरी लगी कि पनिहारी कंकरी मारने वाले की ओर देखती है, भला लगे तो ठीक, नहीं तो क्रोधित होते ही स्त्रियोंको कितनी देर लगती है ? किंतु इसके लिए कोई स्त्री प्रार्थना या पुकार नहीं करती; यह स्वतंत्र मनुष्योंका देश है ।’

‘विचित्र हैं ये लिच्छवी भी ! अद्भुत हैं, भयंकर हैं ये लिच्छवि-गण ! ! . . .’

‘क्या रटने लगा ?’ गुनगुनाते हुए ब्रह्मदत्तसे सुधीरने पूछा ।

‘अध्वर्यु, जब यहाँ की स्त्रियाँ इतनी पुन्दर हैं, और युवक इतने बाँके हैं तब उनकी पाली कैसी होगी ? ना इस पालीको देखे बिना अब मेरा हृदय नीचे नहीं बैठने का !’ . . .

‘अरे . . .’ संजय एकाएक चिल्ला उठा, और ब्रह्मदत्त चौंका; संजयने ब्रह्मदत्त को अपनी ओर खींच लिया और एक रथ क्षणभर में उनके पाससे निकल गया, जैसे कोई विद्युतधारा उनके पास हो कर दौड़ गई हो ! दोनों अवाक् होकर रथ की ओर देखने लगे !

फिर जब कंकरीमारने वाले वे युवक, रथ की ओर कुछ आगे बढ़कर, आपसमें विनोदपूर्वक बातें करने लगे तब ही दोनोंको सुध आई कि पाली उनके ही पास होकर निकल गई है । घबराहट के कारण, चक्कर आनेसे एकाएक कहीं गिर न जाय इस डरसे ब्रह्मदत्त नीचे बैठ गया, संजयने भी वैसा ही किया !

उन्होंने पाली को देखा; अपूर्व, अद्भुत और अनुपम सौंदर्य उनके पास आकर अंतर्हित हो गया था !

दूसरे दिन संध्या समय पाली अपने उद्यानमें बैठी थी, सामने रखी हुई चीणा पर उसकी अंगुलियाँ धीरे धीरे चल रही थीं; सम्मुख ही, उसकी सखी और सहचरी रेवा उसे एकटक देखती हुई बैठी थी ! पालीकी दृष्टि एकाएक रेवापर पड़ते ही उसकी अंगुलियाँ रुक गई—‘क्या है रेवा ?’

‘स्त्रीको इतनी निठुर न होना चाहिए !’

‘ऐसा मैंने क्या किया है रेवा ?’ कृत्रिम क्रोध से प्रेम पूर्ण शब्दोंमें आम्रपाली ने पूछा ।

‘पूछ कि तूने क्या क्या नहीं किया ? यह तो मैं मानती हूँ कि पुरुषों में स्त्रियोंसे आधी बुद्धि भी नहीं होती, किंतु पुरुषोंको इस तरह रंजित करना भी तो अपनी बुद्धिका मूल्य आपं करने जैसा है ! विवाह कर ले न पाली ! दिन-रात प्रेममें दग्ध होने वाले युवकों को कुछ तो शांति मिले !’

‘इसमें तूने क्या नई बात कही ? पर ब्याहूँ किसे ?’

‘बात सच है; वैशालीमें तो सब स्त्रियाँ ही रहती हैं, और पुरुष हैं वे तो सब वृद्ध और कुरूप; सच है न ! तुझे हुआ क्या है ?’

‘हृदय नहीं मानता, कंपित ही नहीं होता !’

‘ओ हो ! पर तेरा मन तो किसी दिन भी न मानेगा ! रेवा ने कटाक्ष किया—‘इसे तो देख समझकर भी नहीं मानना है न ! जो युवती धनुषबाण ले कर लड़ने निकले, किसी युवककी ओर ध्यान ही न दे, उनकी अपेक्षा ही न करे; बुद्धि और विद्यामें पुरुषों से तुलना करने निकले और उन्हें परास्त ही कर डाले, ऐसी स्त्रीके हृदयमें कंपन का अनुभव इस जन्ममें तो क्या, कितने जन्मोंमें भी होने से रहा !’

‘तेरी इस प्रशंसाके लिए पारितोषिक हूँ ? वाचाल कहीं की, तूने स्वयं कम्पनका अनुभव कितना किया है. बोल तो ? . .’

‘फिर मेरी बात की ! . . .अरे, उसे देखा ? देख, देख ! . . ., पालीने भट्ट सिर घुमाकर देखा—दूर बागके छोर पर सुंदर पुष्पोंकी अंतिम क्यारीके उस ओर दो पगड़ियाँ मानों अकेली ही चली जा रही थी। पालीने संकेत करके चुटकी बजाई, रेवाने तुरंत पालीके हाथमें धनुषबाण रख दिये; उसने प्रत्यंचा खींचकर बाण छोड़ दिये और दोनों पगड़ियाँ एक साथ हवामें उड़ती हुई पृथ्वी पर गिर गई ! उसी समय ब्रह्मदत्त की चीख सुनाई दी; रेवा भयभीत सी होकर खड़ी हो गई किंतु कोई दिखाई नहीं दिया न मनुष्य, न पगड़ियाँ या तीर ही !

‘कौन था ? पालीने हँसते हुए चिल्ला कर पूछा। ‘कोई नहीं !’ रेवाने भी उसी प्रकार उत्तर दिया, और तब धीरे से बोली—‘मेरा ब्राह्मण यहाँ ?’

[४]

स्वर्गोपम मगधके भव्य राजप्रासादके उत्तरमें स्थित कौतुकभवनमें मगधराज बिंबिसार एक बड़े स्वर्ण-सिंहासन पर बैठा था। दक्षिण देशों और समुद्रके उस पारसे आये हुए रत्नमाणिक उसके सिंहासनपर जटित थे। नृत्यागारकी चारों भित्तियों, फर्श और छतपर की हुई वाराणसी, मध्यप्रदेश और तक्षशिलाकी शिल्प, चित्रादि कलाएँ, ललितकलाकी पराकाष्ठा सचित्र करती थीं।

अत्यन्त महीन वस्त्र पहिनकर मगधका नरराज बिबिसार एक जरीन तकियेसे टिककर बैठा था। उसकी सुन्दर स्नायुबद्ध भुजाओं और पुष्ट वक्षस्थलको स्पष्ट बतलाता हुआ उसका एकमात्र उत्तरीय, सुन्दरी यवन युवतियोंके हाथोंमें धीमे धीमे हिलनेवाले मोरपंख और चँवरोंसे धीरे-धीरे उड़ रहा था ! राजामें देवत्व न होते हुए भी वह देव जैसा मालूम होता था ।

क्षत्रिय राजाओंमें, गौतम बुद्धका सर्वप्रथम अनुयायी, और उनसे पाँच ही वर्ष छोटा, राजा बिबिसार जितना पराक्रमी और विद्वान था, उतना ही रसिक भी था। अपने लिए उसे जितना गर्व होना चाहिए उससे अधिक उसकी प्रजाको था ! उसके राज्यमें प्रजा सुखी थी; धान्य और फल-फूलोंसे देश उमड़ा जाता था। दान करनेमें प्रत्येक श्रेष्ठी परस्पर स्पर्धा करते थे। बिबिसारके देदीप्यमान मुखपर प्रत्येक नागरिक न्यौछावर होता था। उसकी गुणग्राहकताके कारण, दूरदेशोंके कलाकार उसकी राजसभामें आते ही रहते थे।

आज, इस समय काश्मीरसे कर्नाटक, गांधारसे योनक और अलसेन्द्रसे आनर्त तककी नर्तकियाँ रूपराशि बिखेरती हुई उसके सामने नृत्य कर रही थीं। प्रत्येक नर्तकीके अंगपरिचालन और भावभंगीके लिए, सदाकी भाँति, प्रेक्षकोंको यह कहना कठिन था कि, इनमेंसे किसकी अपेक्षा कौन अधिक सुन्दर और कुशल है !

आज वारांगना खेमी, महाराज बिबिसारका मन अपनी ओर विशेष रूपसे आकर्षित कर रही थी। बहुतसे रसिक युवक खेमीको देवशापित किन्नरी अथवा स्वर्गसे आशीष पाई हुई नर्तकी समझते थे। आँखें और लज्जा, उसके मुख आकर्षण थे ! नृत्यके अन्तमें जब वह अपने नयन नीचे गिरा देती, और स्वयं भी महाराजके पैरोंके पास गिर जाती तब हरएक नृत्य देखनेवालेका मन, उसे अपने हृदयसे लगा लेनेको होता था ! यहाँ तक कि बृद्ध और अरसिक महामात्स्य देवेन्द्र भी, नृत्यालयमें निर्दोषमुखी खेमीको देखने ही आते थे। आज वे बिबिसारके एक ओर, नीचेके आसनपर बैठे थे,

और सिंहासनकी दूसरी ओर, अश्विनदेव के अवतार जैसा महाराजका बाल-सखा नृत्यानन-कुमार-भृत्य बैठा था, जिसे तक्षशिलाके विद्यापीठने समर्थ वैद्यराज बनाकर भेजा था ।

खेमीका नृत्य समाप्त हुआ; नयन नीचे गिरे, उसका सुंदर सुकुमार शरीर नृत्यके अन्तमें, एक चित्ताकर्षक अभिनयके साथ महाराजके पैरोंके पास गिर गया । परन्तु—

आज, महाराज बिंबिसारकी उमंग जाने कहाँ विलीन हो गई थी । खेमीके नमित नयन महाराज बिंबिसारको देखनेके लिए ऊपर उठे, तब वह विस्मयसे अवाक् रह गई; उसका स्वामिमान मानों भड़क उठा ! उसकी ओर उदासीनतासे देखना अर्थात् सौन्दर्यको क्रूरतापूर्वक तिरस्कृत करना था । उसे मृदु रोष हुआ—रसराज आज असन्तुष्ट क्यों रहा ?

एक ओर बैठा हुआ, अकेला महामात्य इसका कारण जानता था !

राजा बिंबिसार धीमे पैरोंसे अपने शयनगृहमें प्रविष्ट हुआ । शयनगृहके नीचे एक बड़ी अट्टालिकामें राजगायक मोहिनीपुत्र, वीणापर एक सुन्दर राग अलाप रहा था । राजा, मनको संगीतकी ओर ले जानेका प्रयत्न करने लगा; किन्तु उसका हृदय व्यथित था ।

दस दिनोंसे उसकी हृद्तंत्री पर 'आम्रपाली', 'आम्रपाली' का नाद गूँज रहा था । कौशलके प्रसेनजित, कौशाम्बी राज और काशीराज आदि राजाओंको भी उसने केवल आम्रपालीकी ही चर्चा करते हुए सुना था । उसने, रसिकतासे सदा दूर रहनेवाले महामात्य देवेन्द्रको भी, मुखपर असाधारण भाव लाकर, आम्रपालीकी ही प्रशंसा करते देखा था; और नगरभेष्टियोंके पास तो सिवा पालीके दूसरा विषय ही न था !

सात दिन हुए, लिच्छवियोंके नेतृत्वमें वज्जिभूमिकी समस्त प्रजाने मगध और मगधराजको अपना शत्रु घोषित किया था ; और इसीलिए आम्रपालीके लिए होनेवाली दुविधा उसके मनको और अधिक व्याकुल कर रही थी—पाली कैसी होगी ?

बिंबिसारका साहसी हृदय पालीको एक बार निहारनेके लिए अधीर हो उठा। उसके दोनों बालरखा, ब्रह्मदत्त और संजयने कोई मार्ग ढूँढ़ निकालने का बीड़ा उठाया था, वे वैशाली जाकर अभी तक लौटे न थे, इसलिए बिंबिसारकी अधीरताने उग्ररवरूप धारण कर लिया। केवल सौंदर्यके लिए किसीके पीछे पागल हो जाने वाले लोग बहुत कम होते हैं; लोग उन्हें कवि कहते होंगे, किन्तु पालीके बारेमें सुनकर उसके पीछे पागल होने वाले अगणित थे, और मगधराज बिंबिसार भी उनमें से एक था।

बिंबिसारके श्वासोश्वासमें मानों आम्रपाली प्रविष्ट हो गई थी। उसके नाममें ही जैसे जादू था कि जो कोई उसका स्मरण करता, दिन और रात उसके बैरी हो जाते तथा आम्रपाली और उसका आकर्षण इतना प्रबल हो जाता कि बड़ा महारथी भी उसमें अपना अस्तित्व मिला देनेमें गौरव मानता था।

आम्रपालीका विचार करते हुए बिंबिसारने शय्यामें अभी तो सिर भी न रखा था कि मुख्य द्वारसे संजय और ब्रह्मदत्त वहाँ आ पहुँचे और प्रणाम करके पास ही बैठ गये। बिंबिसार इन दोनोंको देख, उछलकर खड़ा हो गया; उसका हृदय पालीका समाचार सुननेके लिए अधिक तेजीसे धड़कने लगा। तब उन दोनोंने एक दूसरेको रोककर, टौंककर और लड़भगड़कर वैशाली की बातें विस्तारपूर्वक कहना प्रारंभ कीं। पूरे एक प्रहर तक सुननेके बाद भी बिंबिसार को लगा कि उसने कुछ भी नहीं सुना है। उसने फिरसे, दोनोंको एक बार सब कुछ सुना देनेको कहा और थका हुआ ब्रह्मदत्त, फिरसे कहनेके लिए तैयार हुआ—

‘महाराज, ये दो तीर देखे? चाहती तो हम दोनोंको मार ही डालती; बीसे उसके तीर हैं वैसी ही उसकी आँखें हैं और वैसीही तीक्ष्ण जिह्वा भी है! क्या कहूँ उस सौंदर्यकी सीमा पालीको महाराज! अद्भुत है, देवी है महाराज! मैं तो गँवार हूँ, पृष्टिए इस संजय को, इसने बहुतसे नाटक पढ़े हैं, शास्त्र भी कितने ही सीख डाले हैं, वहिए तो रही पालीका कुछ वर्णन करे!’ संजय कहनेके लिए तैयार ही था—

‘महाराज ! वह एक ही है जिसका वर्णन शब्दोंसे नहीं किया जा सकता, जिसे आँखोंसे देखे बिना कल्पना करना भी मिथ्या है !’

बिंबिसारने तीक्ष्ण दृष्टिसे दोनोंकी ओर देखा, सुनाई न दे इस तरह, छुपाकर धीरेसे एक लम्बी साँस ली और कई बार पूछा हुआ प्रश्न फिर पूछा—‘और पाली अभी तक ब्याही नहीं ?’

‘नहीं महाराज !’ छुर्वीं बार संजयने यही उत्तर फिरसे दुहराया

‘अभी तक कोई पालीसे विवाह नहीं कर सका !’ उसने जोर देकर कहा । बिंबिसारने ब्रह्मदत्तके दिये हुए तीरोंको हाथमें लेकर घुमाते हुए कहा—‘इसका कारण सचमुच...’

‘हाँ महाराज, आप सोचते हैं, वही है; पालीके योग्य, पालीसे विवाह करनेवाला यौवन-सम्पन्न पुरुष इस ओर जन्मा हो ऐसा आज तक किसीने नहीं सुना !

‘महाराज, मैंने रेवासे सब कुछ जान लिया है !’

‘तेरी रेवा तेरे साथ आई है ?’

‘नहीं महाराज, हमारे पंचोंने रेवाको निकाल देनेकी आज्ञा दी थी; आप तो सब जानते ही हैं, क्यों महाराज ? वर्षाके कारण, रेवाको एक दिन सारथीके साथ उस पार रहना पड़ा था ! किन्तु पंचोंने कहा—‘रेवा पतित है ! स्वर्गीय बड़े बूढ़ोंने भी कहा—‘रेवा पतित है !’ और क्रोधमें मुझे भी लगा कि ‘रेवा पतित है !’ पर महाराज ! सच कहता हूँ वैशालीमें रहते हुए भी, प्रत्येक लिच्छवी पालीको देखता है, पर रेवाके सामने देखनेका आज तक किसीने साहस न किया । महानाम उसे अपनी पोषित पुत्री मानते हैं ! क्यों संजय ?’

संजयने मुस्कराकर बिंबिसारकी ओर देखा और बोला—‘और यह भी कि रेवाने ब्रह्मदत्तको वचन दिया है कि जहाँ आम्रपाली होगी वहाँ रेवा भी साथ ही रहेगी; इसलिए रेवाको लाना हो तो केवल एक ही मार्ग है—पालीको यहाँ लाना !...और पालीको यहाँ लानेकी क्षमता हम जैसे

ब्राह्मणोंमें नहीं है !

‘महाराज, सच बात है ! संजय जैसे तो हजारों बुद्धिमान आम्रपालीके यहाँ पानी भरते हैं; रेवा न होती तो मालूम हो जाता ! ऐसी वीर है आम्रपाली ! बुद्धिमान, सुंदर, आकर्षक, अद्भुत, अद्वितीय, अवर्णनीय, अ...’

‘बस, बस, ब्रह्मदत्त, हृद हो गई !...’ संजयने ब्रह्मदत्तको बीच ही में चुप करते हुए कहा । तब मृदु हास्यसे बिंबसारकी ओर देखकर हाथ जोड़ते हुए बोला—‘महाराज, अब आपकी नींदमें और अधिक बाधा डालनेका हमारा अधिकार नहीं है, किन्तु अन्तमें इतना कहना चाहता हूँ, कह दूँ ?... महाराज, पालीके लिए एक ही पुरुष विद्यमान है, और वह है मगधराज बिंबसार !’

इतना कहकर संजयने, ब्रह्मदत्तके कुछ बोलनेके पहिले ही उसे कोहनी मारकर उठा दिया, और नियमानुसार आज्ञा लेकर वे दोनों शयनगृहके बाहर चले गये ।

पालीके तीरोंको हाथमें फिराता हुआ बिंबसार एक टुक उन्हें देखने लगा । राजगायक मोहनीपुत्रका गीत पंचमस्वरसे खिल उठा था, और साथ ही साथ जैसे गीतकी अपूर्णताको पूर्ण करनेके लिए, एक नारीकी मृदु-कंठध्वनि उसकी ध्वनिके साथ मिलने लगी थी ।

बिंबसारके प्राण, शरीर और हृदय किसी अनिवार्य आकर्षणसे खिंच जा रहे थे—उसके चक्षु तीरोंको देखते हुए भी नहीं देखते थे; उसके श्रवण, मोहनी पुत्रका गीत सुनते हुए भी नहीं सुनते थे । अभी भी बिंबसारके कानोंमें संजयके मिठे शब्द गूँज रहे थे—‘पालीके लिए एक ही पुरुष विद्यमान है, और वह है मगधराज बिंबसार !’

महामात्य देवेन्द्र अभी तक राजप्रासादके मुख्य प्रवेशद्वार पर ही खड़े थे । ब्रह्मदत्तको भेजकर अकेला संजय नमस्कार करके उनके पास खड़ा हो गया; महामात्य हँसे और संजयके कंधेपर हाथ रखकर बोले—‘जहाँ तक तुझ जैसा एक पुरुष मेरे पास है, वहाँ तक मैं बहुत कुछ कर सकता हूँ संजय ! बुद्धि-प्रधान राजनीतिक दावपेंच खेलनेके साथ ही साथ मूर्ख भी दिखाई देना

किसी साधारण मनुष्यका काम नहीं है !...'

'गुरुको शिष्य की श्लाघा करना शोभा नहीं देता गुरुदेव...!' संजय विनय पूर्वक बोला। देवेन्द्र हँस पड़े। संजयने फिर कहा—

'अब तो महाराजके अणु अणुमें आम्रपाली ही रम रही है !'

'इतने हीसे संतोष नहीं मानना है संजय, विवाह भी...' इतना कहकर देवेन्द्र एकदम चुप हो गये। उन्होंने अपना वात्सल्यपूर्ण हाथ संजयकी पीठ-पर फेरा और उसे जानेकी अनुमति दी; संजय जाने लगा।

हृदयंगम रागिनीमें मोहिनी पुत्रका गीत सुनाई दे रहा था; उसकी प्रेयसी भी उसके कंठसे कंठ मिलाकर रागिनी छेड़ रही थी। दूर जाते संजयकी पीठको देखते हुए देवेन्द्रको बचपन याद आ गया। रागिनीने स्मरण-शक्तिको उसका दिया था। महामात्यको बचपनके बाद यौवनकी याद आई। यौवनके उन्मत्त स्वप्न उनकी आँखोंके आगे झिलमिलाने लगे ! वैशालीका प्रत्येक मार्ग और एक एक राजप्रासाद उनके चक्षुके आगे आ खड़ा हुआ ! स्वयं लिच्छवी न होते हुए भी, एक लिच्छवीको जन्मते ही मातृभूमिके लिए जितना अनुराग पिलाया जाता था, उतना ही प्रेम उन्हें वैशालीसे था। वैशालीके लिए अपनी माँका अपरिमित प्रेम उनके हृदयमें पुनः जागृत हुआ। वैशालीको मगधके साथ जोड़नेका दृढ़ संकल्प फिर सवेग बना।

महामात्यको युद्ध पसन्द न था; वे बुद्धानुयायी थे। महाराजा बिंबिसार का युद्ध प्रेम और साहस उन्हें बिलकुल नहीं सुझाता था। लिच्छविगण शत्रु के लिए बहुत ही प्रतिशोधी, क्रूर और दुर्विनाशक थे; किन्तु हृदयसे वे पवित्र थे, नीच तो उन्हें कहा ही नहीं जा सकता ! यह बात महामात्य भलीभाँति जानते थे। लिच्छवियोंकी दुर्बलताको वे एक खिलाड़ीकी अपेक्षा अधिक जानते थे, और इसीलिए जो हँसकर प्रसन्नतासे प्राण दे सकता हो, उसपर तत्वारसे वार करना उन्हें निरर्थक लगता था। महामात्य देवेन्द्र इसीलिए वैशालीको, एक भी लिच्छवीका रक्त बहाये बिना लेना चाहते थे। यही उनका दृढ़ निश्चय

था। केवल वे अकेले ही इस दृढ़ निश्चयको जानते थे, संजय भी नहीं। धीमी चालसे महामात्य अपने महलकी ओर जाने लगे। उनसे सौ ही कदम पीछे उनके अंगरक्षक भी थे।

राजा बिंबिसारके हाथोंमें अभी भी दोनों तीर खेल रहे थे, और मोहिनी पुत्र तथा उसकी प्रेयसीका गीत अभी तक चल रहा था—खिल रहा था।

(५)

‘क्या उत्तर है महानाम...?’ अपनी विजय से अत्यधिक गर्वित हो, इस ढंगसे मूर्खोंको धीरे धीरे ताव देता हुआ अभय लिच्छवी, तेज दृष्टिसे महानामकी ओर देखने लगा। उसके मुख पर, उपेक्षा मिश्रित गंभीर हास्यकी अस्पष्ट रेखा-खेल रही थी।...

किंतु महानामकी पीठ अभयकी ओर थी; उनकी आँखें झरोखेमें दूर दिखाई देते हुए प्रासाद पर जा लगीं, उनका हृदय प्रासादके उद्यानमें घूमती हुई पालीकी ओर था; और मन, सोचा जाय तो अपनी काँपती हुई वृद्ध किंतु सशक्त अँगुलियों द्वारा अभयकी गर्दन बैठा था !... अभयके शब्दोंने उनका ध्यान भंग किया ! उन्होंने पीठ घुमाई—दो सुंदर मदिरा के पात्र लिए हुए अभय उनके संमुख खड़ा था। अभयकी ओर वे एकटक देखने लगे—

‘असंभव, अभयराम ! बिल्कुल अशक्य है; यह नहीं हो सकता !’

‘नहीं होगा ?’... अभयने मद्यपात्रकी ओर देखते हुए ही पूछा।

‘नहीं, नहीं होगा !’ महानामका पूर्ववत् निश्चयात्मक स्वर सुनाई दिया।

‘नहीं हो सकता ?’ अभयने फिर पूछा। इस बार उसने आँखें ऊपरकी ओर कीं; उसके मुखपर खेलती हुई वह मुस्कान कुछ कम हो गई थी।

‘नहीं, नहीं, नहीं !’ कहते कहते महानाम एकाएक अभयके पास झट आये, किंतु अभयकी पलके तक न हिलीं, उसी तरह वह उनकी ओर देखता रहा; बोला—‘यह होना ही चाहिए महानाम !’

‘अभय, हमारी उम्र अब मगधियोंसे रणक्षेत्रमें जूझने और मिश्रुक होकर संसारके कोने कोनेमें उपदेश देनेकी है; कन्याओंसे व्याहनेकी नहीं !’... इतना कहकर महानाम एक ऊँचे तख्तके पास गये, और उस पर रखी हुई तलवार और मुकुट उठाकर ज्योंही उन्होंने द्वारकी ओर जानेके लिए पीठ की, तो सामने वैसा जरा भी अभिनय किये बिना, मार्ग रोककर अभय खड़ा था; उसके मुँह पर अभी तक वही भीषण हास्य था—

‘मुझे वय और उपदेशकी आवश्यकता नहीं महानाम ! मेरे पास दोनों हैं, और पर्याप्त हैं !’

महानामके दांत उन शब्दोंको सुनते ही एकाएक जोरोंसे भिंच गये; आँखें खिंचीं, तलवारकी मूठ कुछ कठिन हुई किंतु क्षणभर बाद अपनेको रोककर वे बोले—‘पालीका मिलना असम्भव है !’

अभयका मुस्कराता मुँह सहसा गंभीर हो गया; दैत्यका मूर्त-स्वरूप जैसे महानामके सम्मुख एक क्षणमें आ खड़ा हुआ; निश्चित गंभीरतासे वह बोला—‘मैं पालीको लेकर रहूँगा !’

‘महानामकी तलवार बीचमें आयेगी अभयराज !’.. यह कहते हुए महानामकी आँखें फैल गईं जैसे चिनगारियाँ निकल रही हों ! अभयके मुख पर पहिले जैसी ही मुस्कान फिर धिर आई वह बोला—‘अभय के सामने अभी तक कौन सी तलवार अखंड रह सकी है महानाम ?’..

‘महानामकी नग्न तलवार, अभय लिच्छवीने अभी तक पाससे नहीं देखी है; शरीरसे प्राणोंका वियोग करनेके लिए ही वह तलवार म्यानसे बाहर निकलती है !’ इतना कहकर महानाम द्वारके बाहर निकल गये ।

अभय ने उनसे आनेके लिए कहनेका साधारण शिष्टाचार भी नहीं किया; जैसा था उसी तरह, उन्हीं भावोंमें वह कुछ क्षण खड़ा रहा ।..... तब एक हाथ धीरेसे उठाकर मद्यपात्र ओठोंसे लगाकर बोला—‘अभयराज जिसे चाहता है उसे पा सकता है !’...वह झरोखे की ओर गया, उसकी

आँखें बूर दिखाई देते हुए महानामके प्रासाद पर जा लगीं, उसे, प्रासादके उद्यानमें बिहार करती हुई पालीका ध्यान आया; और बड़बड़ाया—‘पाली मेरी है, मैं उसे अपनी बनाऊँगा ही !’ तब धीरे धीरे दूसरा पात्र भी मुँहसे लगाकर एकाएक हँस पड़ा ! हँसते हँसते उसने पीछे मुड़कर देखा और रुक गया—द्वारके बीचोंबीच सुधीर खड़ा था, उसके सिर और कंधों पर अभी तक पट्टियाँ बँधी थीं, उसका शरीर अकड़ा हुआ था, हाथ की मुट्टियाँ कठोर हो गई थीं, पतले ओंठ जोरोसे सिमट गये थे और मुँह क्रोधसे लाल हो गया था। अभयने मुस्करा कर पूछा—‘क्या बात है सुधीर ?’

‘मुझे सुधीर न कहें, शत्रु कहिए, आजसे हम दोनों एक दूसरेके आजीवन शत्रु हैं !’ इतना कहते ही सुधीर नीचे गिर गया; अभयके हाथोंसे दोनों पात्र गिर पड़े !...

सुधीरका ‘पालीमय’ मस्तिष्क इतना तीव्र हो गया था कि इस क्रोधका प्रभाव हानिकारक होनेसे वह बेसुध हो गया ! अपनी पालीको ‘अपनी बनाऊँगा’ कहे, इसे सहना सुधीरके लिए असम्भव था और उसकी यह आन्तरिक अवस्था समझनेमें, अभय जैसे राजनीतिज्ञको देर न लगी ।

थोड़ी ही दूर नर्तकी रेणुकाके महलमें विलास छलक रहा था। वृद्ध रेणुका की—या यों कहिए रेणुकासे उत्पन्न अभय की—पुत्रियाँ, वैशालीके योद्धाओंका मनोहरण कर रही थीं। संगीत और नृत्यकी धुनमें नर्तकियोंकी पायल, मृदंगकी ताल और कंठसे निकलते हुए आलापके आरोहण-अवरोहण के साथ साथ, नवजवानोंकी ‘आह’ और ‘हाय हाय !’ की ध्वनि उर्ध्वगामी होकर दूर तक सुनाई देती थी ।

महानाम अपने महलमें पहुँचे, उनके हृदयमें तुमुल संग्राम मच रहा था। मध्यरात्रि हो जानेपर भी वे अपने शयनगृहमें टहलते ही रहे। कभी भी चित्तकी स्थिरता न खोनेवाले और सदा शांतमुख रहनेवाले महानाम आज

पुत्रीके भविष्यके लिए व्याकुल हो उठे थे। उनका पुत्र आनन्द, सामने ही एक ओर बैठा हुआ अपने पिताकी उद्विग्न मुखसुद्रा देख रहा था—वह तर्क कर रहा था, जो उग्रयुक्त थे। वैशालीका भविष्य मानों उन दोनों पिता-पुत्रों के हाथोंमें खेल रहा था; था भी ऐसा ही; और इसका कारण श्री पाली—एक स्त्री, एक सुंदर युवती—महानामकी पुत्री।

‘बेटा, अभय पशु और नीच होते हुए भी शक्तिशाली लिच्छवी है, उसका खुला विद्रोह करनेसे पूरी वैशालीमें गड़बड़ मच जायेगी।’

‘सहस्रोंको नाश करने वाले एक दुष्टको मार डालना कोई पाप नहीं, वल्कि उसे शीघ्र नष्ट न करना ही अधर्म है।’

‘अभय अजेय है बेटा, वैशालीको अभी उसकी आवश्यकता है, हमें उसकी राजनीतिकी आवश्यकता है, उसकी बुद्धिकी आवश्यकता है। इसी बुद्धिसे उसने हमारे और अपने हमारों शत्रुओंके मुँह बंद किये हैं; लोगोंकी कुंजी उसने अपने हाथमें इस तरह ले रखी है कि यदि उसका शिकार क्रोधग्नियोंमें जल जल कर राख भी हो जाए, तो भी विरोध नहीं कर सकता।’

‘मैं विरोध करूँगा, और दूसरे हजारोंसे कराऊँगा।’

‘अकेले नीचसे निबटा जा सकता है, अकेला बुद्धिमान भी मात किया जा सकता है, किंतु नीच और बुद्धिमान मिलकर भीषण रूप धारण कर लेता है। अभय नीच भी है और बुद्धिमान भी। साधु बनकर पिशाच होना उसे आता है, वह एक आँखसे रोककर दूसरी आँखसे हँस सकता है; महादांभिक है वह। सत्य और प्रमाणके पर्देके पीछे, तथा देशभक्ति और युवकोंकी शक्तिका बहाना करके उसमें, वैशालीके एक एक युवकको पागल बना देनेकी क्षमता है। सैकड़ों बड़े बूढ़े उसके अत्याचारोंको जानते हुए भी नहीं बोल सकते।’

‘क्यों?’

‘अभयका स्थान ग्रहण करने योग्य इस समय यहाँ कोई नहीं है।’

वैशालीकी राजनीतिका विचारक वह है; राजा महाराजाओंको स्पष्ट उत्तर देना वह सिखाता है। हम तो मात्र युद्धमें उत्सर्ग होने वाले हैं; हमें कहाँ और कैसे उत्सर्ग करना, इसका निर्देश हमें अभय देता है ! यही कारण है कि मेरी तलवार अभयके सामने केवल उद्यत होगी, उसे मार नहीं सकेगी !'

'अभय भले ही वैशाली का प्रभु बनने लगे किन्तु प्रतिष्ठाके सम्मुख अभयका मेरे लिए कुछ भी मूल्य नहीं है पिताजी ! मनुष्य-धर्मकी रक्षाके लिए ही तो मरना और मारना होता है ! स्वामिमान और पूर्वजोंके गौरव के लिए हजार बार मरना होगा तो मैं मरूँगा, यह मेरा कर्तव्य है ! मैं लड़ूँगा; अकेला लड़ूँगा किन्तु अभयको जीने न दूँगा !'...

'अभयको जीवित रखना ही होगा !'

'तो पाली मर जाएगी; उस नीच बुद्धिमानको ब्याहनेके पहिले वह अवश्य मर जाएगी। मैं अपने हाथोंसे उसे मारूँगा !'

'तुम भाई बहिनका स्नेह देखकर तो कभी कभी मुझे भी ईर्ष्या हो जाती किन्तु... किन्तु अभयकी 'हाँ' के लिए 'हाँ' करनी ही होगी !' महानाम धीरे धीरे निश्चित सा करते हुए बोले। पक्षपात रहित न्याय करनेकी उनकी रीति यहाँ भी वैसी ही रही। हृदय टुकड़े टुकड़े होकर निकल रहा हो वैसे ही उनके कंपित शब्द निकल रहे थे—'मैं पिता हूँ बेठा ! लड़कीके बापके हृदयकी व्यथा तुझ जैसा युवक नहीं समझ सकेगा ! पुत्रीके पिताका अभिमान गल जाता है, उसे पराधीन और पराजित रहना होता है केवल बच्चीके सुखके लिए !'। महानामने अपना अंतिम निर्णय कह दिया; किन्तु आनन्दको यह मान्य नहीं था। आनन्द महानामका पुत्र था, संस्कारोंसे उसे भी अपने निश्चय पर, प्राणांत तक अडिग रहनेकी शिक्षा मिली थी। उसका रक्त उबल उठा। पिताकी ओर देखकर वह गरज उठा—

'अगय लिच्छवी और आपके बीच, आपकी तलवार नहीं, मेरी तलवार आएगी पिताजी !'

‘वैशाली, बेटा वैशाली !’... वृद्धकी आँखें सहसा जैसे बाहर निकल आईं: उनके मुख पर एक अकल्पित भाव उदित हुआ; कोधमें भरा हुआ आनन्द भी क्षण भर अपने पिता को देखता रह गया। कोई प्रगल्भ प्रेत या वैशालीकी संरक्षक कोई महान आत्मा जैसे शून्यमेंसे निकलकर महानाममें प्रादुर्भूत हुई। वे खड़े हो गये, उनके वृद्ध शरीर और आत्मामें कम्पन उत्पन्न हुआ—

‘आनन्द, एक बार तुझे सिखाया था, आज फिर सीख ले। देख, यदि लिच्छवियोंमें जरा भी भेद भाव या अशांति फैली अथवा जरा भी वैमनस्य उत्पन्न हुआ तो वैशालीको बिबिसारके अधिकृत ही समझना ! मागधी लोग और प्रायः सम्पूर्ण जंबूद्वीप हमें धर्मविहीन, क्रूर, जड़ और केवल लड़ाकुओंके रूपमें ही पहिचानता है। शताब्दियोंसे प्राचीन हमारी स्वतन्त्रता हमारे नियम और रीतिनितियाँ उन्हें नहीं सुहातीं। ब्राह्मण लोग हमें अपमान बेचकर दास बना देना चाहते हैं, और क्षत्रिय हमारी स्वतन्त्रताको असत्य करना चाहते हैं, यह ध्यान रहे बेटा ! मल्ल, शक और मागधी वैशाली पर दूट पड़नेको प्रस्तुत हैं। लाखोंके हितके आगे पाँच पच्चीस व्यक्तियोंकी सुख सुविधाकी कृष्ण भी गिनती नहीं है। एक पालीसे हजारों बचते हों तो अपनी लड़की होंते हुए भी उस पालीकी मुझे आवश्यकता नहीं है !’

‘पर हमारी प्रतिष्ठा ?’

‘हमारी प्रतिष्ठाके पहिले वैशालीकी प्रतिष्ठा है। दो चार लिच्छवियोंका नष्ट होना देखा जायगा किन्तु समस्त लिच्छवी जनताका निर्मूल होना नहीं सहा जा सकता ! आनन्द, अभय लिच्छवीका तिरस्कार मैं प्रत्यक्ष रूपमें नहीं कर सकता !’

‘तब पालीका क्या होगा ?’

‘पाली...’ महानाम रुक गये और स्थिर नेत्रोंसे आनन्दको देखने लगे; उनका कम्पन कम हो चला था—‘पाली मेरी पुत्री है; महानामकी पुत्रीको उसका धर्म सिखानेकी आवश्यकता नहीं !’

‘किन्तु अभय ब्याहे उसके पहिले ही कोई दूसरा विवाह कर ले तब ?

‘तब ? कर ले !...’

‘करेगा ही !’

‘किन्तु बहुत शीघ्र ही विवाह करे तब ! यह बात लोगोंमें फैलाने में अभयको अधिक समय नहीं लगेगा । आँखोंमें धूल डालकर काम निकालने में अभयको बहुत कम समय लगता है, यह न भूलना !’

‘पालीका विवाह करके उसकी आँखोंमें मैं धूल डालूँगा !’

‘तेरे शब्दोंपर मुझे आस्था है आनन्द !’

इतना कहकर महानाम शय्यापर गिर गये; आनन्दने धीरेसे उनके पैर शय्यामें रखे; महानामने करवट बदली, उनकी आँखोंमें आँसूकी एक अस्पष्ट झलक थी, जिसे आनन्द न देख सका !

शयनगृहके बाहर पैर रखते ही आनन्द रुक गया, वहाँ दासी भद्रा खड़ी थी; उसे देखते ही आनन्दका रहा सहा क्रोध भी विलीन हो गया । भद्रा की प्रेम-भरी आँखें इसका कारण थीं । आनन्दने द्वार बन्द किया ।

भद्रा थी तो दासी ही, किन्तु उसके जीवनका भूतकाल किसीको ज्ञात न था; महानामके घरकी अन्तर्व्यवस्थाकी वह अधिष्ठात्री थी । कोई उसे दासी न मानता था । उसके पास एक ही वस्तु थी—अगाध और असीम प्रेम—जो कि आनन्दके चरणोंपर अर्पित था । दासीसे विवाह करना आनन्दको इसलिए कठिन था कि महानाम वैशालीके एक प्रतिष्ठित नेता थे । दोनोंका प्रेम धीरे धीरे, अप्रकाश्य भावसे वहाँ तक पहुँच गया था जहाँ उससे छूटना उन दोनोंके लिए असंभव था । उन दोनोंके हृदय साक्षी थे कि उन्हें मृत्यु भी अलग नहीं कर सकती । यह होते हुए भी, किसी ने दोनोंका प्रेम-संभाषण न सुना, क्योंकि वे कभी प्रेमकी परिभाषामें बात नहीं करते थे । किसीने उनका प्रणय भी न देखा, क्योंकि वे किसीको देखने न देते थे । उनका प्रेम, प्रेम ही था; अगाध और आंतरिक !

थोड़ी देर तक इसी तरह देखते रहनेके बाद भद्राने मौन भंग किया 'वरराजको खोजनेके पहिले ही विवाहकी जल्दी किसलिए ? पाली तो ब्याहने वाला पालीकी अपेक्षा चतुर होना चाहिए । है ?'

‘ तेरे ध्यान में है ?’

‘ ना !’

‘ कोई भी नहीं ?’

‘ होगा तो सही !’

‘ कौन है, कहाँ है ? कैसे मालूम हुआ ?’

‘ ईश्वर सेरके सिर सवा सेर रखता ही है ! पालीका समया भी कहीं होगा तो सही न ?’

आनन्द हँस पड़ा ! भद्रा निर्निमेष नेत्रोंसे उसे देखती रही ।

[६]

वैशालीके वीथि-मन्दिरों पर रात उतर आई थी—चाँदनी रात । रसिक लोग कूटगारसे थोड़ी ही दूर स्थित मशुअयानमें अपनी प्रियतमाओंके साथ बिहार कर रहे थे । कई तो घरोंकी ओर लौटे जा रहे थे । पेड़ोंकी गहरी छाया में, शिलाओंपर, कितनों ही के गलोंमें अभी तक उनकी प्रियतमाओंके कर कमल लिपटे हुए थे । कई ऐसे भी निर्बन्ध और निरंकुश युवक थे जो अभी भी अपनी रसिक रूपसुन्दरियोंके साथ, विचित्र मदमस्तीसे वहाँ प्रविष्ट हो रहे थे । उनके ओठों परकी सुरा अभी तक सूखी भी न थी । उनकी वे प्रेयसियाँ या तो नर्तकी थी या गायिकाएँ; जिनकी ओर, दिनमें कोई आँख उठाकर भी नहीं देखता था ! वैशाली ही थी न ! उसे संगीत और नृत्यकी आवश्यकता थी, इसलिए इन कलाकारोंका भी ललितकला जैसा ही सम्मान किया जाता था—ये नर्तकी और गणिकाएँ वैशालीके युवकोंकी बुद्धिको तत्पर और उल्लासमय रखनेके लिए आवश्यक थीं !

अभी उद्यानके एक ओर दर्शकोंका झुण्ड लगा था । कभी कभी पूरे उद्यानको ही हँसीसे भर दे इस तरह दर्शक हँस पड़ते थे और दूर कहीं वृत्तोंके

नीचे एकांतमें प्रेमालाप करते हुए कोई 'जोड़ा' चौक उठता ! पश्चिमी प्रदेशों से कई नट आये थे, जो कठपुतलियोंका खेल दिखाते थे ।

कुछ शौकीन युवकोंके आग्रह से इस समय एक नाटक खेला जा रहा था । तैलके दीपकके प्रकाशमें प्रत्येक पुतली स्पष्टतासे दिखाई दे रहीं थी । पुतलियोंकी आकृतियाँ ठीक स्त्री पुरुषों जैसी थीं । घोड़े, ऊँट, हाथी, कुत्ते, शुक, मैना और चिड़िया तककी पुतलियाँ थीं, मानों दो गजके विस्तारमें समाई हुई विश्वकर्मा की छोटी सी मृष्टि ही हो ! कठपुतलियोंके सूत्रधार प्रेक्षकोंको दिखाई नहीं देते थे । उन कठपुतलियोंकी उस रंगभूमि के आस-पास सुन्दर चित्रोंवाला एक पर्दा था, जिसके पीछे खड़े रहकर सूत्रधार पुतलियोंको नचाते थे । दोनों हाथोंकी दस अँगुलियों और जिड़वा पर उनका अद्भुत अधिकार था । उनके पास ही एक वाद्ययंत्र भी छुपा हुआ था — इसलिए कठपुतलियाँ केवल बोलती ही न थीं, बल्कि गाती भी थीं, और नाचती भी ! सूत्रधार अपनी कलामें इतने नपुण थे कि दर्शकोंमें खड़ी हुई कितनी ही गानेवाली भी विस्मित होकर पुतलियोंके नृत्य और संगीतको मुग्ध दृष्टिसे देख रही थीं ! नाटक भी निराला था—एक वृद्ध किसी युवती कन्यासे विवाह करने में तैयार हुआ है लड़की अपनी सहेलियोंके साथ मिलकर व्याहने वाले वृद्धकी ऐसी हँसी करती है कि अंतमें हार मानकर उसे 'ना' कहनी पड़ती है । समाजके कितने ही प्रहारोंके लिए सोद्देश्य व्यंग और लहजेसे बोले जाने वाले तीखे शब्द क्षणमें देखने वालोंमें गंभीर बना देते, क्षणमें वे उसे गुनगुनाने लगते और क्षणमें वहाँ हास्यके फौवारे छूट जाते ! दर्शकोंके पीछे एक मनुष्य खड़ा था । दूसरोंको दिखाने भरके लिए वह कठपुतलियोंकी ओर देखता था किन्तु उसकी दृष्टि चारों ओर घूम जाती थी और तब एक धीमी निःश्वास लेकर वह नाच देखनेके लिए फिरसे कठपुतलियोंकी ओर मुँह घुमा देता था !

इतनेमें एक ओर कुछ कोलाहल सा हुआ और देखते देखते रेवा अपने दो अंगरक्षकोंके साथ हाँफती हुई वहाँ आ पहुँची ! पालीकी रेवाको

यहाँ महाउद्यानमें देखकर नागरिकोंने शीघ्र ही मार्ग कर दिया । रेवाकी आँखें लाल हो रही थीं; रंगमें भंग हुआ; नाटक रुक गया ।

‘क्यों रे ओ ! तुम्हें मैं कह न गई थी कि आज रातको हमारे यहाँ नाटक करना है, तो भी ऐसी क्या मोतियोंकी वर्षा होने वाली है जो यहाँ चिल्लाने आ पहुँचे ? कुछ सुध है तुम्हें ! महानामके आमंत्रण पर आगापीछा करनेमें क्या कुछ भुगतना होता है ?’

‘पर, बाईजी...’ नाटक बंद करते हुए वह दाढ़ी मूछों वाला प्रमुख सूत्रधार बोला ।

‘अरे, चूल्हेमें गई बाई...जी ! कैसी जात है तुम्हारी, ईश्वर जाने ! वह साकेतका सन्यासी सच ही कहता था कि इन नटोंसे तो दूर ही रहना अच्छा है !’

‘पर, बाई !’ दाढ़ी मूछों वाला सूत्रधार कुछ विनय पूर्ण स्वर में बोला— ‘हम ठहरे परदेशी, तुमने हमें साथ ले जानेको कहा था, राह देख देखकर थके फिर भी आपके दर्शन न हुए तब क्या करें ? हम समझे कि भूखों तड़पने की अपेक्षा कहीं हुनर दिखाकर पेटका कुछ उपाय तो करें ! आप कहें तो अभी भी आपके साथ चलनेको तैयार हैं !’

‘अब क्या ले जाऊँ मेरा सिर ! कल ले जाऊँगी, तुम अपने डेरे पर ही रहना !’ इतना कहकर जिस तेजीसे वह आई थी उसी शीघ्रतासे लौट गई ।

‘आह, पाली ! पाली !! नाटकमें क्या देखना है ?’ लड़खड़ाते हुए किसीने प्रश्न किया; वह था सुधीर ।

‘चुप भी रह !’ उसका मुँह बन्द करते हुए उसके साथी ने कहा; वह चिरंजीव था; उसने सुधीर को रोका किंतु वह मदिराके नशे में था, उसके हाथ पर अभी भी पट्टी बँधी थी ।

‘मैं चुप नहीं रहूँगा, तू रह ! मैं तो बोलूँगा, बोल बोल कर मरूँगा दुनियाको सुना सुनाकर मरूँगा, जगत को समझाकर मरूँगा !’,

‘धीरे बोल सुधीर...!’ चिरंजीव अधिकार-पूर्वक बोला ।

‘ किसलिए धीरे बोलूँ ? मैं जोरसे बोलूँगा, मैं लिच्छवी हूँ ! किसीका दास नहीं ! मैं बोलूँगा, अवश्य बोलूँगा ! ’

‘ सुधीर...!’

‘ मैं किसी से नहीं डरता चिरंजीव ! अभय क्या, अभयके बाप से भी नहीं ! पाली मेरी है, मेरी अपनी है, या तो उसे ब्याहूँगा नहीं तो कट मरूँगा ! नहीं, आत्महत्या नहीं करूँगा । मैं डरता नहीं, समझा ! ’

चिरंजीवने सुधीरको कमरसे सम्हाल कर उसके मुँह पर हाथ रखा । कठपुतलीके नाटककी तरह इन दोनोंके आसपास भी बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी । चिरंजीव घबराया; नशेमें और कुछ न बोल दे इस डरसे उसने सुधीरको वहाँ से हटानेका बहुत प्रयत्न किया किंतु सुधीर जाने कैसे, सबल चिरंजीवके के हाथों से छूट गया और दौड़ता हुआ एक पहाड़ जैसे सैनिक के पीछे छुप गया और चिल्लाकर कहने लगा—

‘ भाइयों, किसी भी वृद्ध पुरुष पर विश्वास करनेके पहले सोच लेना, तुम्हारे शुभचिंतक होनेका दावा करने वाले ये राजधुरंधर, समाजधुरंधर और धर्म धुरंधर सब चोर हैं, दामिक हैं, विषैले साँप हैं...!’ चिरंजीव क्षुभित हो कर सुधीरको पकड़ने दौड़ा किंतु सुधीरने तो एक छोड़ दूँसे के पीछे छुपकर ‘लुकाछिपी’ खेलना शुरू कर दी । उस पर नशा चढ़ा था, क्रोध चढ़ा था, वह अशिष्टताकी सीमा लाँघ गया—‘देखो लिच्छवियों ! यह मेरा मित्र भी शत्रु हो गया है; यह मुझे निर्वीर्य रहनेका उपदेश देता है ! एक विषैले साँप की फुँफकारोंके सामने मुझे कायर, डरपोक और कापुरुष होनेकी सलाह देता है । पर मैं स्वतन्त्र लिच्छवी हूँ, पाली मेरी है, मैं डरता नहीं—अभय से, अभयके बापसे भी !’...

सुधीर चिरंजीवके हाथोंमें आनेसे बच गया । पाली और अभयका नाम ही लोगोंमें कौतुहल उत्पन्न करनेके लिए पर्याप्त था ! वह एक छोट्टेसे झुंडमें जाकर बोला—‘ मित्रो ! यहाँ खड़ा हुआ प्रत्येक युवक मेरा मित्र है ! पकड़ लो इस चिरंजीवको, यह कायर है, डरपोक है और सबसे बड़ी बात यह

है कि यह विवाहित है ! यह बँधा हुआ है ! यह मेरा मुँह बन्द करना चाहता है, पर मैं मुँह बन्द नहीं करूँगा ! बोलूँगा, चिल्लाकर कहूँगा कि पाली वूढ़ों के लिए नहीं, जवानोंके लिए है ! हमारे लिए है !! तुम मुझे नशे में न समझना, मैं अपने हृदयके सच्चे उद्गार तुम्हारे सामने व्यक्त कर रहा हूँ, और यहाँ खड़े हुए प्रत्येक युवकको तलवार निकालकर अपने साथ खड़े रहनेका आम्रह करता हूँ !'

पाली और अभयके बारेमें, प्रकाश्य रूपसे बोलना कितना भयंकर है यह बात चिरंजीव भली भाँति जानता था । लोगोंकी भीड़ बढ़ रही थी और उसके साथ ही सुधीरका आवेश भी बढ़ता जा रहा था । दर्शकोंके बढ़ जाने पर, चिरंजीवने उछलकर सुधीरको गिरा दिया; उसे बेसुध होनेमें कुछ भी देर न लगी, चिरंजीव उसे कंधे पर उठाकर ले गया !

इस घटनास्थल से थोड़ी ही दूर एक वृक्ष की आड़में, कठपुतलियोंका नाच शांतिसे देखने वाला एक मनुष्य यह सब सुन रहा था; उसीके पीछे कठपुतलियोंका वह दाढ़ीवाला सूत्रधार खड़ा था जो कुछ व्याकुल दिखाई देता था । लोगोंके बिखर जाने पर उसने धीरेसे उस मनुष्य के कानमें पूछा— 'अभय कौन है, संजय !

'आप जिसके बारेमें सुबह मुझसे पूछ रहे थे वही निर्भय लिच्छवी सदाँर, और महान योद्धा जो अब प्रेमी है !'

'वह पालीको ले जाना चाहता है ?'

'हाँ, वह पालीको ले ही जायगा ।'

'यह नहीं होगा !'

'यह बात आपके हाथमें नहीं । अभयको कोई रोक नहीं सकता महाराज ! लिच्छवियोंके कट्टर शत्रु भी यही कहते हैं कि यदि विषधर सर्प और अभय एक ही मार्ग में सामने मिले तो सर्प को छोड़ देना किन्तु अभयको मार डालना चाहिए !'

'धीरे बोल, संजय !'

संजय चुप हो गया। राजा बिंबिसार धीरे धीरे वृत्तकी जड़ पर बैठ गया। सूत्रधारके मेषमें भी उसका रूप छुप न सका था। नकली दाढ़ीमूँछें लगाने पर भी उसकी आँखोंकी ज्योति किसी भी सुंदरी को आकर्षित करनेमें समर्थ थी। इतनेमें एक व्यक्ति ने आकर कहा—

‘भोजन तैयार है महाराज !’

‘शी... श... श... नायक कह !’ सूत्रधार ने टौककर कहा। बिंबिसार अपने आठ दस साथियोंके साथ एकांतमें भोजन करने बैठा। अभय को दूँद निकालने, उसे देखने और हो सके तो उससे मिलकर बातचीत करने का उसने निश्चय कर लिया था।

‘महाराज...!’ उनमेंसे एक बोला—‘नगरमें जानेके लिए मेरा मन ‘ना’ कहता है !’

‘हाथोंमें लिया हुआ काम पूरा न करना उससे हार मानना है, और मैं हारको समझता ही नहीं...!’ बिंबिसारने निर्भयतापूर्वक कहा।

‘यहाँ आपसे मित्रके रूपमें कुछ भला बुरा कह जानेके लिए क्षमा माँगता हूँ। महाराज ! जीव...में, एक स्त्रीके लिए प्राण देना उतना आवश्यक नहीं जितना किसी अधिक उत्कृष्ट कामके लिए उसे बचाना है !’

‘मैं ब्राह्मण नहीं और विचारक भी नहीं...!’

‘आप मरनेवाले हैं, मारनेवाले हैं; किंतु यह सब समयपर ही शोभा देता है !’

‘मैंने तुम सबोंसे पहिले ही कह दिया था, मेरे साथ न आओ। तुम में से किसीने न माना; अब यहाँ आकर क्या चाहते हो ? भाग जानेकी बात करते हो ?’

‘महाराज ! आपका शरीर आपका नहीं, हमारा है, देशका है ! उसे चोट पहुँचनेके पहिले ही हम सब उत्सर्ग हो जाएँगे ! किन्तु...’

‘पालीका महल तूने कितनी बार देखा है ?’...’ महाराजने अपनी पूर्व-वत् राजसी निर्भयतासे पूछा।

अपनी बातको बिलकुल उड़ जाती देखकर संजय अधिक न बोल सका, किंतु उसका हृदय भीतरसे गजभर फूल गया था ! इसी समय लौट जानेकी बात न निकाल कर बिंबिसारके हृदयमें पालीको देखे बिना, संजयने वापिस न जानेका निश्चय दृढ़ कराया था ।

इतनेमें...दोनों कुछ चौंक पड़े । सामने वृत्तकी छायामें किसीके पैरोकी आहट सुनाई दी । बिंबिसार और संजय धीरे धीरे उस ओर चले गये ।

[७]

‘मैं चलूँगी, चलूँगी, अवश्य चलूँगी !’

‘मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगा !’

‘किसलिए ?’

‘सीमांतके मागधियोंने हमारे ग्रामीणोंको उसकाया है; युद्ध होनेकी अधिक सम्भावना है ।’

‘इससे क्या...?’ पालीने निश्चित स्वरमें अपने भाईसे पूछा ।

‘कुछ नहीं, कुछ नहीं !’ आनन्दने जैसे बिना चिढ़े ही उत्तर दिया—

‘पर अकारण ही एक स्त्रीको युद्धमें घसीट ले जानेका काम एक पुरुष नहीं कर सकता’

इस बार पाली खीझ गई—‘तो मेरा बड़ेसे बड़ा अपराध यही है कि मैं नारी हूँ ! और नारी हूँ इसलिए मुझे युद्धमें न जाना चाहिए ? क्या विधाता ने युद्धका शौर्य और विजय पुरुषों हीके लिए निर्मित किये हैं, और उसे पाने का अधिकार पुरुषोंको ही है ? और यह अधिकार इसीलिए न कि वह पुरुष है, क्यों वीरवर ?’ एक ही श्वासमें, क्रोधकी मात्रा जरा भी कम किये बिना, भाईको भय-भीत करनेके लिये पाली बोली । आनन्दने कुछ ऊबकर कहा—

‘तुम्हें तो लोगोंके मुँह ही बन्द कर देने हैं !’

‘इतनी चपल तो हूँ न ?’

‘नहीं, इससे भी अधिक !’

‘तब साथ ले चलो न ! युद्धमें तो बहुत मनुष्य होते हैं, मेरी इस चपलतासे और अधिक लोगोंके मुँह बन्द कर दूँगी !’

‘मैं भूल गया’...चिढ़ता हुआ आनन्द आगे बढ़ा—‘पाली, युद्धमें जाते समय हम यों ही शस्त्र ले जाते हैं ! युद्धके आह्वाहनकी रणमेरी सुनते ही हम, रण-क्षेत्रमें हाथके शस्त्रास्त्र नीचे रख देते हैं और वाग्युद्ध प्रारम्भ कर देते हैं; जो बोलनेमें जीतता है वही युद्धमें जीतता है इसलिए तुम्हें युद्धमें जानेसे जरा भी नहीं रोकना चाहिए सच है न ?...पर युद्धके लिए इतनी तड़पनेवाली शौर्य मूर्ति ! इस बार मैं मागधियोंसे युद्ध करने जा रहा हूँ, जहाँ वे डरपोक मनुष्य शब्दोंके लेनदेनके स्थानपर प्राणोंके लेनदेन का खेल करते हैं; इसलिए यदि आपको साथ नहीं ले जा सकूँ तो क्षमा करना !’

‘मैं क्षमा करनेवाली शौर्यमूर्ति नहीं हूँ !’

‘नहीं, आप तो समझदारको पागल बना देने वाली विप्लवमूर्ति हैं !’

‘फिर भी मुझे साथ नहीं ले जाते ?’ पालीने भारी मुँहसे चिढ़े हुए आनन्दको उत्तर दिया । ‘मुझे साथ ले जाओ, हो सकता है मैं सचमुच ही मागधियोंको पागल बना सकूँ !’

‘पर इसके पहिले तो मैं ही पागल हो जाऊँगा !’ मुकुट पहिनते हुए आनन्दने कहा, उसके मुख पर दबे हुए क्रोधका हास्य था बोला—‘तुम्हें यहीं रहना होगा, यह मस्ती छोड़ देनी होगी, गंभीर बनना होगा, क्योंकि अब.....’

‘जो आगे बोले तो शस्त्र छुपा दूँगी, कल जाने ही न दूँगी’,...पाली बीचमें ही बोल दी । भाईके कहनेका उद्देश्य क्या था, वह अच्छी तरह जानती थी । एकाएक, क्षण भरके लिए दोनों चुप हो गये । पाली बाहर से चाहे कितनी ही चंचल हो किन्तु वह हृदयसे इतनी गंभीर तो थी कि पिता की मनोदशा समझ सके । पिताको उसके विवाहकी कितनी चिंता थी, यह वह अच्छी तरह जानती थी । पितापुत्रने अभय वाली बात उससे गुप्त रखी थी; पर पाली सब कुछ समझती थी । अभयकी करतूतों और षड्यन्त्रसे वह

अभिज्ञ थी। संसारके प्रत्येक देशमें, ऐसा एक पुरुष अवश्य जीवित रहता है जिसके अत्याचार और अनाचारोंको पहिचाननेकी, संसारके भले और सच्चे मनुष्योंमें समझ होती है, और जीवनमें जो भी कुछ शुद्ध, सुन्दर और निर्मल है, उसका मूल्य आँकनेके लिए प्रकृति ऐसे अत्याचारी और अनाचारीको जीने देती है।

अभय अत्याचारी और अनाचारी था यह बात पाली भलीभाँति जानती थी। कई स्त्री पुरुष ऐसे होते हैं कि किसी विशेष कारणके बिना ही हमें, उन्हें देखते ही उनके प्रति अरुचि उत्पन्न होती है। पालीको भी अभयके लिए ऐसी ही अरुचि थी।

जिस कारणवश आनन्द, पालीको घर रखना चाहता था, उसी कारण पाली घर रहना नहीं चाहती थी। वह जानती थी कि घर रहकर एक या दूसरे प्रकारसे उसे विवाहकी बात सुननी पड़ेगी। पालीकी बुद्धि तीक्ष्ण थी। उसके नटखटपनके पीछे प्रकृतिने गहरी समझ भी रखी थी। उसके पीछे लोग किसलिए पागल हो जाते हैं, यह वह अच्छी तरह जानती थी। विद्वता सौंदर्य और अद्भुत तेजस्विता, ये तीन पालीके आकर्षणके मुख्य तत्त्व थे, और ये ही उसके शत्रुकी कमी पूरी करते थे। इसलिए उसका मन किसीने भी जीता न था। कोई युवक सुंदर हो तो विद्वान नहीं होता; विद्वान हो तो रूपवान नहीं होता, यदि सुंदर और विद्वान भी हो तो प्रथम संभाषणमें ही पांडित्य अथवा मूर्खता ज्ञात हो जाती है। पालीको पराजित कर सके ऐसा सुंदर, विद्वान और अद्भुत बुद्धिशाली युवक उसे अभी तक मिला ही न था; तब वह अपने विवाहकी बातको खेल और मस्तीमें न उड़ाए तो करे भी क्या ?...

‘सच बात है पर क्या करूँ ! यहाँ अकेली बैठना मुझे सुहाता भी नहीं !’ भाईको समझाती हुई पाली बोली।

‘इसीलिए तो मैं कहता हूँ...लोग कहते हैं...’

‘क्या कहते हैं ?’ आँखें प्रज्ज्वलित कर पालीने पूछा।

‘लोग कहते हैं कि अकेलीकी अपेक्षा दो ही ठीक.....’ ऐसा वाक्य जिह्वा पर आ जाने पर भी आनन्द न बोलसका, चुप रहा। फिर बात बदल कर कहा—‘हमारे शत्रु जंगली नहीं, मागधी हैं...’

‘चाहे मागधी ही हों ! उनका राजा ही क्यों न आ जाए !...’

‘वह आ जाए तो क्या कहे ?’

‘पहले मैं नहीं मेरा तीर बोलेगा और तब मैं बोलूंगी ! एक बार मेरे सामने खड़ा तो रहे, तब...तब ..’

सहसा पाली बोलते बोलते रुक गई। उसकी दृष्टि सामने ही खड़े हुए एक आकर्षक पुरुष पर पड़ी—उसकी दाढ़ी मूँझोंके पीछे एक सुंदर चेहरा छुपा हुआ था, यह विश्वास किसीको भी उसके देखते ही हो सकता था। वह था कठपुतलीका सूत्रधार !

सूत्रधारने नमस्कार किया। उसके भुकेनेमें भी एक प्रकारका मद था। उसके पीछे दूसरे सात मनुष्य थे। वे लोग कठपुतलीका खेल दिखाने आये थे।

यह खेल स्वयं रेवाको ही देखना था या पालीको दिखाना था, यह बात कोई भी न जान सका। रेवाके मस्तिष्कमें कठपुतलियोंके ये नट ही क्यों आये यह भी कोई नहीं जानता था। पर इन कठपुतलियों का नाटक तो रेवा ने ही पसंद किया, इसमें जरा भी सन्देह न था।

...अविवाहित रहनेकी अपेक्षा, दंतविहीन वृद्धसे भी विवाह करना हजार गुना श्रेष्ठ है, यही नाटक का विधान था। रेवाने दृढ़ निश्चय किया था कि यही नाटक पालीको दिखाना है।

नाटक प्रारम्भ हुआ; दर्शक एकत्रित हो गये। चतुर सूत्रधार, छोटीसी बहू और वृद्ध पुरुषमें होनेवाले प्रसंगों को इस चतुराईसे प्रस्तुत करता था कि देखने वाले हँस हँसकर लोटपोट हो जाते थे। वृद्ध पतिकी पशुवृत्ति और छोटीसी पत्नीको रिभानेके मूर्खतापूर्ण प्रयत्नोंसे, बालविवाह और वृद्ध विवाहको न मानने वाले दर्शकोंको वैसा न करनेके लिए मानों व्यंग कर रहे हों, ऐसा मालूम होता था।

पालीका ध्यान सूत्रधारकी ओर था। सूत्रधारकी आँखें उसके हृदयके किसी गहरे निभृतकोण को जागृत करके अपनी ओर खींच रहीं थीं—पाली को लगा कि जैसे कोई बहुत निकटका आत्मीय वर्षों बाद मिला हो और फिर भी उसके सामने देखनेकी इच्छा न रखता हो ! पालीका ध्यान बारबार उसी ओर जा लगता था !

नाट्य समाप्त हुआ। इसी बीच पालीका क्रोध, अतिक्रोमल अवस्था में परिणित हो गया था। नाटकके इतने बड़े समयमें उस मानी सूत्रधारने पालीकी ओर एक बार भी न देखा, जबकि वह स्वयं मुख बनकर, टकटकी बाँधकर उसे ही देखती रही ! पालीका स्वाभिमान और सौंदर्यमद पुनः जागृत हुआ।

नाटक समाप्त होने पर, सूत्रधारको बुलाकर, महानामने पारितोषिक दिया। आनन्द घूर घूरकर सूत्रधार को देख रहा था। थोड़े समयके लिए भी यह सूत्रधार, महानामको उनके दुःखमें से खींचकर हास्यके प्रकाशमें ले जा सका था। पारितोषिक देते समय महानामने सूत्रधारको कुछ सोचते हुए देखा; उनकी आँखें कुछ खिंचीं, किन्तु सूत्रधारके मुखकी मुस्कानमें जरा भी अन्तर न पड़ा। सूत्रधारके पीछे खड़े हुए उसके सहायक चौंक उठे। मुँह खोले वे महानाम को देखने लगे। उन्हें संदेह हुआ—कहीं वे पहिचाने तो नहीं गये हैं ! ...महानाम हँस पड़े, सहायकोंको भयपूर्ण आशंका हुई, प्राण जैसे उछलकर मुँहमें आ गये ! महानाम बोले—‘अभी यदि मगध जाऊँ तो बिबिसार तुम्हें जैसा ही दिखाई दे !’ सहायकोंकी आँखोंमें अधेरा छा गया, किन्तु सूत्रधारके मुँहकी मुस्कान वैसी ही रही, बोला—

‘बिबिसार ही समझ लें !’...

सहायकोंके मुँह पर जैसे किसीने थप्पड़ लगाई हो, वे बिल्कुल कठपुतली से होकर खड़े रहे। महानाम फिर हँसे, खिल खिलाकर हँसे—

‘बिबिसार यहाँ ? सात वर्ष पहिले मैंने बिबिसारको देखा था, वह भी -यदि दाढ़ी मूछ बढ़ा ले तो तुम्हें जैसा ही दिखाई दे !’

इस बार सूत्रधार हँस दिया और कठपुतलीकी तरह उसके सहायकगण भी, नीरस हँसी हँसने लगे। उनकी घबराहटका कारण कोई समझ न जाय इस डरसे और जोरसे हँसने लगे ! पाली भी हँसी, पर केवल हँसनेके लिए ही अभी भी उसका स्वाभिमान जागृत था।

सूत्रधारने महानामको नमस्कार किया; आनन्दकी ओर घुमकर हाथ जोड़े। और अन्तमें पालीके सम्मुख आकर बन्दन किया। जैसे कुछ भी अपेक्षा न की हो, पालीने केवल थोड़ा सिर हिला दिया। उसे विश्वास था कि सूत्रधार चला जाएगा, किन्तु वह न हटा, जहाँ था वहीं खड़ा रहा। पाली को पुनः उसकी ओर देखना पड़ा,—सूत्रधारके मुखपर मंद मुस्कान थी, पाली की दृष्टि अचानक उसके हाथ पर जा लगी—उसके हाथ पर एक छोटी सी कठपुतली थी, वही कठपुतली जो कि अभी नववधू बन चुकी थी और अपने बूढ़ेको हैरान करके जिसने सब दर्शकों को खिल खिलाकर हँसाया था।

‘मैं तुमपर मोहित हूँ, मुझे ले लो !’...वह पुतली बोल उठी। सब हँस पड़े; पाली भी हँसी, पर दूसरे ही क्षण गम्भीर होकर उसने सूत्रधारकी ओर देखा।

‘एक परदेशीकी भेंट।’ सूत्रधार सविनय बोला। गलेसे तरह-तरहके स्त्री-पुरुषोंके स्वर निकलनेवाले इस सूत्रधारका अपना स्वर सबसे अलग था; स्वरमें कुछ ऐसा प्रभाव था कि कोई उसकी उपेक्षा न कर सकता था। पाली क्षणभर स्तंभित रह गई।

‘प्रेतिदिन प्रातःकालमें, सूर्यकी प्रथम किरणोंके साथ इसका वक्ष फटता है, और यह उसमें रखी हुई गुप्त वस्तुको दिखलाती है, किन्तु एक बार बन्द कर देनेके बाद दूसरे दिनके सूर्य दर्शन बिना यह नहीं खुलती !’ इतना कहकर सूत्रधार चुप हो गया; उसके मुखपर पूर्ववत् मुस्कान थी। पालीने पुतली ले ली। सूत्रधार और उसके सहायकोंने पुनः नमस्कार किया और जाने लगे।

इस विचित्र सूत्रधारको पाली देखती रही; उसकी विनयमें भी मद

था, झुकता था किंतु उसमें आज्ञाका छुपा हुआ अन्तर्भाव था ।

‘यह कौन होगा...?’ पालीने इधर उधर देखा; तबतक सब लोग बिखर गये थे । उसने सूत्रधारको मनसे दूर करनेका प्रयत्न किया और धीरे-धीरे शयनगृहकी ओर जाने लगी ।

[८]

नगर छोड़नेके बाद, वृक्षतक पहुँचनेपर सबसे पहिले संजय नीचे बैठा । बिंबिसारने असीम साहस किया था—कुछ भी चूक हो जाती, जरा भी घबराहट मालूम हो जाती तो, महानामके महलमें ये सब मागधी मृत हो गये होते ।

अति कठिनाईसे वशमें रखी हुई घबराहट, भय और अशांति एकाएक उभर आई । नीति चतुर संजय, ब्राह्मण महाराज ब्रह्मदत्त और पत्थरके समान शुष्क माने जानेवाला बिंबिसारका अंगरक्षक शबर, वृक्षके नीचे बैठे काँपने लगे थे । बिंबिसारको हँसी आ गई । सबसे पहिले संजयने बोलनेका साहस किया,—महाराज ! इस तरह बोलना आपको कैसे सूझा ?

‘तो क्या कठपुतलियोंको खिलानेवाला जीवित पुतलियोंके आगे घबरा जाए ? पिताजी मुझसे कहते थे कि कठपुतलियोंका नाटक महीनेमें दो बार अवश्य खेलना चाहिए, इससे मन बहुत सावधान और संयमित रहता है, आज मुझे इसका विश्वास हुआ ।’

‘महाराज !’... उछलते मनसे ब्रह्मदत्त बोला—‘जानते हैं’ हम गरीब मनुष्य अकारण ही कट मरते और महाराजाको मरवा देनेका कलंक हमारी सात पीढ़ियोंको लग जाता ?...’

‘किन्तु तेरी पहिली पीढ़ी पैदा करनेवाली तो यहीं है, तू क्यों घबरा घबरा कर प्राण दे रहा है ?...’

‘महाराज’ मैंने कहा यों ही मारे जाते... मैं घबराता तो नहीं हूँ !...’ इतना कहकर, घबरा न रहा हो यह दिखा उसने इधर उधर देख लिया—कहीं उनके पीछे कोई लिच्छवी तो नहीं आया !... किन्तु जंगलमें निस्तब्ध शांति देखकर अनुभवी ब्रह्मदत्तने एक लम्बी साँस ली और बोला—

‘महाराज’ अब हम मगध कब लौटेंगे ?...’

‘बस न ?’ बिंबिसार हँसा; उसके हास्यका अर्थ समझकर घबराते हुए भी ब्रह्मदत्त बोला—‘हमें अकेले रहनेको कहें महाराज, हम पूरे वर्ष यहाँ रह जाएँगे, पर आपके साथ रहना याने रोज रातको मरकर सुबह जीने जैसा है ! इसलिए...इसलिए...’ ब्रह्मदत्त और कुछ बोले उसके पहिले ही बिंबिसारने पुनः अट्टहास किया । ब्रह्मदत्त फिर बोला—‘यदि कल हम उन षड्यंत्रकारियोंके पीछे न गये होते तो आजकी भूमि ज़रा भी न आती ।’

‘अरे मूर्ख ! वह तो दैवी संकेत था; उन लोगोंकी गुप्त बातें हमने अकस्मात् सुन लीं । वह कोई साधारण बात न थी, उससे तो हमारे यहाँ आनेका साहस अधिकांशमें सफल हुआ है ।’

उत्तरमें ब्रह्मदत्त तुरन्त खड़ा हो गया, हाथ जोड़क, गलेमें जैसे कुछ अटक रहा हो उस कठिनाईसे बोला—‘आप अब क्या करना चाहते हैं ? यहाँसे कहाँ जानेका विचार है ?...’

‘कल प्रातःकालसे पहिले उस कदलीवन तक पहुँच जाना है, क्यों संजय ?’ अभी तक चुप बैठे हुए संजयको देखकर बिंबिसारने पूछा । उत्तरमें संजय, शून्य दृष्टिसे उसकी ओर देखने लगा । ‘जिस जगह षड्यंत्रकारी वार करेंगे, वहाँसे पहिले हमें ही वार करना चाहिए, क्यों ?’

‘पर वे तो पचासके लगभग हैं ।’ आँखें हटाए बिना ही संजयने कहा—‘कृषिग्राम जाकर हमारे मनुष्योंको प्रातःकालसे पहिले सहायताके लिए नहीं बुलाया जा सकता । प्रयत्न कर देखें ?’ ‘नहीं, नहीं ।’ बिंबिसार शांतिपूर्वक बोला—‘आनन्द और पाली अकेले नहीं आएँगे ।’

‘आपको विश्वास है ?’

‘हाँ ।’

‘किन्तु समयका कुछ विश्वास नहीं है ।’

‘घबरा मत !’ बिंबिसारने कहा ।

सोते समय, संजयने पास सोये हुए ब्रह्मदत्तके कानमें धीरेसे कहा—

‘ब्रह्मदत्त, प्रेम करनेवालेको भय और तर्ककी बात गले ही नहीं उतरती !...तू घबरा रहा हो तो चला जा, तेरे लिए एक बहाना ढूँढ़ निकाला है !...’

‘महाराजको छोड़कर कभी मैंने ‘मेरा मेरा किया है ? मुझे डरपोक समझता है ? मुझे कायर समझता है...महदाचार्य परिणित वैजकुण्डके पुत्रको तू...तू...’

‘हाँ, हाँ, हाँ !’ कहते हुए संजयने, आवेशमें उठते ब्रह्मदत्तको रोका !... ब्रह्मदत्तको फिरसे सुलानेमें संजयको पूरा एक प्रहर लगा ! और वह भी सतत परिश्रमके कारण थक जानेसे गहरी निद्रामें डूब गया ।

पर बिंबिसारको नींद न आई । उसके रोम रोमसे ‘पाली’ ‘पाली’ की भंकार उठ रही थी । वह पालीके मंदिरमें गया था, उसने पालीको देखा था— और पालीने उसे जीत लिया था । सदासे पुरुषको नारीके हाथों विजित होना ही लिखा है; जो पराजित नहीं हुआ वह या तो पुरुष ही नहीं, या महात्मा है !

बिंबिसार महात्मा न था; सीधा-सादा एकमार्गी ब्रह्मचारी भी न था । सोलहों कलाओंसे खिले हुए उसके वर्तमान यौवनने जीवनके अनेक पहलू देखे और अनुभव किये थे । सोये सोये, बीते जीवनकी अनेक घटनाएँ कठपुतली के रूपमें उसके मनके आगे आकर नाचने लगी ! घटनाओंकी वह एक जैसी पंक्ति, अन्तरिक्षसे निकलकर, उसकी आँखोंमें आकर पुनः वहीं विलीन होने लगी ।...एक गांधारी राजकन्याने उसे पाना असम्भव जानकर उसे देखते ही आत्महत्या कर ली थी; कोशल और अपरांतके राजाओंकी कुमारियाँ उसके बिना अन्न जल न लेनेका निश्चय करनेके बाद; विवश होकर दूसरोंसे ब्याही गई थीं । किसीने त्रिया-चरित्र भी किये, और मरण वशीकरण मन्त्रों के अनेक प्रयोग करने पर और अप्सराओंको लजानेवाली सुन्दरियोंके आह्वाहन करनेपर भी बिंबिसार अब तक स्वतन्त्र रह सका था । हाँ कभी कोई नर्तकी या श्रीमन्त कुमारियाँ अपने प्रियतमोंको त्याग कर उसके पीछे पागल होकर रङ्गमहलमें आ जातीं—बिंबिसार उनपर रीझनेका प्रयत्न भी करता, और कई बार अपनेको खो भी बैठता था ! इतना होते हुए भी यह सब थोड़े समय के लिये होता—रातको बिताकर दिन देखनेके लिये ही ।...

बिंबिसार राजा था, राजाको रानी होनी चाहिए इसीलिए उसका विवाह भी हुआ था, किन्तु किसीने उसे जीता न था...

पालीने उसे जीता, ऐसा जीता कि बस । इसके बाद ऐसी कोई दूसरी पराजय उसके जीवनमें घटेगी या नहीं, यही प्रश्न था !

रातके अन्तिम प्रहर तक कितनी ही बार उसने, पालीको देखनेसे लेकर, पुतलीकी भेंट देने तकका एक-एक क्षण याद किया । ज्यों ज्यों पाली उसकी कल्पना-सृष्टिमें आने लगी त्यों त्यों वह एक विशेष प्रकारके नशेमें भ्रमित होने लगा—‘उसका प्रस्फुटित यौवन, दो तीन बार वक्ष परसे उपवस्त्र हट जानेपर उसे ढँकनेको उद्यत दिखाई देनेवाले उसके हाथों और मुखका परिचालन; उसकी मदमाती तीक्ष्ण आँखें, प्रेमकी पराकाष्ठा पर पहुँचा देनेवाली रसमय सौंदर्यकी मूर्ति—इन सबोंने उसे विभोर कर दिया । राजा राजत्व भूल गया, बुद्धि गँवाई, समझ खोई । नासमझ तरुणकी तरह—सुधीरकी तरह—मूर्ख बनकर; पागल होकर वह प्रभातकी प्रतीक्षामें बैठा रहा !

प्रभात हुआ । प्रातःकालकी प्रथम किरणें पालीकी कोमल देहपर पड़ीं; पाली जागृत हुई; और जिसपर उसकी पहली दृष्टि पड़ी उस वस्तुको विस्फारित नेत्रोंसे देखने लगी—सूर्य किरणके स्पर्शसे कठपुतलीका हृदय फट गया था ! पाली उसके पास गई; कठपुतलीके हृदयपटमें एक भोजपत्र पर कुछ लिखा हुआ दिखाई दिया; पालीने धीरेसे उसे उठाकर पढ़ा—और चीख कर दूसरे कक्षमें दौड़ गई ।

उसके अचानक चीखनेसे सब चौंक गये थे; वस्त्र पहिनते हुए आनन्दने पालीको अपने शयनगृह की ओर दौड़ती हुई देखा; वह बाहर आया । पालीने भोजपत्र उसके हाथमें रख दिया; और आनन्द भी उसे पूरा पढ़ लेनेके बाद चौंककर पालीकी ओर देखने लगा । भोजपत्रमें लिखा था—

‘साथमें मनुष्य लेना, अभय हमला करेगा ।’.....

पाली और आनन्द एक दूसरेको देखने लगे । पालीने संकेतसे सिर हिलाया; उसे कहना था—‘अभयसे सावधान रहना; नहीं तो तुम्हारी पाली बेमौत मर

जायगी...' परन्तु आनन्दको समझानेका यह समय नहीं था, क्योंकि उसके मुखपर क्रोधकी कठोर रेखाएँ उभर आई थीं !

'मैं अभी तैयार होकर आई...' कहकर पाली वहाँसे जाने लगी, आनन्द बहिनको रोक न सका !

[९]

गहन वनको मेदती हुई सूर्यकी रश्मियाँ मानों वृक्षों और पृथ्वीके दरोंमें छुपनेका प्रयत्न-सा कर रही थीं। घोंसलोंकी ओर जाते हुए पक्षीगण कलरव करते हुए उड़ रहे थे और उनके कलरवको भंग करता हुआ आनन्दका रथ सरपट वेगसे बीहड़ वनमें चला जा रहा था। घोड़ोंके मुखका भाग और आनन्दके रक्तवर्ण मुख और सूखे ओंठ स्पष्ट बतला रहे थे कि वह कितनी शीघ्रता और कितने समयसे यात्रा कर रहा था।

पाली साथमें ही थी; रथको इधर उधर घुमाते हुए आनन्दको वह शांति-पूर्वक देख रही थी। भाईकी व्याकुलता सदासे उसके आनन्दका कारण होती थी—ऐसे समयमें उसे भयके स्थानपर विनोद हो सकता था। एक ओर मुँह करके, हथेलीमें ठोड़ी टेककर, दूसरे हाथसे एक तीर उछालती हुई गंभीर मुँह बनाकर वह बोली—'सर्वज्ञताका दावा करनेमें बेचारा मनुष्य हमेशा ही मुँहकी खाता है ?

'क्या बोली ?' परिश्रमसे उद्विग्न आनन्द पूछ बैठा !

'कुछ नहीं, कुछ नहीं !'...उसी गम्भीरतासे पालीने उत्तर दिया और तनिक ठहरकर उसे चिढ़ानेके लिये फिर बोली—'मैं यह कहनेका विचार कर रही थी कि उस किसानका कहा माना होता तो...'

'कौन-सा किसान...?' क्रोधमें आनन्दने पूछा।

'पर आपको प्यास लगी है तो बेचारी बहिनपर क्यों चिढ़ते हैं !' भारी मुँह बनाकर पालीने कहा। आनन्द क्रोध पी गया, बोला—

'किसने कहा कि मुझे प्यास लगी है ?'...

'किसीने नहीं...' पालीने उत्तर दिया; तब ओठों पर कृत्रिम मुस्कान

लाकर बोली—‘तुम्हारे ओंठ सूखे मालूम होते हैं; कुछ कुछ काँप भी रहे हैं...अब न काँपनेका दिाखवा न करना !...इसलिये मुझे लगा कि तुम्हें प्यास लगी होगी । देखना; मुझे प्यास नहीं लगी है । मार्ग भूलकर दो प्रहर तक भटकनेपर कुछ प्यास थोड़े ही लगती है ! और लगे ही किसलिये ? मैं तो यही कहती थी कि दो प्रहर पहले जो किसान मिला था उसके बताये हुए मार्ग पर गये होते तो कुछ खा-पीकर विश्राम भी कर पाते !...पर मुझे प्यास नहीं लगती है ।’

सदाकी तरह आनन्दका क्रोध विलीन हो गया; वह हँस पड़ा । सच पूछो तो उसके क्रोधित होनेका कारण अभी तक नन्दीग्राम न पहुँचना ही था । भल्लोंके गाँवकी सीमापर भीषण प्रतिरोधकी सम्भावना थी इसलिए नन्दीग्रामकी पंचायतसे जितनी शीघ्र मिला जाता उतना ही अधिक लाभ था । किंतु जल्दी-जल्दीमें और मार्गमें मिले हुए अभयके सारथीकी सलाहसे, अनजानेमें वह ऐसे गहन जंगलमें जा घुसा था कि अब तक मुख्य पथपर आ ही न सका । देरमें और देर...कुछ ही समय पहिले वर्षाऋतु पूरी हुई थी इसलिए कितने ही पुराने रास्तों और गिरे हुए वृक्षोंसे वन नया नया सा मालूम हो रहा था । अकस्मात् एक पोखरके निकट रथ आ पहुँचा; उसे देखते ही पाली कूदकर उतर गई और उस ओर दौड़ी । तृषातुर आनन्द भी जाकर पोखरके किनारे बैठ गया ।

इतनेमें चावुककी फटकार सुनाई दी; भाई बहिनने चौककर रथकी ओर देखा, किन्तु वे कुछ सोचते उसके पहले ही रथ दूरकी घनी भाड़ियोंमें अदृश्य हो गया । कोई अपरिचित व्यक्ति रथको शीघ्रतासे दौड़ाकर ले जा रहा था । पानी पीना छोड़, आनन्द रथ ले जाने वाले का मुँह देखनेके लिए शीघ्रतासे निकटकी एक छोटी सी टेकड़ीपर चढ़ने लगा किंतु उसके सिर पर पहुँचनेके पहिले ही वह लुढ़कता हुआ नीचे आ गिरा । पाली चीख उठी; किसीने आनन्दके सिरपर इतनी शीघ्रतासे तीर छोड़ा कि कुछ मालूम ही न हो सका । एक तेज थप्पड़की आवाज वह बेसुध होनेके पहिले सुन चुका था । रणवीर लिच्छवीको चीखनेका भी अवसर न मिला ! और....आँखकी एक टिमकारमें,

दामिनिकी एक झलककी तरह, भाड़ियोंमेंसे मनुष्य निकल आये। आनन्दको मिलनेके लिए पुकारती और दौड़ती हुई पालीकी ओर वे लोग झपटे; किंतु वे पालीको छुएँ इसके पहिले ही एक दूसरा रथ सम्पूर्ण वेगसे पालीके पास होकर निकला और जाते जाते रथके सारथीने पालीको रथमें खींच लिया। रथके पीछे ही कुछ अश्वारोही दौड़ते आ रहे थे; भाड़ीमेंसे आने वालोंने उनका सामना किया। विस्मयसे पाली अवाक् रह गई थी; वह किसी तरह बोलने का प्रयत्न करती इसके पहिले ही रथ, मुख्य पथ छोड़कर एक मोड़पर मुड़ा और आनन्द जिस टेकरीपर पड़ा था वहाँ आ खड़ा हुआ। रथ चलाने वाला उछलकर नीचे उतरा, घायल आनन्दको कंधेपर डालकर दौड़ता हुआ रथपर लाया, और रथ दौड़ा दिया।

यह सब इतनी शीघ्रतासे हुआ कि पाली विमूढ़ सी देखती ही रही। शत्रुओंके तीर लग सकनेके पहिले तो रथ दूर निकल गया था। अब पाली विस्फारित नेत्रोंसे देख रही थी—रथका सारथी वह कठपुतली वाला था।

शत्रुओंके तीर रथसे टकरा टकरा कर नीचे गिरते थे और सारथी निर्भयतापूर्वक रथ चला रहा था। गोदमें सोये हुए भाईके घावके लिए चीखना या सारथीकी वीरता पर प्रसन्न होना—पाली सोचती ही रह गई। छोटी सी बात, बिल्कुल छोटीसी बात थी किन्तु पाली इस छोटीसी वीरता पर वार गई।

छद्मवेशी संजय और ब्रह्मदत्त, अभयके छुपे हुए मनुष्योंसे लड़ रहे थे। शत्रु अधिक थे, रथको बहुत दूर गया समझ संजयने अपने सैनिकोंको छुप जानेका संकेत किया। अकारण ही वीरता पर मर मिटने का यह समय न था। वे चालाकीसे कुछ ही क्षणोंमें शत्रुकी दृष्टिसे ओझल हो गये। अभयके मनुष्य दो दो की जोड़ीमें फैल गये; वे जानते थे कि अभयके सम्मुख खड़ा रहना मृत्युसे भी भयंकर था।

पालीका रथ दौड़ रहा था। इतनेमें दो घोड़े दौड़ते हुए रथके पास आने लगे। बिबिसारने दूरसे टापोंकी आवाज सुनकर पीछे देखा और चिल्लाया—‘पाली, घोड़ोंकी रास पकड़ना जरा मैं उन अतिथियोंका स्वागत कर लूँ?’... पाली भी उन दो अश्वारोहियोंको देख रही थी। उसने मुस्करा कर

कहा—‘हाथकी डोर किसीको दी जाती है परदेशी ?’...

बिंबिसार चौंका; यह स्त्री इस विषम परिस्थितिमें भी निर्भय और निःसंकोच होकर व्यंग कर रही है ?

आनन्दने आँखें खोल दी थीं । घाव वाली जगहको पालीने सम्हालकर बाँध दिया था, इसलिए उसके हाथ खाली थे । उसने रथमेंसे धनुषबाण उठाये और बिंबिसारके कुछ कहनेके पहले ही दूरसे आते हुए उन दोनों अश्वारोहियों पर तीर छोड़े, दोनों चीख कर धराशायी हो गये !

बिंबिसार पाली पर वार गया ! रणचरणीके शौर्य और प्रेरणाका आज उसने अपनी दृष्टिसे अनुभव किया । उसके बैठनेके ढंग, चपलता, चातुर्य-पूर्ण धैर्य और संयम, इन सबोंने बिंबिसारको विमूढ़ बना दिया । उसने पहिली बार अनुभव किया कि पालीने उसके हृदय पर अधिकार कर लिया है ! अब पुनः उसके पाये जानेकी आशा नहीं है; फिरसे उसे ले लेनेकी शक्ति भी नहीं है । बिंबिसार पराजित हुआ ।

पालीने धनुषबाण एक ओर डालकर भाईको देखा और आँखोंमें पूर्व-वत् नटखटपन लाकर बोली--‘भाई साहब, जरा भी लजाना मत । मेरा उपकार माननेका नीच काम आज आपको न करना होगा ! उपकार इन दाढ़ी-वालेका मानना, जिन्होंने हम दोनोंके प्राण बचाये हैं ।’ आनन्दने अच्छी तरह आँख खोलकर बिंबिसारकी ओर देखा, और साश्चर्य स्वरमें पूछा—‘तू यहाँ ? तुझे पहिले पहल देखा तभी मुझे शंका हुई थी कि तू कठपुतली वालेकी अपेक्षा अवश्य कुछ अधिक है । अब हमारे घर आकर तुझे सब बातें बतानी होंगी !’

‘मैं परदेशी हूँ !’

‘जब तक तू हमारे साथ है तब तक निर्भय है !’

‘विश्वासपूर्वक कहते हो ?’ आँखके कोनेसे देखते हुए ‘विश्वास’ पर भार देकर बिंबिसारने पूछा ।

‘लिच्छवीका शब्द ही विश्वास है’

‘वचनका मूल्य ठीक ठीक माप लिया है ?’

‘लिच्छवी शब्दोंका मूल्य ठीक ठीक समझते हैं, इसीलिए वे अधिक नहीं बोलते !’

बिंबिसार क्षण भर चुप रह कर बोला—‘कुछ विश्राम लेकर पूरी बात कहूँगा, कहे बिना छुटकारा भी नहीं है !’

‘छुटकारा ?’ भाई बहन दोनोंने चौंकर पूछा ।

हाँ, मैं छद्मवेषमें हूँ, इसका कारण भी बहुत ही विचित्र है !, इतना कहकर बिंबिसारने घोड़ोंको चाबुक लगाकर उन्हें सवेग किया और बोला—‘मेरी सच्ची कहानी जाननेके बाद, आपके मनमें जो भाव निर्धारित होंगे उन्हीं पर मेरा जीवन निर्भर रहेगा; डर इतना ही है, तुम्हीं उसे बराबर समझ सकते हो ’

पाली इस नटको एकटक देख रही थी । उसे क्षणिक शंका हुई कि यह कोई महान गुप्तचर होना चाहिए ! किन्तु वह कुछ बोली नहीं, बोलनेका समय भी न था । बात बदलनेके लिए पालीने उससे कहा—‘रथ इस ओर घुमाना, नंदीग्राम इस ओर...’ किन्तु पाली कहते कहते रुक गई । रथ नंदीग्रामकी सीमापर आ पहुँचा था । पाली विस्मित हुई; इस अनजान परदेशीने कैसे जाना कि हम दोनों नंदीग्राम जानेके लिए ही निकले थे !...’ हतबुद्धि पाली कठपुतलीवालेको देखती रही; तब गंभीर मुँह बनाकर बोली ‘मालूम होता है कि तुम्हें हमारा घर दिखानेकी भी आवश्यकता न होगी ! रथ यहाँ क्यों ठहराया ?’ आगे चलाओ ।’

‘सचमुच मैं आपका महल नहीं जानता; डोर पकड़िए अब आपकी बारी है !’ इतना कहकर उसने—लगाम छोड़ दी; पालीने हँसकर उसे लेनेके लिए हाथ बढ़ाया ।

[१०]

आनंदकी चोट अधिक न होनेपर भी, कठिनतासे उसे सुलाकर पाली महलसे बाहर निकली । इसी बीचमें विद्युत्वेगसे नंदीग्राममें यह बात फैल गई थी कि आनंदपर चोरोंका आक्रमण हुआ है । इतना ही नहीं, महानामके

उस छोटेसे प्रासादके आगे असंख्य गाँववाले एकत्रित भी हो गये थे ।

‘बेटा, वनराज सिंह भी एक ही ओर देखकर चलनेमें मार खा जाता है, तब, हम तो मनुष्य हैं; तेरी पीठपर चोट लगना मेरे लिए लज्जाकी बात है!’ भीठा उलाहना देकर अभिराम बोला । अपनेको निर्विकार दिखानेका प्रयत्न करते हुए भी आनंद अथवा पालीको अस्वस्थ देखकर भीतरसे वह कितना व्याकुल हो जाता है यह बात आनंद जानता था । इस बार आनंद ऐसे बोला जैसे वह यह बात न जानता हो—‘दादा, सब दोष तुम्हारी इस लाड़लीका है ।’

‘भले ही इसकी भूल हो, पर मार खानेमें एक स्त्रीको दोष नहीं देना चाहिए, चाहे वह लिच्छवी ही क्यों न हो !’ भवें समेटते हुए वृद्धने कहा—‘साथमें यह दाढ़ीवाला कौन है ?’

‘एक कठपुतलीवाला...’

‘नहीं हो सकता ।’ वृद्ध बीच हीमें बोल उठा ।

‘तब ?’ शय्यासे उठकर आनंद पूछ बैठे—‘कोई गुप्तचर ?’

‘ऊँ...हूँ...’ वृद्धने बलपूर्वक आनन्दको सुलाते हुए कहा ।

आनन्द और पालीका वयोवृद्ध गुरु अभिराम, आनन्दके औषधोपचार करने में लगा था । वैशालीमें, ब्राह्मणत्वके अवशेष-सदृश, यह वृद्ध ब्राह्मण निःसंतान था । बाराणसीकी यात्राके बाद और अनेक अन्य साधुओंके समागमके बाद उसने इस छोटेसे नदी-ग्राममें एकान्त जीवन बितानेका निश्चय किया था । गाँवसे बाहर प्राचीन यक्षमन्दिरसे थोड़ी ही दूर एक भोपड़ीमें रहने वाला एक वेदांती वानप्रस्थ उसका मित्र था ।

आनन्द और पालीपर वह अपनी सन्तान जैसा ही स्नेह रखता था; उसने ब्राह्मणत्वके उच्च संस्कार उन दोनोंमें कूट-कूटकर भरे थे । वह अपने उस वेदांती साथीकी संगतिसे प्रायः नास्तिक जैसा हो गया था और कई बार किसी धर्मप्रवर्तक या सम्प्रदायप्रवर्तकसे लड़ बैठा था । तो भी वृद्ध अभिरामके लिए, केवल नन्दीग्राममें ही नहीं बल्कि मगध, कौशल और मल्ल के कई ब्राह्मण ग्रामोंमें लोग एक सा ही सम्मान करते थे । भीष्मके समान

शुभ्रकेशी ब्राह्मण अभिराम, शस्त्र और शस्त्रमें—भुजा और मस्तिष्कमें समान रूपसे निपुण था ।

‘तेरे प्राण इस तरह कोई गुप्तचर नहीं बचा सकता, गृह-क्लेशसे भागा हुआ कोई कुलीन मालूम होता है ।’

आनन्द उत्तरमें कुछ कहना ही चाहता था कि अचानक रुक गया । द्वार में पाली उसी कठपुतलीवालेको खींचकर ला रही थी । बीहड़ मार्गमें पूरे वेगसे रथ दौड़ानेके कारण, वृक्ष और झाड़ियोंसे टकरा टकरा कर उसके वस्त्र और भुजाओं पर कई घाव लग गये थे । वहाँ आते ही पाली बोल उठी—‘दादा अब जरा इधर देखकर उपचार कीजिए !’

दादा चौंके, पीछे मुड़कर देखा और कठपुतली वाले को देखकर और अधिक चौंक पड़े । आनन्दके शरीर पर जिस जगह चोट लगी थी उसी जगह बिंबिसारकी देह पर भी घाव दिखाई देते थे । वृद्ध अभिराम घूरकर कठपुतली वालेको देखने लगा । धीरे धीरे वह आगे बढ़ा और उसके सम्मुख देखे बिना ही हाथकी परीक्षा करने लगा । दाहिना हाथ घुमाते ही हथेली पर नजर पड़ी ; खरड़में घुटी हुई वनस्पति लगाते हुए वह कहने लगा—‘कुछही समयमें कठपुतली छोड़ देनी पड़ेगी, महाराजा बनना होगा !’ अभिरामके शब्द सुनते ही पाली और आनन्द विस्फारित नेत्रोंसे उसकी ओर देखने लगे ।

एक प्रहर बाद, अति व्याकुल होकर पाली नींद लाने का प्रयत्न कर रही थी । दूरके दूसरे खंडमें लेटा हुआ बिंबिसार भी उतना ही उद्विग्न था । केवल आनन्द चुपचाप सो रहा था और उसके निकट ही अभिराम लेटा था, वह पाली और कठपुतली वालेको एक साथ सम्मुख देखनेके बाद किसी अनूठे विचारमें निमग्न था, ज्योतिषी भी था न !

किन्तु बिंबिसार ज्योतिषी न होते हुए भी, जिस वस्तुके लिए अभिराम भय और आशंकाके साथ कर रहा था, उसे ही प्रकट करनेकी बात सोच रहा था; और पाली इस आशंकामें थी कि यह बात सत्य भी होगी या नहीं !

‘महाराज !’ कोई बहुत धीरेसे बोला, बिंबिसार चौंका, संजय न जाने

कब दबे पैरों वहाँ आकर बैठ गया था। बिंबिसारने धीमे स्वरमें पूछा—‘सब कुशल क्षेम है?’...संजयने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया; किन्तु उसके मुख पर एक विचित्र प्रकारकी व्याकुलता थी। ऐसा मालूम होता था कि वह किसी बातको छुपानेका प्रयत्न कर रहा हो। बिंबिसार यह बात समझ गया, पूछा—‘क्या है संजय...?’

‘महाराज ! जरा महलके बाहर आइये!’

बिंबिसार तत्क्षण खड़ा हो गया और संजयको लेकर बाहरके छोटे उद्यान में आया।

‘महाराज !’ संजयने आस पास देखकर बहुत धीरे कहा—‘हमें शीघ्र ही यहाँ से निकल जाना चाहिए; कोशल और चेटकराजकी सेनाएँ, मगधकी सीमा पर अचानक चढ़ाई करनेकी तैयारियाँ कर रही हैं; गुप्तचर यहाँ समाचार लेकर आया है। यह बात मालूम करने हमें वहाँ जाना ही चाहिए !’...

‘संजय !’ बिंबिसार उत्तरमें हँसता हुआ कहने लगा—‘मुझे राजगृह (राजधानी) ले जानेके लिए कोई और अच्छा बहाना ढूँढ़ना था ! इतनी-सी बात !’...

‘नहीं महाराज, बिल्कुल सच बात है।’

‘इससे भी भयंकर उपद्रव उपस्थित होने पर, मुझे बिना पूछे तुम्ह अकेले ने ही सामना किया है और मैंने यश पाया है, आज वही संजय’...

‘महाराज, हम सब तो जाने को तैयार हैं किन्तु तब यहाँ एक भी अंग रक्षक नहीं रखा जा सकता, इसलिए...

‘मुझ अकेले की तुम बिल्कुल चिन्ता न करो, जाओ, मंगल सिद्ध हो !’

‘जैसी आज्ञा’ संजयने सिर झुका कर उत्तर दिया।

दूर खड़े हुए ब्रह्मदत्तने खौंसकर ही जता दिया कि वह भी खड़ा है किन्तु निकट नहीं आ सकता। बिंबिसारने भी खौंसकर उसका उत्तर दिया। संजय सबों को लेकर अदृश्य हो गया।

बिंबिसार धीरे धीरे प्रासादकी ओर चला। संजयके समाचारने उसके मन पर कोई विशेष प्रभाव न किया था—कोशल और चेटकराज उसका

सामना करनेमें असमर्थ थे, यह बात वह अच्छी तरह जानता था; फिर भी उनकी मनोवृत्तियाँ जानना आवश्यक था और इस कामके लिए संजय पर्याप्त था।

‘शत्रु बन जाने वाले लिच्छवियोंके ग्राममें वह अकेला ही रह गया’ इस विचारसे उसके हृदयमें अधिक शांति और स्फूर्ति उत्पन्न हुई, जैसे उसे मन-चाही वस्तु मिल गई हो !

आज उसका मन पालीने जीत लिया था। रथमें बोलती हुई पाली, प्रासादमें आने पर उसके रक्तसावको देखकर घबराई हुई पाली, व्रणपर औषधोपचार करते समय, श्वासोच्छ्वास सुनाई दे इतनी निकट, उससे बिल्कुल सटकर खड़ी हुई पाली, जाने किस स्फूर्तिसे उसके हृदय और मन में दौड़ रही थी ! सैकड़ों बार विचार आया कि पालीके शयनगृहकी ओर जाकर जागृत या सुषुप्त पालीको एक बार देख आऊँ !’

अभी भी उसे ये ही विचार आ रहे थे। उद्यानका शांत वातावरण उसे प्रेरित करने लगा, उसके पैर अवश होकर पालीके शयनगृह की ओर मुड़ चले-किन्तु थोड़े ही डग भर कर रुक गये। काष्ठके एक सुन्दर विश्राम-स्थान पर पाली अकेली बैठी थी। हवामें उड़ते हुए उसके चंचल वस्त्र स्पष्ट बता रहे थे कि वह शयनगृहसे अभी अभी आकर बैठी है। वह जिस स्थितिमें विश्रान्ति-पूर्वक बैठी थी वह अंगपरिवेष्टन और बिखरी हुई अलकें, उसके सौंदर्यमें अनूप कमनीयता जोड़ रही थीं। वह पालीको निर्निमेष नयनोंसे देखने लगा और आगे बढ़ने या न बढ़नेकी अनिश्चित अवस्थामें किंकर्तव्यविमूढ़ बन वहीं खड़ा रहा।

रजनीगंधा के फूल, दिनके फूलोंकी सुगंधको भुलानेके लिए महक रहे थे। बिंबिसार जिस स्थान पर खड़ा था पाली उसे न देख सकती थी। पालीके हृदयमें एक अदम्य आँधी उठ रही थी, जिसका अनुभव बिंबिसार को हो रहा था। बिंबिसारका हृदय जोरोंसे हिलोरें ले रहा था जिसकी अनुभूति पालीको हो रही थी।

लोग जिसे ‘प्रेम’ कहते हैं, आज इन दोनोंको उसके रहस्यकी अनुभूति

हो रही थी। दोनोंके हृदयमें एक साथ एक ही बात उठती थी। अब तक दंतकथाओं और पुराणोंसे उन्होंने प्रेमकी बातें सुन रखी थीं किन्तु उसका सच्चा साक्षात्कार उन्हें आज ही हुआ।

पाली एकदम खड़ी हो गई और उन्मत्त सी बन, उद्यानके बीचोबीच, छोटी छोटी मछलियों वाले छोटेसे तालाबके किनारे पहुँचनेके लिए धीरे धीरे बिंबिसारकी ओर बढ़ने लगी। कुछ घबराकर बिंबिसार उल्टे पैरों चलने लगा, पर वहाँ पीछे जानेको स्थान ही न था, पाली वहीं आकर रुक गई। दोनों एक साथ बोल उठे—‘तुम...?’

पर एक शब्द कहकर दोनों रुक गये, और एक साथ हँस पड़े। पाली ने विनोदमें पहेली बूझी—‘क्यों, और मार खाना बाकी रह गया है, अकेले ही घूम रहे हो तो?’

‘लिच्छवी पीठ पीछेसे वार नहीं करते, तब डर किस बात का?’

‘तुम लिच्छवी हो?’ आशा भरे नयनोंसे पालीने पूछा।

‘नहीं, मैं लिच्छवियोंको पहिचानता हूँ!’

पाली निराश हुई, वह बोलते बोलते रुक गई। जैसे दोनों एक दूसरेको देखकर बोलनेका विषय सोचने लगे। इस बार बिंबिसार पहले बोला—

‘तुम्हारे भाईके लिए अब चिंता करने जैसा कुछ नहीं है!’

‘यह मुझे मालूम न था कि आप वैद्यराज भी हैं!’ पालीने प्रारम्भ किया।

‘मैं नहीं, मेरा एक मित्र वैद्यराज है’ इतना कहकर बिंबिसार रुक गया; आपने राजवैद्य जीवककुमार भृत्यका नाम उसके तालु तक आया, किन्तु उसने उसे वहीं रहने दिया, इस डरसे कि कहीं पाली उसे मागधी समझकर आशंकित न हो। बातें करते हुए दोनों विश्राम-स्थान तक आ पहुँचे। पाली एक कोनेमें बैठ गई, बिंबिसार भी उसी बैठकपर उससे कुछ ही दूर बैठा—किन्तु तुरन्त उसे याद आया कि वह कठपुतलीवाला है; वह एकदम खड़ा हो गया। उसकी इस क्रिया पर पालीने मुस्कराकर पूछा—

‘खड़े क्यों हुए? डर लगा?’

‘डर?’

‘हाँ, डर कि आम्रपाली पहचान जायगी कि तुम कौन हो; पर मैं जानती हूँ।’

‘क्या...?’

‘तुम कठपुतलीका धन्दा करनेवाले नट नहीं हो!’

बिम्बिसार एक क्षण चुप रहकर बोला—‘नहीं, मैं नट नहीं हूँ।’

‘तब तुम कौन हो?’ पालीने पूछा।

‘जानकर क्या करोगे?’ उसी तरह बिम्बिसारने पूछा।

‘न बताकर तुम क्या पा जाओगे?’

‘अब ? कुछ नहीं !’

‘अब...?’

‘हाँ, अब कुछ नहीं ! मेरे जीवनका एक बड़ा कार्य छद्मवेशमें ही करना लिखा था, और वह हो गया।’

‘वह बड़ा कार्य हमारी वैशालीमें ही करना था?’

‘हाँ तुम्हारी वैशालीमें ही !’

पाली बिम्बिसारको एकटक देखती रही; उसे यह पुरुष बहुत रहस्यमय लगा ! यद्यपि बिम्बिसारके शब्दोंमें निर्भयता, स्पष्टता और हार्दिक सरलता थी तो भी पालीकी आँखों परसे शंकाकी एक हलकीसी बदली निकल गई। आत्मीय जैसा लगनेवाला यह पराया मनुष्य, उसे कुछ समय तक अपनेसे दूर जाता हुआ मालूम हुआ। वैशालीके शत्रु कुछ कम नहीं थे, और साधारण भी न थे। पालीने चाहा कि इस कठपुतलीवालेकी दाढ़ी इसी क्षण खींच लूँ, किन्तु दूसरे ही क्षण उसने हृदयके इस आवेगको रोक लिया। बिम्बिसार उसके मनकी बात जान गया, वह कुछ आगे झुककर कहने लगा—‘विश्वास रखना, मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूँ।’ पाली विश्वासपूर्वक माननेके लिए प्रस्तुत ही थी, फिर भी गम्भीरतापूर्वक मुस्कराकर बोली—‘हमारी वैशालीमें तुम्हारा कौन-सा बड़ा कार्य पूरा हुआ है?’

‘सच कहूँ?’

‘भूठ कहनेकी चालाकी तुम्हारे मुँहपरसे तो मालूम नहीं होती ! कहो’

बिंबिसारके लिये अपना वह बड़ा कार्य बतानेके सिवा दूसरा मार्ग ही न था । उसने बता दिया—‘आम्रपालीको देखना था ।’

पाली बिंबिसारको देख रही थी; उसके शब्द सुनकर सहसा खड़ी हो गई । बिंबिसारको लगा कि पाली उसे निम्न कोटिका मनुष्य समझती है; उछलखल प्रसन्नता उसके मनमें नाचने लगी । तब पाली सम्पूर्णा गम्भीर थी—

‘गांधार और साकेतके राजकुमार मुझे देखनेके लिए आये थे, पर नट बनकर नहीं, राजकुमार होकर ! तुम राजकुमार हो ?’ पालीने सहसा बिंबिसारकी ओर देखकर निश्चयात्मक स्वरमें पूछा—‘कौन हो ? कहाँसे आये, दक्षिणापथसे ?’

बिंबिसार पालीको देखता रहा, बोला—‘तुम्हारा, पहला वाक्य सच है, मैं राजकुमार हूँ ! पर उत्तरापथका नहीं; दक्षिणापथका भी नहीं, मेरा एक ही पथ है, और तुम्हें उस पथपर ले जानेके लिए जीवनका सर्वस्व छोड़ कर, और हृदयका सर्वस्व साथ लेकर यहाँ आया हूँ !’ पाली स्थिर मनसे उसकी ओर देखती रही—

‘उस पथका नाम क्या है ?’

‘उसका नाम नहीं बताया जाता, कोई भी उसका नाम नहीं बता सकता !’

‘तुम जैसा कुशल नट भी नहीं बता सकता ?’

‘तुम जैसी अनुपम सुन्दरी भी नहीं बता सकती ! उस पथपर जानेवाले ही जानते हैं कि वह पथ कैसा है !’ जैसे बिंबिसार, पालीके लिए रटे हुए वाक्य कह रहा हो । पाली अब तक बिंबिसारकी चोटकी चिन्तामें थी, परन्तु इस निर्भय पुरुषको इतने थोड़े समयमें यहाँ तक बढ़ते देखकर, अपनी निर्बलताके लिए वह लजित हुई । उसकी अतिशय घृष्टतापर उसे रोष हुआ और कठोर उत्तर देनेकी इच्छा हुई, किन्तु उससे दृष्टि मिलते ही, वे शब्द जाने कहाँ विलीन हो गये; इच्छा अन्तर्हित हो गई, रोष द्रवित हो गया । वह कृत्रिम क्रोध दिखाकर बोली—‘ठीक है, तुम हमारे अतिथि हो, नहीं तो...

‘क्या करतीं ?’

‘यह दाढ़ी नोच लेती, और दूसरे राजकुमार जो कुछ भी सुनकर गये वही तुम्हें भी सुना देती !’

‘दाढ़ी तो मैं सबेरे ही निकाल देनेके लिए तैयार हूँ किन्तु एक भय है— तुम्हारे क्रोध करनेका ।

‘जैसे हमें क्रोधित होना ही नहीं चाहिए; क्यों ?’

‘मुँहपरसे तो ठीक ठीक मालूम नहीं होता !’

‘स्वदेश जाओ तब अपने परममित्र वैद्यराजको आँखोंकी दवा देनेका आग्रह अवश्य करना !’

‘हमारे पथपर जानेवालेको इसकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है, उसे तो हृदयकी आँखें खुली रहें कि सब कुछ आया समझो !’

‘और तुम्हारी खुली हैं न ?’ पालीने सकटाक्ष पूछा ।

बिम्बिसार चौंका; उसके मुँहके शब्द मुँहमें ही रह गये । सचमुच जो पाली ने कहा वह भी वही कहनेवाला था । अब तक पालीकी बातोंने उसे हताश न किया था; पाली स्वयं भी यही सोच रही थी कि इस तरह, किसीके साथ बह कभी नहीं बोली ।

बिम्बिसार उसके निकट आ खड़ा हुआ और साश्चर्य कहने लगा—
गुरुजनोंकी आज्ञा है लोगोंके कर्त्तव्यमें विश्वास नहीं करना चाहिये’ किन्तु आम्रपाली उन सबोंको झूठा ठहराती है....।’

पालीका ध्यान भंग हुआ, उसने कुछ संकुचित होकर अत्यन्त समीप आये हुए बिम्बिसारसे कहा—‘मैं समझती थी तुम मेरी प्रशंसा कर चुके, पर नहीं, मालूम होता है मेरी प्रशंसा तुम अब प्रारम्भ कर रहे हो । बिम्बिसार और समीप आया; एक प्रकारके उन्मादसे वह प्रेरित था ।...

उसका स्वर बदल गया—‘आम्रपालीके लिए वर्षोंसे बातें सुनता आया हूँ, लोग मुझसे कहते थे पाली अनुपम है, अलौकिक है—आम्रपालीके सौन्दर्यकी प्रशंसा वायुकी प्रत्येक लहरीमें सुनाई देती है । इस विषयपर वाद-विवाद करनेके बाद, दो क्षत्रिय कुमारोंको लड़ते देखकर मुझे हँसी आई थी, आज मुझे अपने आप पर हँसी आती है । आज मालूम हुआ कि

पालीके लिए जो कुछ भी कहा जाता है, वह सब अपूर्ण है; जो कुछ भी सुना है वह पालीको देखनेपर बहुत थोड़ा मालूम होता है ।’

‘तक्षशिलामें काव्यका विषय तो न लिया था ?’ बिंबिसारसे दूर हटती हुई पाली बोली ।

‘कविताको देखकर अपढ़ भी कवितामय हो जाता है ।’

‘तब तुम राजकुमार नहीं हो, राजकुमार अपढ़ नहीं होते ।’ पालीको फिर विनोद सूझा । किन्तु बिंबिसारकी स्थिति वैसी न थी, वह अकेला था और समय बहुत कम था । पूर्ववत् उन्मत्त दशामें ही वह आगे बढ़ता गया, बोला—‘अपने देशसे निकला तब दो निश्चय किये थे—एक तो पालीको देखे बिना नहीं लौटूंगा और दूसरे पालीको देखनेके बाद यहाँ ठहरूँगा नहीं । किन्तु सच बात यह है कि अब मैं लौटनेकी शक्तको खो बैठा हूँ; मैंने हार नहीं मानी है, यहाँसे भी हारकर नहीं जाऊँगा । यहाँ तीन दिन रहूँगा, देखता हूँ मेरे निश्चयका क्या परिणाम निकलता है !’

‘अतिथि ! किसी लिच्छवीका निश्चय कभी सुना है ? किसी मागधीसे पूछ देखना ।’

‘मेरे लाभकी बात होगी तो मगधराजसे भी पूछनेमें नहीं हिचकिचाऊँगा ।’

‘मागधी हमारे शत्रु हैं, हमारे मित्र बनकर उनसे मिलोगे तो अकारण ही मृत्युके मुखमें जाना होगा ।’

‘ऊँ हूँ...’ झूठ बात है, मागधियोंको मैं और अधिक पहिचानता हूँ !’

‘लिच्छवीसे भी अधिक ?’

‘हाँ, भूल गई कि मैं कठपुतलीवाला हूँ ? मनुष्य स्वभावको पहिचानना हमारा पहला काम है । मुझे तो मागधी और लिच्छवीमें कुछ भी भेद मालूम नहीं होता ।’

‘अतिथिका अपमान करना पाप है; कृपया मागधियोंसे हमारी तुलना न करो, वे हमारे शत्रु हैं ।’

‘बनाये हुए या माने हुए ?’ जातीय अभिमानमें उत्थित पालीको शान्त करनेके लिये बिंबिसारने पूछा ।

पालीने चौककर बिबिसारको देखा; क्रोधपूर्वक वह बोल उठी—‘अभी तुम मागधी जैसे मालूम होते हो ।’

‘और सचमुच हूँ तो ?...’

‘अतिथि हो इसलिए प्राण तो बच जाँएंगे । लिच्छवियोंकी प्रवेणी-पुस्तकमें उपकारका बदला मृत्यु नहीं है ।...पर तुम मागधी नहीं हो !...’

धीमोल्लंघन हो गया ।

बिबिसारके मुँह तक आये शब्द, पालीका अंतिम वाक्य सुनकर वहीं रह गये ।...वह स्वस्थ हुआ; दूसरेको ईर्ष्या उत्पन्न करनेवाले, मागधीके गर्वके स्थानपर उसके मुखपर निर्दोष मुस्कान खेलने लगी । वातावरणमें प्रच्छन्न कटुता अपने आप कम हो गई । वह धीरेसे बोला—‘तुम्हारी बात सच है; तीन दिन बाद कहूँगा कि मैं कौन हूँ ।’

अतिथिकी सरलता और मोहक मुस्कानसे पाली पराजित हो गई । अतिथिको कटु शब्द कहनेके लिए वह लजाई भी । आगे बढ़े बिना ही, वह मृदु स्वरमें बोली—‘तीन दिन बाद तुम्हें नहीं कहना होगा, मैं कहूँगी कि तुम कौन हो ।...’

बिबिसार बिल्कुल समीप आ गया । पूछा—‘अभी ही कह दो न कि मैं कौन हूँ ?’

‘अतिथि ।’ पालीने उत्तर दिया । तब दोनों एक दूसरेको देखते रहे, —उन, प्रेम-पथके पथिकोंके रूपमें !

[११]

वैशाली नगरीके उत्तरी राजमार्गसे कुछ ही दूरपर वैशालीके युवकोंका यूतगृह था, और उसके निकट ही मधुशाला भी । बहुधा संध्याको ही यूत प्रारम्भ होता था, किन्तु किसी दिन अपवाद-स्वरूप, जबकि कोई रसिक परदेशी आ जाता, दोपहरसे ही प्रारम्भ हो जाता था । आज वही बात थी । ताम्रलिपिके कई व्यापारी युवक लिच्छवियोंके साथ यूत खेलने आये थे, इतना ही नहीं बल्कि वे लिच्छवियोंके हाथों कड़ी हार भी खा बैठे थे । दोनों पक्ष रसिक थे इसलिए लिच्छवी खिलाड़ी परदेशियोंको यूतगृहसे

झींघे मधुशालामें ही ले गये ।

अमावस्याकी रात थी; मधुशालामें दीपक जगमगा रहे थे । आज अचानक वैशालीके सुराध्यक्षके यहाँ आ जानेसे दीपकोंके प्रकाशके साथ चारों ओर सुगंध भी फैल रही थी । मधुशालाके स्वामी शंभुका संकीर्ण हृदय, सुगंधित तैलको यों ही जलता देखकर, जला जा रहा था, इसलिए उन द्यूतगृहके रसिकोंके आजानेसे उसके आनन्दका पार न रहा; उनके द्वारमें आनेके पहिले ही उसने भगदौड़ मचा दी । निर्बल होनेके कारण उसे क्रोध करने या क्रोध दिखानेमें जरा भी समय न लगता था । किसी धनवानको वहाँ आता देखकर, दासोंपर स्वामित्वकी छाप लगाने और आगन्तुकोंके प्रति श्वानवत् दासता दिखानेके लिए वह आतुर हो जाता था; इसे वह अपने सुरा-विक्रयका बड़ा साधन मानता था जब कि पीनेवालोंकी दृष्टिमें वह केवल हास्यास्पद ही मालूम होता था ।

इस अकारण भगदौड़से सब दास अभ्यस्त थे, वे अपने कामपर लग गये । मिश्रित धातुओंके कलामय पात्रोंमें मदिरा दी गई । प्रत्येक युवकने कुछ न कुछ आलोचना करते हुए मद्यपान प्रारम्भ किया ।

नशेका दौर शुरू होते ही एक रँगिले परदेशीने पास बैठे हुए एक युवक लिच्छवीसे कहा—‘क्यों मित्र अम्बट्ट पालीको कब दिखलाएगा ?’ पालीका नाम सुनते ही प्रायः सबोंकी दृष्टि उस परदेशीकी ओर गई; अम्बट्ट कुछ संकुचित हुआ । परदेशी अपनी धुनमें कहता ही गया—‘तीन तीन दिनोंसे उसे देखनेके लिए श्रम कर रहा हूँ पर कुछ मालूम नहीं होता ! मित्र शर्त लगाकर आया हूँ कि पालीको लेकर ही जाऊँगा, लेकर ही नहीं, ब्याह कर भी ।...’

परदेशीके ये शब्द अग्निसे भी अधिक दाहक और घृतसे भी अधिक भड़कानेवाले थे । प्रत्येक लिच्छवी विस्फारित नेत्रोंसे उस परदेशीको देखने लगा; परदेशी उनकी ओरसे निरपेक्ष होकर हँसते हँसते सुरा पान कर रहा था । उसी समय एक कठोर पंजा उसके कन्धेपर पड़ा, वह सम्हले

उसके पहिले तो पकड़नेवालेने उसे नीचे गिरा दिया, और छातीपर चढ़ बैठा; वह सुधीर था ।...

‘उठ जा सुधीर, खड़ा हो ।’ कहकर दो तीन युवक सुधीरको परदेशीके उपरसे खींचने लगे, किंतु वह परदेशी भी ऐसा वैसा न था, सुधीरकी इस खींचा तानीमें वह चतुराईसे खड़ा हो गया और सुधीरके साथ गुथ गया । इस बार परदेशीका हाथ ऊपर था । उसे जोड़ीशर मित्ता और कुछ ही क्षणमें मशपात्र और पाट हवामें उड़ने लगे । सुधीर और परदेशीका मुष्टि युद्ध देखने लायक था; अंतमें जीता भी सुधीर ही । दोनोंके शरीरपर चोटके गहरे चिह्न लगे थे । काफी भंकाट और खींचातानीके बाद, दोनों पक्षके लोगोंने मिलकर दोनोंको अलग किया । परदेशी अधिक आहत हुआ था । दो बलिष्ठ युवकोंके हाथोंमें जकड़ा हुआ सुधीर, हाँफता हुआ कड़ने लगा—‘पालीको यह परदेशी ले जायगा ? लिच्छवियोंकी राजधानी वैशालीमें से ! अरे, पालीको छूनेके पहिले इसके हाथ कटकर नीचे गिरेंगे !’

‘यह तो समय आनेपर देखा जायगा !’ कोनेमें बैठा हुआ एक मालव-वासी सुरापान रोककर बोल उठा । वह अतक शांतिसे बैठा हुआ यह खेल देख रहा था; बोला—‘पालीसे विवाह करनेका दृढ़ निश्चय करने वाला युवक साधारण नहीं हो सकता.....’

‘नहीं, वह साधारण नहीं होगा, इसका अर्थ यही है कि वह लिच्छवी जैसा नहीं हो सकता ।’

‘सच बात है ।’ मालववासीने सुराका घूँट गलेमें उतारकर कहा—‘यह परदेशी लिच्छवीसे अधिक बलशाली होगा, तभी पालीको ब्याह सकेगा न ?’ इतना कहकर वह हँसा और मशपात्र मुँहसे लगाया । उसके स्पष्ट शब्दोंमें घृणाकी मात्रा थी । युवकवीरभद्र इसे सहन न कर सका, दो कदम आगे बढ़कर उठने कहा—‘यह बात तो लिच्छवीका तीर, तलवार या हाथ, सामना करते ही सिद्ध कर देंगे !’

‘अवश्य...!’ पात्रमेंसे पूर्ववत् एक घूँट पीकर वह मालवी बोला—‘कि

परदेशी लिच्छवीसे अधिक बलवान है !...' यह सुनकर वीरभद्रकी आँखें ललाटपर चढ़ गईं; दो डग भरकर बोला- 'हम लोग वैशालीमें किसी महान अपराधके बिना परदेशीके प्राण नहीं लेते !..' 'नहीं तो मेरे प्राण ले लेते यही न ?.., पर तुम भूलते हो, प्रकृतिने वैशालीमें ही सब शौर्य और बल नहीं भर दिया, अन्य देशोंमें भी है !' इतना कहकर मालवीने एक धूँट और पी और पात्र पटियेपर रखनेके लिए हाथ बढ़ाया किंतु उसे छूनेसे पहिले ही एक खन-खनाती हुई कटार उसके हाथके पास गिरी साथ ही कोई चिल्लाया- 'तो अभी ही देख लो !' मालवीने आँखें ऊपर कीं, कटार डालकर आह्वाहन करने वाला वीरभद्र ही था। मालवीने जोरसे पात्रको कटारपर पटककर वीरभद्रकी ओर देखा; फिर पात्र उठाकर उसकी अंतिम धूँट मुँहमें उडेल ली; मुँह पोंछा और कटार लेकर खड़ा हो गया। उसके खड़े होते ही सबको उसकी विशाल देहका ज्ञान हुआ। शंभुकी तो आँखें ही मुँद गईं; जिह्वा तालुसे चिपक गई, बोलनेका बहुत प्रयत्न करनेपर भी आँठ खुले ही नहीं।

वीरभद्र साधारण लड़ाकू न था; वह गर्व और उपेक्षापूर्वक उस मालवीको देख रहा था। दोनों योद्धा एक दूसरेके सामने आ गये। युद्ध-प्रिय लिच्छवी युवक कौतूहलपूर्वक उन योद्धाओंको देखनेके लिए गोल घेरेमें खड़े हो गये। दामिनीकी एक झलककी तरह वीरभद्र और मालवी एक दूसरेपर टूट पड़े। वीरभद्र चपल और फुर्तीला था, मालवी बलिष्ठ और भीषण। दोनों ही एक दूसरेके वारपर वार झेलने और प्रहार करने लगे। कुछ देर तक तो मालवी वीरभद्रको बच्चोंके खेलकी नाई घुमता रहा; किंतु अवसर पाकर वीरभद्र शेरकी तरह उछला और विशालकाय मालवीके पेटमें कटार भोंककर स्फूर्तिसे दूर इट गया। मालवीका ऊपर उठा हुआ हाथ नीचे गिर गया; वीरभद्रने पुनः कूदकर एक झटकेमें गिरते हुए मालवीके कलेजेमें कटार उतार दी। शंभुके 'आँठ खुले; वह चीख उठा। तत्क्षण एक दूसरा परदेशी वीरभद्र-पर झपटा और कटारके एक ही वारमें वीरभद्रको सदाके लिए सुला दिया। उसके बाद सुधीर वीरभद्रके घातकपर टूट पड़ा, दूसरे लिच्छवी भी कटार निकालकर आगे बढ़े। परदेशी लोग तो प्रस्तुत थे ही, दोनों दल एक

दूसरेका काम तमाम करने लगे ।

शंभु पागलकी तरह कूदने लगा; अपने प्राण बचानेके लिए वह इधरसे उधर दौड़ने लगा; दासोंपर आज्ञा करनेके बदले प्रार्थना करने लगा और लड़ने वालोंसे प्रार्थनाके बदले धमकाने लगा । तब कुछ सुध आनेपर, चिल्ला चिल्लाकर दासोंको बुलाने लगा जैसे जोरोंसे चोट लग रही हो । इन बीते बीस वर्षोंमें उसने अपनी मधुशालामें केवल शब्दोंकी ही लड़ाई देखी थी; पर प्राण घातक युद्ध और वह भी इन सबोंका ! यह तो उसके जीवनकी सबसे अधिक अनजानी बात थी ! उसे अपनी दूकान नष्ट होती दिखाई दी । उसका अतिशय क्रोध और जोरोंकी चिल्लाहट अंतमें आँसू बनकर गालोंपर बहने लगी । किन्तु इससे भी अपना कुछ लाभ होता न देख, सिरपर साफा ढालकर वह प्रलय मचाता हुआ भाग गया ।

यदि इसी समय हँफता काँपता चिरंजीव वहाँ न पहुँच जाता तो पालीके पीछे सारे संसारको उखाड़ देनेके उन्मादमें सुधीर स्वयं परदेशियोंके हाथों नष्ट हो जाता ।

मधुशालाका होहल्ला सुनकर निकटकी बस्तीके रथकार और रंगकार लोग अपने जेट्टकों (नायकों) को लेकर वहाँ दौड़ आये । चिरंजीवको देखकर कई जेट्टक दोनों दलोंको शान्त करनेके लिए जो हाथमें आया उससे लिपट गये । कुछ चोटें तो आई किन्तु जेट्टक और चिरंजीव अन्तमें कार्यकारी हुए । सबोंका क्रोध शान्त हो गया था क्योंकि चिरंजीवने एक एक करके आठ शव सबोंके बीच लाकर रख दिये थे । तीन लिच्छवी और पाँच परदेशी मारे गये थे; और आहत तो प्रायः सभी हुए थे ।

उसी समय रोता-बिलखता शंभु, वैशालीके सुराध्यक्ष, परदेशी व्यापारियोंसे कर उगाहने वाले शुल्काध्यक्ष, अंगसंरक्षक और परदेशी-संघके प्रधान सार्थवाहके साथ वहाँ आ पहुँचा । सुरामें उन्मत्त युवकोंको तब ध्यान आया कि यह सब क्या हो गया !

नगरसंरक्षकने अधिक विचार किये बिना, आहतोंको नगर-चिकित्सा-क्षेत्रमें भिजवा दिया और सार्थवाहकी इच्छानुसार परदेशियोंके शवोंको नगर

व्ययसे अंतिम संस्कारके लिए भेज दिया तथा अपनी प्राचीन रीतिके अनुसार लिच्छवि शवोंको पशुपक्षियोंके उपभोगके लिए नगरके बाहर खुले रख देनेके लिए भेजा ।

गणिकाध्यक्ष क्षपणकका छोटा भाई नी मृत लिच्छवियोंमेंसे एक था । क्षपणक इतना उदार न था कि अपने भाईकी मृत्युको सरलतासे भूल जाता । एक स्त्रीके लिए इतने भीषण युद्धमें कूद पड़ने वाले युवकोंसे वह घृणा करता था । केवल पालीके लिए एक जीवनको भूलमें मिला देखकर उसे असीम क्षोभ हुआ; भाईकी मृत्युने उसके क्रोधको उभार दिया ! अंतिम क्रियाके बाद उसने आसपासके जेठकोंको बुलाकर गुप्त वार्तालाप किया और तब कुछ निश्चित करनेके बाद वह सबोंको लेकर रातोंरात नगरश्रेष्ठीके महलमें जा पहुँचा ।

पालीके लिए लड़ाई होना कोई नई बात न थी; विद्युत् वेगसे नगरमें यह बात फैल गई । इस पुराने आश्चर्य पर सबोंने अपनी अपनी घृणा प्रदर्शित की; नगर श्रेष्ठी भी उन्हींमेंसे एक था । किंतु नगरश्रेष्ठीकी हँसी अधिक समय तक न रह सकी; क्षपणक के बढ़ते हुए क्रोधको देखकर वह अवाक् रह गया । गणिकाध्यक्षोंके सर्वापरि अधिकारी क्षपणकको प्रत्युत्तर देना साधारण काम न था । संथागारमें उसकी पुकार सुनाई देने पर केवल अभय ही उसे चुप कर सकता था । बेचारा नगरश्रेष्ठी वणिक् ठहरा ! इस विषयमें क्षपणकसे अधिक वादविवाद करना उनसे उचित न समझा । किसी तरह उत्तम क्षपणकको शांत करके उसे अभयके घर ले गया । अभयके पास इतने ही समयमें सब समाचार पहुँच चुके थे; उसे गुप्तचरोंके द्वारा सब विशेष बातें भी मालूम हो चुकी थीं । इतना ही नहीं, उसे विश्वास था कि अंतमें सबोंको उसके पास आना पड़ेगा । वे सब नगर श्रेष्ठीके साथ अभयके भवनमें आ पहुँचे । साधारण शिष्टाचारके बाद अभयके निकट बैठते ही क्षपणकने कहना प्रारंभ किया—

‘पालीका निर्णय कर दीजिए !’

‘पर मैं कैसे कर सकूँगा ?’

‘आप नहीं करेंगे तो कोई न कर सकेगा ! वैशालीके इनेगिने पूज्य वयोवृद्धोंमेंसे आप एक हैं ! लिच्छवि देशके कोने कोनेमें अनुपम सुन्दरियाँ विद्यमान हैं किन्तु उनमेंमें किसी भी विवाहिता या कुमारीने पालीके समान वज्रपात नहीं किया ! एक स्त्रीके पीछे रणवीर लिच्छवी युवकोंको मूर्ख बनने दें, कट मरने दें ? और कब तक ? महानाम हम सबोंमें वयोवृद्ध हैं, हम उनकी आज्ञाका उल्लंघन करना नहीं चाहते किन्तु लिच्छविगण कर्तव्यके सम्मुख अपने आपको भी तुच्छ मानते हैं ! इस समय हमारा कर्तव्य एक ही मार्ग दिखा रहा है कि पालीके लिए अंतिम निर्णय हो जाना चाहिए—फिर चाहे संधागरके सम्रापति महानामकी पुत्री ही क्यों न हो !’

हजार गुप्तचर, हजार दिनोंमें भी न ला सके वैसा एक अवसर अभयको अनायास ही मिल गया था; जंगलमें छुपी हुई पाली जैसे अपने हाथ बाँध कर उसके पैरोंमें आ पड़ी—इसी धुनमें उसने एक बार पैरोंकी ओर भी दृष्टि की। उसका हृदय आनन्दसे नृत्य करने लगा; किन्तु मुँहपर इसका जरा भी चिह्न दिखाये बिना, क्षणिकको बढ़ावा देनेके लिए, सार्थवाह और नगर श्रेष्ठीकी ओर दृष्टि घुमाकर शांतिपूर्वक वह बोला—

‘मेरे भाइयों, तुम्हारी बातें सच मान लू तो भी पालीपर मेरा जोर कैसे चल सकता है ?’

‘सम्रापति महानामपर तो चल सकता है न ?’ क्षणिक एकदम कड़क उठा तब कुछ शान्त होकर बोला,—‘आप दोनों मित्र हैं, वर्षों तक लिच्छवियोंकी राजधुरा आपने चलाई है, आपको उन्हें समझाना ही पड़ेगा !’

‘प्रयत्न करूँगा !’

‘प्रयत्न नहीं, निर्णय करना होगा !’

‘मैं वचनसे नहीं बाँधा जा सकता ।’

‘महाराज, पालीने एक नहीं, सैकड़ों नहीं, हजारों युवकोंके हृदयमें आग सुलगाई है ! बीती बातें जाने दीजिए उसके कारण आज हमारे तीन, और परदेशियोंमेंसे पाँच युवकोंने प्राण गँवाये हैं ! पर आप ही देख लेना,

सीनके तीस और तीसके तीन सौ लिच्छवी पालीकी आगमें निरर्थक जलते हुए दिखाई देंगे। अब बिना विलम्ब पालीका विवाह हो जाना चाहिए। आगामी वैशाखकी पूर्णिमाके पहले पालीका विवाह नहीं हुआ तो...

‘तो...?’

‘तो महाराज, मेरा वह अकेला भाई जंगलमें सोया हुआ है। वैशाखकी पूर्णिमाके पहिले पूज्य महानाम या आनन्द पालीके लिए किसी युवकको चुन ले; अथवा पूर्णिमाके दिन हजारों युवक ग्रीष्मोत्सवके लिए एकत्रित होंगे, स्वयं पालीको उनमेंसे किसी एकको चुन लेना होगा, यह मेरा और सबोंका अंतिम निर्णय है!’

‘और यदि यह भी न हुआ तो?’ शुभ्र मूर्छोंको बट देकर, कुछ बारीक दृष्टि करके अभयने क्षणिकसे पूछा।

‘तो फिर महाराज, संथागार है और हम हैं! परिषदके सम्मुख सर्व-प्रथम यही प्रश्न रखा जायगा, और पवित्र प्रवेशीपुस्तक हमारे प्रश्नका उत्तर दे देगी!’

ठीक उसी समय वयोवृद्ध महानामने अभयकी देहरीमें पैर रखा। उस अंतिम वाक्यने कानोंसे जाकर उनके हृदयको डस लिया था। धूर्त अभयने अवसर जानकर, नगरकी एक बहुत ही आवश्यक मंत्रणाके लिए महानामको अपने घर आनेकी प्रार्थना की थी। अभयने अस्वस्थ होनेका ढोंग किया, इसलिए महानामको आना ही पड़ा।

वैशालीके भीष्म-सदृश वयोवृद्धको अकस्मात वहाँ आता देखकर क्षणिक और नगरश्रेष्ठी किर्कटव्यविमूढ़ होकर वहीं बैठ रहे। क्षणिक और कुछ न बोल सका। परदेशी स्वार्थवाह क्रोधित होते हुए भी विमूढ़ सा चुपचाप बैठा रहा। क्षणिक सहसा खड़ा हो गया; मोटी तोंदवाले नगरश्रेष्ठी भी धीरे धीरे उठ खड़े हुए, और तीनों व्यक्ति महानाम और अभयको नमस्कार करके वहाँसे चले गये।

उनके जानेके बाद, चाँदीकी छोटी सी चौकीपर मयकी प्याली ठोककर,

दासको सूचित करनेके ढंगसे महानामकी ओर देखे बिना ही अभयने अपना प्रपंच जाल फैलाना प्रारंभ किया—

‘सुना?’

‘हाँ!’

‘सब कुछ सुन लिया?’

‘नहीं, जितना जानना चाहिए था उतना ही!’ अभय आगे बात न बढ़ा दे इसलिए महानामने कठोरता पूर्वक कहा।

‘किन्तु उन वाक्योंमें कुछ जानने योग्य बातें बाकी रह गई हैं! संथागार में समस्त लिच्छवी परिषदके बीच परिषदके महान अचल सभापतिके आगे उनकी पुत्रीका प्रश्न प्रस्तुत होगा! लोग कहेंगे—‘लिच्छवी गणतन्त्रके किसी भी गूढ़ रहस्यको ढूँढ़ निकालने वाले, किसी भी विषयका ‘न भूतो न भविष्यति’ की तरह निर्णय करनेमें समर्थ महानाम, अपने ही घरकी एक बात—कन्यादान—का निर्णय करनेमें असफल हुए!’ लोग पूछेंगे कि, अपनी पुत्रीका असहाय भविष्य अंतिम निर्णयके लिए संथागारमें रखना पड़ा? लोग हँसेंगे कि एक आदर्श लिच्छवी इतनी तुच्छ समस्याको भी हल न कर सके! तब लिच्छवी प्रजाके मुख्य हितैषी और शुभचिन्तकका क्या होगा? मुझे तो लज्जासे नीचे देखना पड़ेगा!’

‘लाजसे नीचे देखना पड़ेगा? मित्रकी लाज तुम्हारे बीच नहीं आयेगी?’

‘होगा!...आज आप मेरा इतना सम्मान क्यों कर रहे हैं? भविष्यके सम्बन्धकी सूचना तो नहीं है न?’

‘नहीं यह मेरे ‘न भूतो न भविष्यति’ निर्णयकी सूचना है!’—

‘महानाम, चाहे तुम सब कुछ क्यों न जानते हो, पर एक बात नहीं जानते, कि तिरस्कार कैसे करना चाहिए!’ अशिष्टताका सीमोल्लंघन करके यह धूर्त खिलाड़ी महानामको जालमें फँसानेका खेल खेलने लगा। उसे पालीकी आवश्यकता थी, और महानामके द्वारा ‘हाँ’ कहलानेका यह अंतिम अवसर था। किन्तु महानामने अभयको पहिचान लिया। उसकी धूर्तता और प्रपंचोंसे उन्हें अत्यन्त घृणा हुई। उन्हें यही बात जाननी थी कि अभयने

उन्हें किसलिए बुलाया था। उनके संचित उत्तरों और प्रश्नोंसे अभय समझ गया कि आज महानामका जालमें फँसना कठिन है ! मद्यपात्र आ चुका था; अधिक शिष्टाचार किये बिना अभयने उसे मुँहमें उँडेल लिया और महानामकी ओर देखकर बोला—

‘महानाम, जो निर्णय संथागारमें होगा, वैसे कई निर्णय भूतकालमें हो चुके हैं और भविष्यमें भी होंगे क्योंकि यह निर्णय प्रवेणीपुस्तक ही करेगी !’

अभयके शब्द सुनकर महानाम काँप गये और धूर्त अभयने उनकी यह दुर्बलता देख ली; उसे आगे बोलनेका साहस बढ़ा—‘महानाम, परिषद्में पालीके विवाहका प्रश्न रखा जायगा, उस समय एक नहीं कमसे कम एक हजार लिच्छवी नवयुवक उस एक पुमारीके लिए तैयार होंगे !...और अभय के लिए तो आपका पक्का विश्वास है ही कि वह ऐसे एक हजार युवक उम्मीदवारोंको खड़ा करेगा !...मेरे लिए यह कार्य बहुत साधारण है यह तो आप भी जानते होंगे। जब एक ही कन्याके लिए एक हजार लिच्छवी पुकारकर हाथ बढ़ायेंगे...’

‘अभय, भय दिखाकर मुझे कोई जीत नहीं सका है !...’

‘मैं कहाँ नहीं जानता ? अभी तो मैं केवल मित्रका कर्तव्य निबाह रहा हूँ। संथागारमें जब एक हजार युवकोंके गणश्रेष्ठी यह प्रश्न पूछेंगे तो प्रवेणी पुस्तक देखना होगी ! प्रवेणी पुस्तक कहती है—‘एक पुरुषके लिए यदि हजारों लिच्छवी परस्पर लड़ मरते हों तो उस पुरुषको मार डालना चाहिए, और यदि किसी सुन्दरी स्त्रीके लिए हजारों नवयुवक एक दूसरेको नष्ट करने पर तुल जायँ, और वह स्त्री कुमारी हो तो उसे हजार युवकोंकी ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण वैशालीकी सम्पत्ति मानी जाय। एक पुरुषका मनोरंजन करनेके स्थानपर उसे पूरी वैशालीका मनोरंजन करनेकी धर्माज्ञा होगी। पालीके लिए यह धर्माज्ञा उसके पिता, वैशालीके न ‘भूतो न भविष्यति’ सभापति महानाम घोषित करेंगे !...और पाली, वैशालीकी ‘न भूतो न भविष्यति’ सुंदरी नर्तकी बनकर हजारों लिच्छवियोंके हृदय भी नचायेगी !’

‘पशु...! पामर !!...’

‘मैंने कहा न, कि आपको तिरस्कार करना आता ही नहीं है !’

‘अभय, प्रवेणी पुस्तकका न्याय भी मैं जानता हूँ और पालीको भी...! क्रोधसे काँपते हुए महानामसे आँखें लाल करके कहा—‘और यह न भूलना कि महानामकी तलवारको अभी तक कोई नहीं रोक सका है...!’

‘मैं तलवारकी बात नहीं, पालीकी बात करता हूँ—या तो मुझे दीजिए या सम्पूर्ण वैशालीको। मुझ वृद्धको दोगे तो एक भी युवक आँख उठाकर न देख सकेगा। किसी युवकको दोगे तो हजारों युवक उसके पीछे मरने को तैयार हो जायेंगे, इस बातका विश्वास तुम्हें भी है और मुझे भी। पाली मेरी होगी या वैशाली की ! इसके सिवा कोई दूसरा निर्णय अभय नहीं होने देगा इसका विश्वास रखें।’ इतना कहकर उसने मद्य-पात्र महानामके सामने रखा—एक ही झटकेमें महानामने उसे नीचे गिरा दिया और जाने लगे। उनके हाथ रह रहकर तलवारकी मूठपर पहुँच जाते थे। अभय महानामको देखता ही रहा; उसने धीरे धीरे नीचे झुककर पात्रको फर्शपरसे उठा लिया। जो दास मद्यपात्र उठानेके लिए दौड़ आया था वह समझ न सका कि अभयके मुँहपर सदाकी तरह विषमय हास्य था या असीम क्रोध !

[१२]

तीन दिन बीत गये और तीन दिन तक बिंबिसार एक ही काम करता रहा—पालीको देखते रहना !

अभी भी वह पालीको ही देख रहा था, ग्रामके बाहरकी एक छोटी-सी पर्णकुटीमें दोनों बैठे थे। पाली एक वृद्धको अपना हाथ दिखानेमें तल्लीन थी। वृद्धने अपने दूसरे हाथसे बिंबिसारका हाथ पकड़ रखा था; किन्तु बिंबिसारकी आँखें तो पालीकी ओर ही थीं !

नंदीग्रामके पूर्वकी ओर, जहाँसे शाक्योंकी सीमा प्रारम्भ होती थी, नंदीग्रामका एक छोटा-सा यज्ञ-मन्दिर था। यह मन्दिर किस यज्ञका था यह बात कोई न जानता था क्योंकि मन्दिरमें यज्ञकी मूर्ति ही न थी। बहुधा गाँवके

बूढ़े कहा करते थे कि सीता नामक एक राजकुमारी यहाँ दर्शनके लिए आया करती थी। उसके बाद तो दुष्कालने इतना भयंकर रूप धारण किया कि यज्ञ फिर वहाँ ठहर ही न सका और वह मंदिर कोशल, शाक्य, मल्ल, मगध, काशी इत्यादि स्थानोंमें नियमित भ्रमण करनेवाले धार्मिकोंकी मुख्य धर्मशाला बन गया। मन्दिरसे थोड़ी ही दूरपर एक पर्यंकुटी थी, जिसमें एक विद्वान ब्राह्मण रहता था। कई प्रकारके यंत्र-मंत्रादिका ज्ञाता होनेके कारण, साकेतके एक ब्राह्मणग्रामसे उसे बलात् देशनिकाला दे दिया गया था। वह वेदांतीथा इसलिए वहाँके आस-पासके अन्य ब्राह्मणोंके भूठे गर्व और वितरुणवाद तथा रूढ़ कूशाके कारण उसे उनसे विशेष अरुचि हो गई थी। अंतमें अपने पुराने मित्र अभिरामके आग्रहसे यह यक्षमंदिरवाला स्थान उसने अपने रहनेके लिए पसन्द किया। इस मंदिरमें आनेवाले धर्मप्रवर्तकोंसे वह बहुधा वाद-विवाद किया करता था। स्वभावसे तेज होनेके कारण वह किसीसे भी भिड़ जाता और स्पष्ट बोलनेका अभ्यास होनेके कारण किसीको भी जो चाहे सुना देता था। अभिरामके सिवा किसीसे उसकी बनती न थी। कइयोंसे वाद-विवाद और शास्त्रार्थ करनेपर भी उसने उस रिक्त मंदिरमें किसी देव या देवीकी मूर्ति स्थापित नहीं होने दी थी; इस काममें उसे अभिरामसे बहुत सहायता मिलती। वह प्रतिदिन संन्या समय इस वेदान्तीके पास आ बैठता, दिन भरकी आपबीती उससे कहता, और फिर वे दोनों सारे संसारको, और अन्तमें उसके स्रष्टाको भी अपने ज्ञानसे तौलकर और आलोचनाकी हथौड़ीसे ठोक पीटकर अपने मनका उबाल शान्त करते थे।

बिंबिसारने एक ही दिनमें अभिरामका मन जीत लिया था। वृद्धको सबसे अधिक आश्चर्य इसी बातपर हो रहा था कि इन तीन दिनोंमें ही बिंबिसार, पाली और आनन्दकी यह अखंड त्रिपुटी कैसे बन गई! उसके मनमें एक ही बात भ्रमित हो रही थी...। उसका मित्र वेदांती ब्राह्मण मृत मनुष्य की खोपड़ीकी परीक्षा करके भविष्य कहनेकी विद्यामें पारंगत था; मृत और घातकके सम्बन्धकी वर्तमान स्थिति और भविष्यका वह पूर्ण ज्ञाता था। अभिरामने

अपने भस्तिष्कके भ्रमित विचारोंका हाल सदाकी तरह वेदांतीसे कहा और आम्रह किया कि वह पाली और बिंबिसारका भविष्य ध्यानपूर्वक देखे। स्वभावानुसार पहले तो वेदांती चिढ़ बैठा, पर थोड़े समय बाद शांत होने पर उसने दोनोंका भविष्य देखना स्वीकार किया। इसलिए अभिराम, आज इन दोनोंको वेदांतीके पास लाया था। वेदांती जब दोनोंका भविष्य देखनेमें तल्लीन हुआ तो अभिराम यक्षमंदिरमें चला गया। किसी परिव्राजकके मंदिरमें आनेकी बात सुनकर वेदांतीने उनकी सेवा मुश्रूषाके लिए अभिरामको भेज दिया था। वृद्ध वेदांती, पाली और बिंबिसारके हाथोंको देख रहा था। वेदांतीके मुखपर भावोंका परिवर्तन पालीको कभी आशान्वित और कभी चंचल बना देता था...

अंतमें वेदांतीने दोनोंके हाथ छोड़ दिये और पासमें रखे हुए तुलसीदल मुँहमें डाले और एक ठंडी निःश्वास लेकर सिर हिलाने लगा। पाली, अभिराम की तरह वेदांतीको भी अपने नटखटपनसे उताना ही सनाती थी, फलस्वरूप बूढ़ा भी पालीको किसी न किसी प्रकार चिढ़ा दिया करता था। इस बार वृद्धके मुँह की गंभीरतासे पालीके प्राण गले तक आ पहुँचे; वेदांतीकी भविष्यवाणी सुननेके लिए वह अधीरतापूर्वक उसकी ओर देखने लगी। यह बात बूढ़ा समझ गया और पालीकी ओर देखकर बोला—‘यह दाढ़ीवाला राजकुमार है ! इसके प्रारब्धमें महान आत्माओंसे संसर्ग प्राप्त करना लिखा है... यह प्रकृतिका अनुचित पक्षपात है, अन्याय है !... ‘कैसे भगवान् ?...’ विस्फारित नेत्रोंसे वेदांतीकी ओर देखकर बिंबिसारने पूछा। ‘मुझे भगवान् नहीं वेदज्ञ कह !...’ अभ्यासानुसार वेदांतीने उसकी गूल सुधारते हुए कहा— ‘यह प्रकृतिका बड़ा भारी अन्याय नहीं है ?... तू एक विद्वान शास्त्रीके पास बैठा है और तेरी बुद्धि इस लड़कीको देखनेमें लगी है ! बोल, तू मेरे पास बैठने लायक है ?... किर भी बैठा ही है ! यह प्रकृतिका घोर अन्याय है !... अस्तु, तू कहाँका राजा है ?...’

‘मैं राजा नहीं, पर किस देशका हूँ यह तो आपको बताना चाहिए ! आप ही वेदज्ञ और शास्त्रज्ञ हैं न !’

‘तू सच कहता है कि तू राजा नहीं है?’ वृद्धने बारीक दृष्टि डाल कर पूछा।

‘नहीं, नहीं हूँ!’

‘तो थोड़े ही समयमें हो जाना चाहिए!’

...‘कितने समयमें दादा?...’ सहसा पालीके मुँहसे शब्द निकल पड़े; वह लाजसे जमीनमें गड़ गई।

वृद्धने दोष निकालनेके लिए कृत्रिम कोधसे पूछा—‘तू क्यों पूछती है? भविष्य तेरा कह रहा हूँ या इसका?...अस्तु, प्रारब्धशाली युवक, तू केवल राजा ही नहीं एक महाराजा बनेगा,...सम्राट बनेगा।’

‘यह तो आप जैसेंके आशिर्वादसे ही हो सकेगा?’—

‘आशिर्वादसे कुछ लाभ नहीं, तेरे भाग्यके योगसे ही होगा!’

‘प्रकृतिका घोर अन्याय होगा!’ पालीने गंभीर बनकर कहा।

बिबिसार हँस पड़ा, फिर उत्सुकताबश बिना संकोचके, पूछ बैठा—

‘वेदज्ञ, सम्राट तो बन जाऊँगा, पर किस देशका?’

‘पूर्वदेशोंका, तू पूर्वका है।’

‘यदि पूर्वका न हूँ तो?’

‘तो तू भूठा है!’

‘भूठा मनुष्य सम्राट कैसे बनेगा?’—

‘हृदयमें कपट न हो तो बन सकता है, इसीलिए तो कहता हूँ कि तुझको भाग्यशाली बनाना प्रकृतिका घोर अन्याय है। उसने तुझमें एक निर्बलताके साथ चार सुन्दर वस्तुएँ दी हैं। तू भूठा होने पर भी सम्राट बनेगा’—

‘दादा! हाथ तो मेरा देख रहे हो और भाग्य इनका पढ़ रहे हो?’...

पालीने मुँह चढ़ाकर पूछा। वेदांतीने चौंककर देखा। तभी उसे ध्यान हुआ कि बात करते करते उसने पालीका हाथ पकड़ लिया था। जो बात पालीके हृदयमें घूम रही थी वही बात वेदांतीके मनमें थी। उसका छुपा मन, पालीका भविष्य जाननेके लिए अत्यधिक व्याकुल हो गया। अपने मनकी बात बाहर प्रकट न

हो जाय इस लिए उसने हँसनेका प्रयत्न किया—हँसा; और बोला—

‘कारण यही है पाली, कि इसका हाथ पढ़कर मैंने तेरा भाग्य देखा था ।’

‘पर मेरा भविष्य अभी तक मुझे कहाँ कहा है ?’

‘तुम अकेलीको कहूँ या दोनोंको ?’

‘मुझ अकेलीको ही कहो दादा ।’

‘नहीं प्रभु ! बिंबिसारने मत-भेद किया ।

‘क्यों ?...’ पालीने भुकुटी चढ़ाकर पूछा ।

‘यह तो घोर अन्याय होगा वेदज्ञ !’

‘कैसे ?...’

‘पालीको सुनानेके लिए आपने मेरा भविष्य कहा था, अब मुझे सुनानेके लिए पालीका भविष्य कहना चाहिए !’

वेदांती बिंबिसारकी ओर देखने लगा; उसने मुँह घुमाये बिना ही तिरछी आँखोंसे पालीकी ओर देखा, तब पुनः बिंबिसार की ओर देखकर दोनोंको सुनाता हुआ कहने लगा—‘तुम दोनोंकी मनोकामना पूरी होगी !...पर बेटी’...पालीकी ओर देखकर उसने कहा..‘तू महारानी नहीं बनेगी !’

‘प्रभु ..!’ जैसे बिंबिसारके चेहरेका रक्त अचानक उड़ गया ! वेदांती एकटक उसकी ओर देखता रहा; कुछ देर बाद उसने पालीकी ओर दृष्टि घुमाई और मुस्कराकर कहने लगा,—‘बेटी, जीवनमें दुःख और सुख सदासे ही एक दूसरेको हरानेके लिए द्वन्द्व-युद्ध करते रहते हैं, कोई भी मनुष्य इनसे अलग नहीं रह सका है । आज तक कोई इसका निर्णय नहीं कर सका कि इन दोनोंमें कौन अधिक शक्तिशाली है ? क्यों कि दोनों एक दूसरेसे हारते रहे हैं ! अपने जीवनके अंतिम दिन तू इससे ऊँचे स्तरपर बिताएगी, तुझे ब्रह्म-ज्ञान होगा ! जिसके पीछे सारा जीवन गँवाकर भी मैं पा न सका, उसे तू सरलतासे पा जायगी ! कदाचित् तू संसार-त्याग भी करेगी !’

‘नहीं’ नहीं, प्रभु ! मैं ऐसा नहीं होने दूँगा, कभी नहीं ! आशिर्वाद हीजिए प्रभु, यही आशिर्वाद दीजिए !...’

आत्मसंयम खोकर, बिंबिसारके लुब्ध हृदयसे यह बात निकल तो गई किंतु सम्बल जानेपर तत्क्षण वह संकुचित हो गया । पाली और वेदांती उसके आवेशमें गर्भित प्रेम और निश्चयको स्तब्ध होकर देखते रहे ।

‘प्रभु ! सिर उठाकर पुनः बिंबिसार बोला—‘आपने अभी कहा न था कि हमारी कामनाएँ पूरी होंगी ?’

‘मैंने ‘तुम्हारी’ इच्छा पूरी होगी यह कहा था, ‘तेरी’ इच्छा पूरी होगी यों नहीं कहा ।’

‘और इसमें अपवाद नहीं हो सकता ?’

‘नहीं !’

‘बस प्रभु !’ यही आशिर्वाद दीजिए !’

बिंबिसार अधिक न बोल सका । पाली अभी भी विस्मित सी उसके मुखकी ओर देख रही थी । अंतमें दोनोंने वेदांतीका आशिर्वाद लिखा और जाने लगे । वेदांती शांतिपूर्वक दोनोंको जाते हुए देखता रहा ।

इतनेमें अभिरामकी दूरसे आती हुई चिल्लाहटने उसका ध्यान भङ्ग किया । वह तेजीसे दौड़ता हुआ चला आ रहा था, मानो उसके जराजीर्ण पैरोंमें नया यौवन आ गया हो ! उसके, वेदांतीके पास पहुँचनेके पहिले ही बिंबिसार और पाली दूर निकल गये थे । उसके मुँहपर भीषण आवेश दिखाई दे रहा था । कभी कभी युद्धमें जीतनेपर भी अभिराम ऐसा उन्मत्त हो जाता था; उसे देखकर वेदांती खीझा—‘इस बूढ़ेको यौवन तो याद नहीं आ गया ? किसीका शरीर छेदकर, या किसीके टुकड़े टुकड़े करके तो अभिराम पागलकी तरह यहाँ दौड़ा नहीं आया ? मार काट और हिंसासे वेदांती को अत्यन्त घृणा थी वेदोंके सतत मननके बाद जबसे उसने वैसी कितनी ही बातोंका त्याग किया था तबसे प्राण लेनेकी किया उसके मनमें अत्यन्त ग्लानि उत्पन्न करती थी । वेदोंकी अगम्य बातें जाननेके लिए वह कभी कभी बहुत व्याकुल हो जाता । इसलिए अभिराम कुछ उत्तेजक बातें कहे उसके पहले ही वह मृगचर्म समेटकर संध्याकर्मके लिए पर्याकुटीमें जानेको उठ खड़ा हुआ । किन्तु अभिराम चूकने वाला न था, बोल उठा—

‘मित्र, सुन तो सही !’

‘सुन लिया ! कितनोंको मार डाला ?’

‘अरे, मैं ही मर गया भाई, मैं स्वयं मर गया !’

‘तू मर ग...’ वेदांती कुछ कहना चाहता था किन्तु उससे बोला न गया, कुछ देर बाद उसने मुस्कराकर पूछा—‘तू कब मर गया ?’

‘कुछ ही क्षण पहले; यही तो कहने आया हूँ !’

अब तो अभिरामके लिए वेदांती सचमुच ही भयभीत हुआ। अभिराम का स्वर बदल गया था; उसके मुँहपर सदाके गांभीर्यके स्थानपर एक प्रकार का स्मित खिल रहा था। समेटा हुआ मृगचर्म नीचे रखकर उसने अभिरामका हाथ पकड़ा और नीचे बैठाया।

‘देख अभिराम, वैद्यका ही मस्तिष्क बेकाम हो जाय तब दवा कौन करेगा ?’

‘मुझे दवाकी आवश्यकता नहीं है, और समझकी भी नहीं। विप्र, जिसकी आवश्यकता थी वह अलभ्य वस्तु मुझे आज अचानक ही प्राप्त हो गई है। मित्र, मैं मर गया हूँ क्योंकि अब मुझे पुनर्जीवनकी अनुभूति हो रही है। मेरी मंद दृष्टि अचानक प्रोज्ज्वल हो गई है ! मेरे शरीरमें सहस्र अश्वोंकी शक्ति एक साथ दौड़ उठी है ! मैं सब कुछ देख सकता हूँ; मेरी आन्तरिक दुविधा दूर हो गई है, मुझे असीम शांतिका तट मालूम हो गया है, बस वहाँ जानेकी ही देर है। इसलिए तुम्हें लेने आया हूँ; चल, वयस्क, मेरे साथ यत्त मंदिरमें चल...’

‘यत्तमंदिरमें ? क्या वहाँ कोई परिव्राजक आया है ?’

‘तू शाक्योंके राजकुमार, शाक्य मुनिको जानता है ?...वे आये हैं; मैं उनसे मिला। उन्होंने प्रेममयी दृष्टि डालते ही मानों मेरे प्राण और हृदय अपनी ओर खींच लिए। मैं उनके पास बैठ गया, और उनके उपदेश सुननेमें तल्लीन हो गया। मैं नहीं मानता था वेदांती ! सच कहूँ तो हम नहीं मानते थे कि एक युवक लौकिक और अलौकिक जीवनके रहस्यों और चमत्कारोंको समझ सकेगा ! शाक्यमुनि युवक हैं, वे सब समझते हैं। मैं जो

कहता गया, जो जो प्रश्न मैंने पूछे वे गूढ़ प्रश्न अति साधारण होकर मेरे सामने प्रकट होते गये ! मैं अवाक् होकर उन्हें देखता रहा । धीरे धीरे हृदयमें प्रकाश हुआ, मुझे एक दिव्य ज्योतिकी प्राप्ति हुई । मैं उनके चरणोंमें गिर पड़ा । मैं मर गया । मेरा पुनर्जन्म हुआ । शाक्य मुनि अद्भुत हैं, अलौकिक हैं । मेरी दृष्टिमें वे सर्वज्ञ हैं । चल वेदांती; अभी ही चल—तेरे वेदांतका आरंभ और अन्त शाक्यमुनिमें मिलेगा; जो तुझे वहाँ शान्ति नहीं मिले तो जो कहे, दण्ड भोगनेके लिए तैयार हूँ ! मित्र, मैं मर गया हूँ और तुझे मरनेके लिए ले जाने आया हूँ !’

‘शाक्य मुनि ? आलारकलामने जिसके विषयमें घृणापूर्वक कहा है वही तो नहीं ? वह तो हर किसीको दीक्षा देता है ! सुना है हमारे गाँवके एक भोचीने उससे दीक्षा ली है । नीच जातिको दीक्षा ! वही जो भिक्षुओंके साथ घूमता रहता है, और शास्त्र अध्ययन करता है । भारतके अनादि धर्म का विरोध करके तेरा शाक्यमुनि स्वयं धर्मप्रवर्तक होना चाहता है ? देखू तो सही उस अधर्मीको ! इस शाक्य गौतम को !—’

‘..बुद्धको, गोतम बुद्धको—बह !’ वेदांतीकी भूल सुधारते हुए अभिराम बोला—‘उनके शिष्य उन्हें गोतम बुद्धके रूपमें पहिचानते हैं—सम्यक्संबुद्ध गोतमके रूपमें !.’

वहाँ खड़ा खड़ा अभिराम और अधिक बोलनेका धैर्य खो बैठा था; सर्वशास्त्र कोविद वेदांतीको वह शाक्यमुनिके पास ले जानेके लिए आतुर हो रहा था; इसलिए जब वेदांतीको खींच-तान कर यक्ष मन्दिर तक ले आया तब ही उसे शान्ति हुई । यक्षमन्दिर तक आ पहुँचनेके बाद दोनों एक दूसरे को देखने लगे । यक्षमन्दिर सूना था ।

वेदांतीने हाँफते हाँफते इधर उधर देखा और किसीके दिखाई न देने पर व्यंग्य भरी आँखोंसे अभिरामकी ओर दृष्टि की । अभिराम बेकल होकर इधर उधर दौड़ रहा था; वह मन्दिर, और मन्दिरके पास कच्ची दीवारकी

बर्षशालमें घूम आया पर कोई दिखाई नहीं दिया। बेदांती अभी भी तौकड़ दृष्टिसे अभिरामको देख रहा था।

‘अभिराम...’ वह बोला—‘तू आजकी बात कह रहा है या चार महीने पहले की?’

‘अरे, तू क्या मुझे मदिराके नशेमें समझता है! चार महीने पहिलेकी बात आज दौड़कर कहने क्यों जाऊँ?’

‘तेरा कौन-सा काम साधारण होता है? पाँच वर्ष पहिलेकी बात तू एक बार मुझे रातकी नींदसे जगाकर कहने लगा था!’

‘वह तो आत्मिकी बात थी; आध्यात्मिक असन्तोषकी बात थी!’

‘अच्छा, अब मुझे समझा कि शाक्यमुनि ने तुझे ऐसी कौन-सी बातें कह दीं कि एक ही बारमें, एक ही क्षणमें तेरे जीवन भर का आध्यात्मिक असन्तोष दूर हो गया, और मुझे भी उसके लिए यहाँ घसीट लाया?...’

‘वेदान्ती! तू वेदोंकी बात मानता है न?’

‘तेरा शाक्यमुनि मानता है?’

‘नहीं!’

‘आत्मा को मानता है?’

‘तू जिसे आत्मा समझता है, उसे नहीं!...’

‘परलोकको मानना है?’

‘मानते हैं, और नहीं भी मानते!’

‘तब मैं उस मनुष्यका मुँह भी नहीं देखूँगा! कोई दूधके विषयमें तर्क करना चाहे और उसमें यदि दूधको पहिचानने की क्षमता ही न हो उसके साथ तर्क कैसा, अभिराम?’

‘पर भाई, दूधको देखे बिना तू ही दूधके विषयमें तर्क करनेकी सूखता कर रहा है। तूने शाक्य मुनिके साथ वार्तालाप किया है?...नहीं! तर्क किया है? नहीं! तब तू अना ही विरोध कर रहा है! जिसे देखा नहीं, जिसके विषयमें कुछ नहीं सुना, जिसके सिद्धान्तोंको नहीं समझा उसे अचा-

नक यह कह देना कि 'तू कुछ नहीं जानता !' यह कहाँ तक मूर्खता दिखाता है ? तू ही कह न !'

वेदांती क्षणभर अभिरामको देखता रहा; उसने विस्फारित नेत्रोंसे देखा कि अभिरामके मुखपर अपूर्व प्रसन्नता प्रस्फुटित हो रही थी। उसकी आँखोंमें गर्वमयी ज्योति चमक रही थी मानों उसे कोई अलभ्य वस्तु मिल गई हो। वह देखता ही रहा ! उसने यत्नविहीन मन्दिरकी ओर देखा; मनुष्यविहीन धर्मशालाकी ओर देखा, और देखा चन्द्रविहीन आकाशकी ओर—सप्तर्षि जैसे एक ओर भाग जाना चाहते थे ! धीरे धीरे उसने सिर नीचे झुका लिया और बोला—'शाक्यमुनि गौतम बुद्ध...गौतम बुद्ध !...'

तब जैसे उसे कोई बात याद आ गई, वह उठ खड़ा हुआ, और संध्या-कर्मके लिए पर्णकुटीकी ओर जाने लगा।

अभिराम निर्निमेष दृष्टिसे वेदांतीकी पीठको देख रहा था; उसके ओंठ विजयके गम्भीर हास्यसे फड़क रहे थे। जीवनमें पहिली बार वेदांती विजित होता दिखाई दिया। वेदोंको न माननेवाले, आत्मा और परमात्माका विभिन्न प्रकारसे विवेचन करनेवाले शाक्यमुनिने वेदांतीको बड़ी उलझनमें डाल दिया था; विचारोंके इस प्रवाहमें, जिस जगह वेदांतीको रुकना पड़ा, उस स्थानको यह कलक शाक्यमुनि, एक क्षत्रिय-पुत्र पार कर गया था। अभिराम, वेदांती के मनके दुविधामें विचारोंको जान गया, इसलिए वह एकटक वेदांतीकी पीठकी ओर देख रहा था।

आनन्द, सीमापरके भगड़ोंका निबटारा करनेके लिए अन्य ग्रामीणोंके साथ गया था, वह कबसे उसके पैरोंके पास आकर बैठा गया, यह अभिराम को मालूम ही न हुआ। जब आनन्द धीरेसे कुछ बोलने लगा तब उसे सुध आई।

'दादा, मैंने शाक्यमुनिको देख लिया ! उन्हें आवश्यक नहीं है अनाथ पिरिडके सहायसे आमन्त्रण मिला, वे वहाँ गये हैं। बहुत विचित्र पुरुष हैं दादा ! मैं उन्हें तलवार लेकर मारने दौड़ा पर मार नहीं सका !'

‘ऐं ! दुष्ट, क्या कहा ? तूने मेरे प्रभुपर हाथ उठाया ?’

‘हाँ, दादा ! मल्लराज गोपाल, सीमाके भगड़ेमें मेरे सामने आकर खड़ा था । देखते ही देखते बात बहुत बढ़ गई, दोनों गाँवके पंच भी बीचमें पड़े किन्तु गोपाल न माना, उसे आवेश चढ़ा हुआ था ! उसी समय शाक्यमुनि अपनी मित्रमण्डलीके साथ उधर आ निकले, उन्होंने हमें शान्त करनेका प्रयत्न किया । ‘तुच्छ बातोंके लिए मनुष्योंकी हिंसा करना अज्ञानी और मूर्ख मनुष्योंका काम है’ ऐसा ही कुछ वे बोले । मुझे क्रोध आ गया, तलवार लेकर उनकी ओर जा दौड़ा ! किन्तु ओह, मैं उनकी अदम्य मुस्कान नहीं मिटा सका । अचानक मेरे पैर रुक गये, मेरा हाथ आकाशमें ही रह गया !...

‘फिर ? दुष्ट तूने क्या किया ?’

‘तब मुस्काते हुए वे आगे बढ़े; उन्होंने मेरी तलवार हाथमें लेकर म्यान में रख दी । उसी मुस्कराते मुखसे, उसकी ओर देखकर उन्होंने उसकी तलवार भी म्यानमें रखी और कहने लगे—’

‘क्या कहा आनन्द ! उन्होंने क्या कहा ?’

‘बोले कि—कभी भी बैरसे बैर नष्ट नहीं होता; प्रेम द्वारा ही सब वस्तुओंका आधिपत्य मिलता है; यही समातन धर्म है !’

‘धन्य प्रभु !..फिर बेटा ?’

‘प्रेमसे वश करनेकी बातें तो मैं कबसे सुनता आ रहा हूँ किन्तु शब्दोंका जो चमत्कार उनके मुखपर दिखाई दिया, वह मैंने कहीं भी, कभी नहीं देखा । मुझे लगा की उनकी मुस्कान मेरे हृदयको ढूँढ़ रही थी; मेरी समस्त शक्ति उस मुस्कानने हर ली । मैं अपनी सुधबुध खो बैठा और मेरा मस्तक उस सन्यासीके—’

‘मुनि के—’अभिरामने भूल सुधारी ।

‘उस मुनिके पैरोंमें गिर पड़ा...’ आनन्दने अपनी भूल सुधारकर कहा ‘और तब ही मुझे मालूम हुआ कि मल्लराज गोपालके साथ ही मैंने भी अपना सिर उस सन्यासी के—’

‘शाक्यमुनि के—’

‘शाक्यमुनिके पैरोंमें झुका दिया था; तब उन्होंने हमें आशिर्वाद दिया; हम दोनोंको उठाकर हृदयसे लगाया; और हम जाने किस तरह सारा वैमनस्य भूलकर एक दूसरेसे चिपट गये। जब हम एक दूसरेके बाहुपाशसे छूटे तब हमें सुध आई कि शाक्यमुनि अपने शिष्योंके साथ नदीके उस पार, नदीके शांत जलमें किरणें फेंकते हुए जाज्ज्वल्यमान सूर्यकी ओर, दूर चले जा रहे थे। दादा, आमुओंके अवगुंठनने मुझे और स्पष्ट न देखने दिया। मल्लराजने सच ही कहा—‘वे हमें छोड़ गये पर हमारे हृदयको ले गये। तुम उनसे मिले थे दादा ! उनसे तुम मिले थे ?..’

अभिरामकी आँखोंसे आँसू बिखर रहे थे। घोर अंधकारमें विद्युत्प्रकाश की एक झलक चतुर मनुष्यको मार्ग दिखा देती है उसी तरह शाक्यमुनि, अभिरामका हृदय उज्ज्वल करके चले गये थे। एक ही घटना द्वारा उन्होंने अभिराम, आनन्द और गोपालको अपना बना लिया। आनन्दके प्रश्नके उत्तरमें अभिरामने सिर हिलाया। उसकी आँखोंके आँसू उमड़ रहे थे। वह धीरे-धीरे खड़ा हुआ और उन्मत्त-सी दशामें, पास बैठे हुए आनन्दका हाथ पकड़कर महलकी ओर जाने लगा।

[१३]

वही चन्द्रमा, वही उद्यान और वे ही पाली व बिबिसार थे; पर वह रात न थी। वह तीन, नहीं किंतु सात दिनों बादकी रात थी।

उस दिन संध्यासे, जब कि वेदांतीने भविष्यवाणी की थी, अब तक पाली और बिबिसारके बीच हृदयमें भावोंके उत्थान-पतनने विचित्र रूप धारण कर रखा था। वेदांतीसे मिलनेके बाद दूसरे ही दिनसे पाली, बिबिसार को प्रेम और भयके मिश्रित भावोंसे देखने लगी। एक प्रकारका संशय, एक प्रकारके वियोगका पूर्वाभास धीरे धीरे पालीके हृदयमें प्रकट होने लगा। पाली ऐसे भावोंको समूल नष्ट करनेका प्रयत्न करती; वे अन्तर्हित भी होते, किंतु कभी कभी वे फिर प्रकट होकर दोनोंको अशांत कर देते थे।

जब इन दोनों प्रेमियोंके बीच रसपूर्ण वार्तालाप प्रारंभ होता तब पाली अपनी समस्त शक्ति एकत्रितकर मनको बलात् दबाकर आधी बात छोड़, उठ जाती थी। किसी समय शृङ्गार करते करते रुक जाती; कभी तो महलके बाहर ही न जाती और कभी बिंबिसारसे छुपनेके लिए किसी कामका बहाना करके आनन्द, अमिराम या वेदांतीके पास भाग जाती।...किन्तु जब वह मनको अधिक कठोरतासे दबाती तब भी वह भय मिश्रित प्रेम आ ही जाता; उसे लगता कि हृदय अब वशमें नहीं रहेगा ! और था भी ऐसा ही !

सबहसे बहाना करके छुपी हुई पाली कोई दूसरा बहाना ढूँढ़कर बिंबिसारको मिलनेके लिए दौड़ी आती थी। मनको जितनी कठोरतासे बाँधती, वह उतनाही सरल हो जाता ! कौन जाने बिंबिसारमें ऐसा क्या था ! उसकी आँखोंसे आँखें मिलते ही पालीके अंग अंगमें एक अननुभूत सिहरन दौड़ जाती। उसके मुखपर हास्य देखकर, निश्चित की हुई बात निभ नहीं सकती। बिंबिसारके प्रेममय शब्द उसका अपनापन छीन लेते। अनेक बार बिंबिसारको न देखनेका निश्चय करनेपर भी पाली बहुधा उसे देखते ही सुध खो बैठती और उससे बातें करने बैठ जाती !...और बिंबिसार ?...

ऐसे तो उसने स्त्री और यौवनको ठीक ठीक पहचान लिया था, किन्तु नारीकी प्रीति, अपनी विशुद्ध और यौवन सुलभ मादकतासे परिवेष्टित युवती का निर्मल प्रेम, उसे केवल आम्रपालीमें ही मिला था।

पालीके प्रथम दर्शनसे ही वह जान गया था कि पाली उसकी है; और जबसे उसने इस बातका अनुभव किया तबसे वह रही सही सुधबुध भी खो बैठा था। जिसकी प्रशंसा करनेमें लोग थकते न थे, वह चपल और बुद्धिमान बिंबिसार किशोरावस्थामें पैर रखते ही किसी साधारण युवककी तरह पागल बनकर राज्य, शरीर और देश सब कुछ ही भूल बैठा। उसे इस बातका पक्का विश्वास हो गया कि पाली और वह दो नहीं, एक हैं। नवप्रभातमें किसी चंचल दासीका वीणा-संगीत पालीके पदोंको भी चंचल बना देता। सुगंधित, सुकुमार कुसुमोंको तोड़ती हुई, पक्षियोंको पकड़कर, तथा मयूर मयूरी और हरिणियोंको बुला बुला कर जब पाली नाचने

भी लगती तब उसी वीणासंगीतके सुरोंमें विमूढ़ बनकर बिंबिसार कृष्णकी ओटसे नर्तकी पालीको देखता रहता । पाली निस्संदेह एक कुशल नर्तकी थी ।...

पालीकी निडरता, उसके बुद्धि-कौशल और उसके सम्पूर्ण विकसित शरीर सौष्ठवने बिंबिसारको विजित कर लिया । वैसे ही कभी कभी वह पालीको देखते ही बाहुपाशमें जकड़नेके लिए उन्मत्त हो जाता ।

...कभी कभी पालीको सोयी हुई, गहन निद्रामें निमग्न देखकर, उसे घंटों इसी प्रकार देखनेके लिए तरसता । कभी रातको जाग उठता और बागमें उस काष्ठकी बैठकपर बैठे बैठे जाने कब तक पालीके शयनगृहकी ओर एकटक देखता रहता । निरन्तर प्रहरों पालीसे वार्तालाप करनेके लिए वह तड़पता रहता !...पालीके हास्यसे वह प्रफुल्ल हो जाता था; पालीकी अनबनसे वह व्याकुल हो उठता; पालीके रोषपर वह मोहित हो जाता, पालीके क्रोधपर वह न्यौछावर हो जाता था ! ..

मन ही मन किये हुए निश्चय, दोनोंके मिलते ही जाने कहाँ विलोम हो जाते ! दोनोंके अन्तर मिलनेके लिए आकुल हो उठते—ऐसी स्थितिमें समय और स्थान ही उनकी बाधा बन जाते थे ।

आजकी रात, पूर्वगत् अन्य रातोंके समान होते हुए भी विभिन्न थी । दूसरी रातोंसे, आजकी रातमें केवल यही अन्तर था कि आज बिंबिसार अधिक व्याकुल था और पाली अपनी साधारण चंचलता छोड़कर गंभीर बन गई थी ।

पाली गहन विचारोंमें निमग्न थी; इस समय वह बैठकपर लेट गई थी । विचारोंका ताता-सालगा रहा था—एक परदेशी पुरुष—जिसके वंश और देशका निश्चित पता न था, उसके पीछे यह लिच्छवी कन्या, महानामकी पुत्री पागल कैसे हो गई ? पालीने अनेक बार, वैसी कई कुमारियोंकी, जो कि विवाहके पहिले ही प्रेम-बावरी बन जाती थीं, हैंसी की थी । किसी युवकके सम्मुख किसी युवतीको सहसा प्रेम-द्रवित और मुकी हुई देखकर उसे

असीम क्रोध होता था। कोई भी स्त्री जब ऐसा व्यवहार करती तब वह स्वयं अपनेको अपमानित अनुभव करती थी और समय पर उस स्त्रीको रोष-भरा उलाहना देने वह स्वयं वहाँ पहुँच जाती थी। वह सबसे अधिक इसी बातपर चिढ़ती थी कि पुरुषको देखकर स्त्री अबला क्यों बन जाती है?... उस समय इस बातका प्रामाणिक कारण उसे ढूँढ़े न मिलता था। आज उसे रह रहकर यही बात मनके किसी कोनेको गुदगुदा कर बता रही थी स्त्रीकी यही निर्बलता—नर और नारीका प्रणय, प्रकृतिकी देन है।

इस उत्तेजनाके कारण अधिक निर्बल कौन है?...स्त्री या पुरुष? या दोनों ही?...जिस प्रतीतिकी स्त्री-पुरुष दिन-रात कामना करते हैं वही सच्चा सुख है?...इसी विषयमें 'किसलिए' और 'क्यों' के गहन विचारोंमें पाली उलझ गई थी।

तब ही अत्यन्त निकटसे, ध्वासके स्वरमें बिंबिसारने कहा—'पाली!'

'अति...' अतिथि शब्द पूरा न हो सका; पाली चौंक उठी।

'अति सुंदर...' बिंबिसारने पालीका अधूरा शब्द पूरा किया।

'क्या है अति सुंदर...?'

'जो कुछ तुम कहती और मानती हो।' बिंबिसारने उत्तर दिया। पाली कुछ देर उसकी ओर देखती रही तब बोली—'तुम यहाँ क्यों आये?'

'.. और तुम?'

पाली सहसा कुछ उत्तर न दे सकी। बिंबिसार भी मौन था, जैसे दोनों एक दूसरेको समझ रहे हों! श्वासोच्छ्वाससे पालीका वक्ष काँप रहा था, और कुछ कहनेके प्रयत्नमें उसके ओंठ भी हिल-हिल कर रह जाते थे! बिंबिसारकी मदमाती आँखों और हृदयमें उठते हुए तूफान ने कुछ देर तक दोनोंको विमूढ़ बना दिया।...दोनोंके मन साक्षी थे कि इतनी रातमें वे उद्यानमें क्यों आये?...पालीने बलपूर्वक अपनी भावनाओंको दबाया। वह सहसा खड़ी हो गई और बोली—'तुम कल ही यहाँसे चले जाओ!...'

'क्यों?' बिंबिसारने मुस्करा कर पूछा।

‘तुम्हें कल जाना ही होगा !’

‘क्यों ?’

‘तुम जाओगे या नहीं ?’

‘क्...’

‘क्यों न पूछो !’ पाली बीचमें ही बोल उठी—‘जाओगे या नहीं !’

‘मैं परदेशी हूँ, अतिथि हूँ, संभव है मैं अभीतक स्वस्थ न हुआ हूँ !’

‘आज संध्याको मुझे उठाकर गंगावाली टेकरीपर चढ़ गये तब तो स्वास्थ्य ठीक था न ?’

‘नहीं, एक छोटे बछड़ेको लेकर, एक श्वासमें मैं टेकरीपर चढ़ जाऊँ तब ही कहा जा सकता है कि मैं स्वस्थ हूँ—मेरे शुभचिन्तकोंका यही अभिप्राय है ! तुमको उठानेका श्वास अभीतक बन्द नहीं हुआ है ।... मैं स्वस्थ नहीं हूँ ।’

‘यों ही कहो न कि मैं बछड़ेसे भी अधिक भारी हूँ ।’

‘मैंने ऐसा कब कहा ?’ बिबिसारने अत्यन्त मृदुस्वरमें पालीका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा; इस स्पर्शने पालीको सिहरा दिया । बिबिसारने पुनः शिराओंमें विद्युत्प्रवाह उत्पन्न किया, उसने मन्दस्वरमें कहा—‘पाली !...’

‘नट... मुँह उठाकर उसी स्वरमें पालीने उत्तर दिया; उसकी आँखें झुक गई थीं । पालीका एक हाथ बिबिसारके हाथमें ही था; उसने दोनों हाथोंसे पालीको अपनी ओर खींच लिया । पाली विस्फारित नेत्रोंसे उसे देखती रही ।...’

‘पाली, हृदयकी भावना बाहर आकर बोले तो हम दोनोंके हृदय एक बात कहेंगे, यह बात तू भी जानती है और मैं भी !...’

बिबिसार ‘तू’ तक आ पहुँचा था । पालीको यह ‘तू’ संभवतः अमृत जैसा लगा होगा, क्योंकि उसने इसका कुछ भी विरोध नहीं किया । बिबिसारके कहते कहते ही पालीने आँखें मूँद लीं; बिबिसारकी वह भावना उत्तेजित

हो रही थी ।...

‘पाली, जबसे यहाँ आया हूँ, तबसे मनमें बार बार यही कह रहा हूँ और सोच रहा हूँ—तुझसे कैसे कहूँ कि ‘तू मुझे सुखी कर, मुझे विवाह कर लेने दे ! अब मैं तेरे बिना नीरस हो रहूँगा !..किन्तु मैं नहीं कह सका । पाली, मैंने किसीके आगे निर्दोष बननेका आडम्बर नहीं किया । जो कुछ शुद्ध, स्वच्छ और सुन्दर, तेरे पास है, वह मेरे पास नहीं; केवल शक्ति या बुद्धि कभी आकर्षक नहीं होती; केवल सौंदर्य भी कभी सम्पूर्ण या आकर्षक नहीं होता ! मैंने अनेक सौन्दर्य-मूर्तियां अपने चरखोंमें लोटती देखी हैं, किन्तु उनपर मैं हँसता रहता था । मैं केवल मनोरंजन कर रहा हूँ, यही मेरे हास्यका रहस्य था । किन्तु जबसे मैंने तुझे देखा है, मुझे लगा कि मैं जिसे देखता था वह मुझे मिल गई; और इस समय अनुभव हो रहा है कि मैं परिपूर्ण हूँ ! तू ही मुझे पूर्ण करती है पाली ! तू मेरी है ! सामाजिक नियमों, लोकलाज और कुल-संरक्षणके लिए हम विधिपूर्वक विवाह करेंगे; पर हमारे विवाह तो हो ही गया है ! तुझे मैं तेरे समाजमें किसी भी प्रकार अपमानित देखना नहीं चाहता । तू मुझसे विवाह-ग्रंथिमें बँध जा...!’

पाली उन्मत्तवत् बिबिसारको एकटक देखती रही । यदि अब तक पाली मौन न रही होती तो जो कुछ बिबिसारने कहा वही अक्षरशः बोल जाती । किन्तु पाली बुद्धिमान थी; उसमें नारी हृदयकी संवेदनाके साथ साथ एक स्निग्धवी का स्वाभिमान और पिताकी दी हुई शिक्षा भी समाई थी । वह बिबिसारसे अलग हो गई । दूर दृष्टि डालकर, जैसे उस ओर इंगित करते हुए पालीने कहा—‘तुम परदेशी हो !’

‘मैं राजकुमार हूँ ।’

‘नट हो !’

‘पर जन्मजात नहीं !’

‘रहस्यमय हो !’

‘दुष्ट नहीं !’

‘बिदेशी पर सीमित विश्वास ही किया जा सकता है’ पैर बढ़ाकर पाली ने कहा—‘जो पुरुष अपने आपको गुप्त रखना चाहता हो, जो सब कहनेमें संकुचित होता हो, जो रात-दिन अपने उस रहस्यमय जीवनके लिए सचेत रहता हो, उसकी किसी भी बातपर कहाँ तक विश्वास किया जा सकता है?’...

बिबिसार उसके पास दौड़ आया; पाली तिरछी दृष्टिसे अपने शब्दोंका प्रभाव मापने लगी। वह अनभिज्ञकी तरह उस ओर पीठ करके खड़ी रही जैसे वह बिबिसारका आना नहीं जान पायी है। उसने बलात् अपने मुँहपर विराग लानेका प्रयत्न किया। किन्तु बिबिसार यह सब न देख सका; उसने पालीको दोनों हाथोंसे एकदम अपनी ओर घुमा लिया और उसकी ओर पागल की तरह देखकर कहा—‘पाली, मेरी आँखोंमें देखकर कह कि ‘मुझे तुमपर विश्वास नहीं है!’ पालीने देखा, बिल्कुल पुतलियोंमें देखा। बिबिसार देखता ही रहा। पाली जैसे उसे पढ़कर बोली—‘तुम्हें मुझमें विश्वास है? नहीं! क्यों?’ इतना कहकर वह उस बैठकपर बैठ गई। बिबिसार भी उसके पीछे जा बैठा। पाली उसकी ओर देखे बिना ही कहती गई—‘मुझमें विश्वास होता तो कह देते कि तुम कौन हो! प्रेममें अविश्वासका जरा भी स्थान नहीं। प्रेमका अर्थ ही विश्वास है!’

बिबिसार द्रवितप्राय होकर बोला—‘पाली, तेरे ये कठोर आघात भी मुझे अमृत जैसे लगते हैं! अभी मैं और कुछ नहीं कहूँगा, बस एक ही बिनती करना है’... कहकर उसने तीव्र आवेशमें पालीको अपनी ओर खींच लिया और बोला—‘पाली फिर मुझे देख और सच्चे हृदयसे कह कि तुम मुझमें विश्वास नहीं करते। बस, मैं इसी क्षण यहाँसे चला जाऊँगा। मुझपर विश्वास नहीं करूँगा, पाली, तो निश्चित समझना कि मैं, अपने आपपर विश्वास नहीं करूँगा—मैं, मैं नहीं रहूँगा!...’

इस बार पाली द्रवित हुई; सहसा उसने बिबिसारके हाथ अपने हाथमें ले लिये, मानों उसे अपनी ओर खींचना चाहती हो। बिबिसार और निकट आ गया; पाली और खिसक आई और प्रेम-दृष्टि डालकर बोली—‘तुम्हें मुझमें विश्वास है तो कहो कि तुम कौन हो! मुझे कहो?...’ पालीका प्रश्न सुनते

ही बिंबिसारने अपनी दृष्टि फेर ली और धीरे धीरे बोला—‘मैं अभी नहीं कह सकता पाली !’

पाली भभक उठी; सहसा खड़ी हो गई । बिंबिसार भी उठा—उसे पालीकी आँखोंमें भीषण ग्लानि और स्वाभिमान दिखाई दे रहा था । ‘अतिथि, मैं लिच्छवी हूँ ! आम्रपाली लिच्छवी अपने नामपर कलङ्क नहीं लगाएगी ! तुम पूछते मुझे तुमपर विश्वास है या नहीं ? तो सुनो मुझे तुम पर विश्वास नहीं है...’ इतना कहकर वह तेजीसे चली गई । उसका मन खंड खंड हो रहा था—उसे लग रहा था कि वह स्वयं आविश्वासकी पात्र है !

किर्कतव्यविमूढ़ बिंबिसार उसकी ओर देख रहा था; उसका हृदय तीव्र वेदनासे छटपटा रहा था । पाली, पीछे देखे बिना ही, अपने शयनगृहकी ओर चली गई, उसकी आँखोंमें आँसू थे ।

[१४]

सुधीरकी आँखोंसे आँसू बहे जा रहे थे । एक छोटीसी मित्रमंडली उसके पास खड़ी हुई खिलखिलाकर हँस रही थी । दो चार युवकोंके हाथमें सदाके व्यसनवश मदिराके प्याले भूम रहे थे । कईके हाथोंमें मिठाइयोंके टुकड़े भी थे ।...उनमें से बहुतसे तो उसीके समान प्रेमके पीछे पागल थे । कोई कोई समझदार बनकर सुधीरके साथ ‘मीठा’ विनोद कर रहा था । इस विनोदका एकमात्र आधार पाली थी । वैशालीके ठीक बीचमें परगगृह^x था । और उसके सप्तखंड प्रासादके सातवें खंडमें संस्थाध्यक्ष^० के पुत्र शौनकने इस मंडलीको एकत्रित किया था ! स्वयं विवाहित होते हुए भी, उसका मन पाली के लिए हर समय ऊँचा नीचा हुआ करता था । उसे पालीकी बातें सुनना बहुत सुहाता था । उसे मालूम था कि पालीके पीछे पागल होने वालोंमें सुधीरसे अधिक कोई नहीं है । इसीलिए उसने सुधीरके साथ मित्रताका सम्बन्ध जोड़ा, और थोड़े ही समयमें उसका अभिन्न मित्र बन बैठा । सुधीर सदा ही पाली की बातें करता और शौनक उससे सन्तुष्ट होता था ।

× पक्की ईंटोंसे बँधा हुआ एक बड़ा बाजार जिसके चारों ओर दुकानें थीं ।

* व्यापार व्यवसायका अध्यक्ष.

आज सुधीरने नहीं, उसके दूसरे मित्रोंने पालीकी बातोंका श्रीगणेश किया। एकने सुधीरके प्रेमकी मिथ्या आलोचना की। तब क्या था? दूसरेने झट सुधीरका पक्ष लिया, तीसरेने उसमें सुधार किया। कौशिक और गोविन्द नामक दो विनोदी युवक, सुधीरको पानी चढ़ानेके लिए श्लेषपूर्ण वाक्य बोलने लगे। एक मण्डन कर रहा था। दूसरा खंडन। विवादका रूप चरम सीमा पर पहुँच चुका था। सुधीरका हृदय अपने स्थान पर नहीं रहा। उसके मस्तिष्कमें मदिराका नशा पूरी तरह चढ़ गया था; वह जी खोलकर अपनी और पालीकी बातें करने लगा। बात करते करते वह स्वयं ही अपनी मूर्खता पर धीरे धीरे हँसने लगा।... इतना हँसा कि आँखोंसे आँसू बहने लगे! वे युवक मित्रगण इतनी सी बातसे संतोष मानने वाले न थे। वे सुधीरको और अधिक बढ़ावा देने लगे। गोविन्द सम्पूर्ण मद्यपात्रको एक साथ पीकर बोला—

‘यह सब तो सच है, पर सुधीर, उस दिन संथागारके पास तू पालीके रथके आगे ही क्यों न सो गया? पाली अपने आप रुक जाती!’

‘तू भी मूर्ख ही है गोविन्द...’ कौशिकने अग्निमें घी डाला—‘अरे, पालीके रथ तक पहुँचते पहुँचते तो यह बेसुध हो जाता है तब उससे बातें कौन करे? हाँ, मुझे साथ ले जाय तो कुछ अड़चन न हो! इसके बेसुध हो जाने पर मैं उससे वार्तालाप करूँगा... इतना मित्रधर्म निबाहनेके लिए मैं अभीसे तैयार हूँ!’... कहते कहते उसने मदिराका प्याला मुँहसे लगाया और सबके सब एक साथ हँस पड़े। गोविन्द पर मदिराका गहरा प्रभाव है ता जा रहा था। कृत्रिम क्रोध दिखाकर वह बोला—‘याने परिश्रम सुधीर करे, बेहोश सुधीर हो, और पालीके साथ प्रेमालाप करके उसका मन तू जीत ले? यह कभी हो सकता है!’

...‘अबे गोविन्द, तुझे तो विनोद सृष्ट रहा है पर उधर तो सुधीरका कलेजा कटा जा रहा है!’ किसीने चेतावनी दी।

‘इसका कलेजा कटा जा रहा है और इधर क्या हो रहा होगा? तेरा हाथ मेरे हृदय पर रख और देख यह हृदयकी धुक धुक—पाली, पाली, मेरी

ली—कह रहा है या नहीं?...’ मदिराके नशे में गोविन्दकी सुध खोई जा
 । थी । मनकी छुपी हुई बातें बाहर आने लगीं । गोविन्दके मुख और
 झुंखलताने पास खड़े हुए मद्य-निषेधक युवकोंको भी प्रभावित कर लिया था ।

‘पालीके बारेमें और आगे न बढ़ वह मेरी सम्बन्धी होती है !’

‘अरे, सुनक्षेत्र ! तेरी सम्बन्धी होती है, बहिन होती है इसलिए उससे
 शाह ही न करेगा ?’ शौनकने हँसते हँसते पूछा ।

गोविन्दने जवाबमें पूछा—‘किसकी बहन विवाह नहीं करेगी ?’

‘मूर्खराज’ कौशिकने सुनक्षेत्रसे कहा—‘बनावटी बहन के लिए दस
 ानी आ जाती है !’

‘हाँ, हाँ !’ गोविन्द स्वेच्छापूर्वक बड़बड़ाने लगा—‘पहली मैंगनी मेरी !’

‘अरे, पहिली मैंगनी सुधीरकी ही रहेगी !’ एकने कहा ।

‘सुधीरके दूधके दाँत भी न आये होंगे तबसे यह गोविन्द पालीको देखता
 या है ?...’ गोविन्दने छोटी छोटी मूर्खों पर बट देकर कहा—

‘पहली मैंगनी मेरी है !’

‘यह क्या किसी मागधीकी सम्पत्ति समझ ली है कि जिसकी पहली
 छे पड़े वही उसका स्वामी हो जाय ?...’ कौशिकने कहा ।

‘कौशिक, किसीका भी पालीसे विवाह करना आकाश पाताल एक करना
 !’ गोविन्दने पुनः अपनी अस्थिर अँगुलियाँ मूर्खों पर फेरते हुए कहा ।...

उसी समय ‘किसने कहा ?’ ‘कैसे ?’ ‘तुम्हें क्या सचमुच मदिराका नशा
 है गोविन्द ?’ ‘सबबोल ?’ एक साथ, सब युवकोंके मुँहसे अलग अलग
 इंगार निकल पड़े । पालीका विवाह नहीं हो सकेगा, इस बातसे सब प्रेमी
 चानक चौंक पड़े ।

‘किसलिए ?’ सबोंके शांत हो जानेके बाद शौनकने पूछा ।

‘किसलिए ?’ गोविन्दने आँखें फाड़कर शौनकसे पूछा, और कहने लगने-
 सलिए कि मैंने कल ही पालीके साथ विवाह कर लिया है !’

‘ऐं !...’ जैसे सबोंके कंठमेंसे प्राण निकल गया ।

‘हाँ, हाँ, कल मध्य रात्रिको मैंने पालीके साथ विवाह किया है !’

‘कहाँ ?’ एकने रोते रोते पूछा ।

‘मेरे ही घरमें !...विवाहके बाद पाली वाराणसीके सुन्दर वेश बस्त्रोंसे सबकर मेरे शयनगृहमें आई...’

सुनने वालोंकी साँसें रुक गई । गोविन्द कहता गया—‘स्वर्णके रत्न जटित आभूषण पहिनकर, शचीको लजानेवाली रूपराशि धिक्करती हुई पत्नी मेरी शय्यापर बैठ गई...’

रोने वाले युवकके मुँहसे अचानक एक कँपकँपी निकल गई ।

‘धीरे धीरे मैं पालीके पास बैठ गया...’

पुनः सुनने वालोंके हृदय जोरोंसे धड़कने लगे । मदिरोग्रत गोविन्द, स्वेच्छापूर्वक बोलता ही गया—‘तब मैंने पालीके हाथ पकड़े, उसे बाहुपाशमें ली और...’

‘नहीं, नहीं...’ रोने वाला युवक जोरोंसे चिल्ला उठा ।

‘शांत, शांत, भट्टी !...’ सुनक्षत्र बोला ।

‘फिर क्या हुआ गोविन्द, फिर...?’

‘फिर ?’ गोविन्दने खिलखिलाकर हँसा और बोला—‘मित्र, फिर जो कुछ होना चाहिए था वही हुआ ! मैंने उसके अधरामृतका पान किया और...’

‘चुप रह, चंडाल ! चुप !!’ सारा परगमृह काँप गया; सुधीर कड़क उठ्य और कूदकर उसने गोविन्दका गला दबा दिया; फिर उसने गोविन्दको बुरी तरह पीटना शुरू किया; पालीके पीछे पागल दूसरे युवक भी गोविन्दपर टूट पड़े । क्रोधमें पागल सुधीरने अधमरे गोविन्दको भटकेसे खड़ा किया और दाँत जोरोंसे फिटफिटकर पूछा—‘विवाह कहाँपर हुआ ? महानाम सिंहराजके प्रासादमें ?...’

‘नहीं, मेरे घरमें !’

‘पाली कहाँ है ?’

‘मुझे नहीं मालूम !’

‘नीच, पामर ! कल रातको तो विवाह किया और तेरी पत्नी कहाँ है यह तुझे नहीं मालूम ? सच सच बता गोविन्द ?’

‘मेरी तो सुनता ही नहीं !’ कठिनतासे साँस लेकर गोविन्द बोला — ‘मैंने उसके अधरामृतका पान किया और तब ही मेरी आँखें खुल गई ! मुझे तभी मालूम हुआ कि यह तो सपना था ! उसके बाद मैं पालीके विरह में विलसित होकर चिल्लाने लगा और बेहोश हो गया !...’

इतना कहकर गोविन्द धराशायी हो गया; वह सचमुच बेसुध हो गया था। किन्तु बेसुध गोविन्दपर भी सुधीरका क्रोध कम नहीं हुआ—गोविन्दने स्वप्नमें भी पालीसे विवाह क्यों किया ? यह बात सुधीर सहन नहीं कर सका। मद्भ्रममें बेसुध गोविन्दको भी उसने दो चार लात घूसे लगा ही दिये। उसका हृदय जल रहा था। महीनोंसे पालीका निरंतर ध्यान करते रहने पर भी, एक रातको भी एक क्षणके लिए भी पाली उसके स्वप्नमें नहीं आई थी !

थोड़े ही समयमें, शौनकके उपचारसे गोविन्द सुधमें आया ! मित्रोंकी जरा सी बात कहनेमें, सुधीरके इस क्रूर व्यवहारके कारण उसे तीव्र क्रोध आया। पूर्ण स्वस्थ होनेपर वह सुधीरके पास आया। शौनक, दोनों फिर न लड़ पड़े इसलिए सावधान था। सुधीरके पास आकर गोविन्दने गम्भीर स्वरसे कहा—‘ये सब लोग हमपर हँसते हैं, मैं भी उन लोगोंके साथ हँसता था, पर अब नहीं हँसता। तुझे ही मार डालनेसे यदि मुझे पाली मिलती हो, तो मैं तुझे यहाँसे जीवित नहीं जाने देता ! इसलिए आगेके लिए एक ही बातका ध्यान रखना कि पालीपर तेरा हाथ लगनेके पहिले ही इस अर्किचन गोविन्दका हाथ लग चुका होगा !’ इतना कहकर गोविन्द वहाँसे चला गया। कोई नहीं बोला। केवल वह रोने वाला चीख उठा था—पाली मेरी है, पाली मेरी है, मेरी है...’ कहता हुआ वह भी गोविन्दके पीछे पीछे भाग गया।

दूसरे दिन लिच्छवि-नगरीमें श्रावणी अष्टमीका त्यौहार था। महा-
उद्यानसे थोड़ी ही दूर लिच्छवी युपकोंकी बाढ़ सी आ गई थी। देहमें मले
हुए सुगंधित तैल, गंध, मंदार पुष्पकी मालाएं, स्त्रियोंकी अँगुलियोंमें महकती
हुई मेहदी और कुम्कुम् सारे वातावरणको विचित्र स्फूर्तिमय बना रहे थे।
विवाहित और अविवाहित युवतियोंकी उपस्थितिने रसिक युवकोंको विचित्र
उत्तेजनासे परिपूरित कर दिया था। और साथ साथ आज युवकोंकी बल
परीक्षाका दिन था, तब शेष क्या रह जाय ?

महोत्सवका प्रारम्भ धनुर्विद्याके प्रयोगोंसे हुआ। प्रत्येक युवक अपनी
शक्ति और कला दिखानेके लिए आतुर हो रहा था। प्रायः प्रत्येक प्रयोगकर्ता
के प्रयोग अचूक सिद्ध हुए; उनमें भी लगभग सौ युवक तो प्रशंसाकी सीमा
लौंघ गये। जैसे एक ही तीरसे, एक ही श्वासमें, एक हाथसे धनुष पकड़ा हो
उस तरह एक जैसे और एक साथ वे लोग लक्ष्यभेदन करते थे। इन सौ
युवकोंमें सुधीर और गोविन्द भी थे। विनोदशील कौशिक, सुधीर और गोविं-
दके बीच होली सुलगानेका बहाना ढूँढ़ रहा था। पालीके विषयमें भगड़ेका
अंत करनेके लिए उसने दोनोंसे एक निवेदन किया। ...एक बटवृक्षके ऊपर
एक बाँस रखा था, उसपर एक बनावटी सिंह, विशिष्ट ढंगसे रख दिया गया—
दो सौ कदम दूरसे उस सिंहको छेद देनेवालेसे पालीका विवाह किया जायगा।
कौशिकके इस निवेदनने कुछ दूसरा ही रूप धारण कर लिया। धीरे धीरे सब
युवकोंको यह बात मालूम हो गई। एकके बाद एक उन सब युवकोंने सिंहको
छेद दिया। उसके बाद दूसरी प्रतियोगिताएँ भी प्रारम्भ हुईं। ये सब पालीको
पानेके लिए तैयार थे। सात प्रतियोगिताएँ होते होते सौंभ हो गई और उत्सव
समाप्त हो गया। पालीको पानेकी चढ़ा-ओढ़में कोई किसीको हरा न सका।
इस साधारण विनोदने गंभीर स्वरूप धारण कर लिया। ये सौ युवक अग्रगण्य
लिच्छवी कुटुम्बोंमेंसे थे और इन सबोंकी जिह्वापर पालीका ही नाम था।

सबसे दुरी दशा सुधीरकी थी। यद्यपि वह इन सौ युवकोंकी तुलनामें
आगे न था तब भी सबसे अधिक कठिन परिश्रम सुधीरने ही किया था।

जब रातके प्रथम प्रहरमें उसने मधुशालामें पैर रखा, तब वह बहुत थक चुका था। पहिला घूँट पीते ही उसने निश्चय कर लिया कि पालीसे विवाह करनेवालेको मार डालना होगा। इतनेमें कौशिकने जल्दी जल्दी उसका कंधा भरभोर कर कहा—‘मूर्खराज, तू यहाँ बैठा है और शौनकके प्रासादमें वे सौ युवक तेरी पालीके लिए कोई असाधारण निर्णय करनेको एकत्रित हुए हैं!’

‘असाधारण निर्णयका मतलब ?

‘पालीका बँटवारा करनेके लिए वे सब गुप्त सभा कर रहे हैं, उसमें निर्णय होगा कि पालीसे विवाह कौन करेगा !’

प्रयुत्तरमें सिर नीवा करके सुग्रीने आवश्यक मदिरा पी और जानेके लिए उठ खड़ा हुआ।

शौनकके सातवें खंडमें पैर रखते ही सुधीर रुक गया। सौ ही युवक शस्त्र हाथमें लेकर, पालीके लिए एक दूसरेको काट डालनेके लिए तैयार हो गये थे। बेचारा शौनक इधरसे उधर दौड़कर उन्हें शांत करनेका प्रयत्न कर रहा था। वैशालीके सभी अग्रगण्य युवक वहाँ एकत्रित थे। सभी युवकोंने पालीके लिए मरने अथवा मारनेकी हठ ठान ली थी, और उन सबोंके बीचमें सुधीरका कट्टर शत्रु गोविंद बैठा। पीठ घुमाकर सुग्रीने देखा कि वह रोने-वाला युवक पागलकी तरह, निसैनीके कोनेपर हँसता हुआ खड़ा था। मदिराके नशेमें मद-माता होकर सुधीर क्रोधसे भी पागल होने लगा। उसने हाथमें लेकर एक छोटी सी कृपाण म्यानसे निकाली, और सभाके बीचोबीच खड़ा होकर आँखे निकालता हुआ कड़ने लगा—‘तुममेंसे जिस किसीको पालीसे विवाह करना हो, वह पहिले मेरे सामने आ जाय और तलवार लेकर द्वन्द्व-युद्ध करे, जो जीतेगा वही पालीसे ब्याह करेगा। मैं प्रवेणीगुप्तक की शपथ लेकर कहता हूँ कि पालीसे विवाह करनेवालेको मैं मार डालूँगा !’

प्रवेणीगुप्तक की सौगंधके कारण सारी सभामें सनसनी फैल गई। मौ मेंसे कोई भी तिलभर हटने वाला न था। गोविंद खड़ा हो गया; और सभा-पतिसे कहा—‘यदि सभा स्वीकार करे तो अभी ही इस बातका फैसला हो जाय; पालीसे विवाह करनेवालेको मैं स्वयं जीवित नहीं छोड़ सकता !’

गोविन्दका वाक्य पूरा होनेके पहले ही सुधीर कृपाण लेकर उसकी ओर भागटा; गोविन्द एक झटकेमें अपनी तलवार निकालते निकालते रुक गया ।... उस रोने वाले युवकने म्यानबद्ध तलवार दूरसे फेंककर सुधीरकी तलवारको हवामें उड़ा दिया था । रुदनमूर्ति भट्टी सहसा खिल खिलाकर हँस पड़ा और सिर हिलाता हुआ चला गया । सबोंको शांत देखकर शौनकने बोलना प्रारंभ किया—
‘पालीका अंतिम निर्णय तलवारसे नहीं, बुद्धिसे करना होगा !’

‘सच बात है, और बुद्धि भी काम न आये तो प्रवेणी-पुस्तक और संथागार है ही ! पाली तलवारसे प्राप्त नहीं की जा सकती !’ किसी परिचित मनुष्यका उपर्युक्त वक्तव्य सबोंने सुना । सबोंने पीछा देखा चिरंजीव सामने खड़ा था; चिरंजीवको देखते ही सुधीर शांत होने लगा । दस दिन पहले, घर जानेका वचन देकर छुप जानेके कारण सुधीर अपराधीनी तरह खड़ा था; चिरंजीव आज ही अपने गाँवसे वैशाखी आया था । वह संथागारमें बैठने वाला लिच्छवी युवक था । युवकोंकी गुप्त सभा देवार उसे सुधीरको बचाने का एक सुंदर अवसर मिला । उन एकत्रित युवकोंकी मूर्खता पर उसे बहुत क्रोध हुआ । स्वयं विचारक होनेके कारण उसने युवकोंकी नाडी परख ली थी । एक बार चारों ओर दृष्टि डालकर वह सभाको सम्बोधन कर करने लगा—

‘वीर लिच्छवी राजकुमारों और युवकों ! मैं इस सभाके सम्मुख एक ही विनती करने आया हूँ । यह पापमें खड़ा हुआ सुधीर मेरा मित्र है । आज, यह मुक्तसे ही नहीं बल्कि हमारे गाँवसे, हमारे कुटुम्ब और स्नेह सम्बन्धियोंसे झूटकर यहाँ घूँपता रहता है ! देखिये इसका मुखारविंद, ठीक ठीक देख लीजिए ! चार महीने पहले हमारे गाँवमें वीरता और स्फूर्तिमें इसकी जोड़का कोई युवक न था; मुझे अभी भी विश्वास है कि इस सभामें भी शस्त्रनिपुणता और निर्भयतामें सुधीरसे अधिक सिद्धहस्त युवक कोई नहीं है ! फिर भी यह बात आप निश्चित समझना कि इस सभाका कोई भी युवक इसे मार डालनेमें समर्थ हो सकेगा ! कारण जानते हैं ? मित्रों यौवन पुनः मिल सकता है, सुख पुनः मिल सकता है, और सम्पत्ति भी पुनः प्राप्त की जा सकती है पर एक बार गँवाई हुई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त नहीं की जा सकती !’

‘यहाँ, लिच्छवियोंके पच्चीस राजकुमार और पचहत्तर, वैशालीके

रणवीर लिच्छवी युवक एक स्त्रीके लिए एक दूसरेको काट डालनेके उन्मादमें उन्मत्त हैं। मैं सभाके सम्मुख यह प्रश्न रखता हूँ—वैशालीके भावी देशाक्षकों, तुम्हारे ऐसे कृत्योंसे लिच्छवियोंकी प्रतिष्ठा रहेगी या जायगी ? मेरा मित्र एक स्त्रीके लिए वीरताके स्थान पर पशुता ग्रहण कर रहा है; और आज जो दशा इसकी है, वही कल तुम्हारी होगी ! मैं पुनः प्रश्न करता हूँ—युवकों ! जो स्त्री माताको पुत्रसे अलग करती है, पुत्रको पिताकी अवज्ञा करना सिखाती है, मित्रकी, मित्रके द्वारा हत्या कराती है, और जिसके लिए एक भाई दूसरे भाईको काट डालनेको तैयार हो जाता हो—वह स्त्री, किसी लिच्छवीकी पत्नी होने योग्य है ?

सभा निस्तब्ध बनी रही। किसीने उत्तर न दिया। सभाको प्रभावित करनेके बाद चिरंजीव पुनः आवेशमें बोलने लगा—‘उत्तर दोगे लिच्छवीकुमारों ? वैशालीको पालीकी आवश्यकता है या यौवन सम्पन्न युवकोंकी ? प्रश्न करता हूँ, युवकों ! पालीको ब्याहने वाला कब तक जीवित रहेगा ? पालीको ब्याहना चाहिए ? उत्तर दो !

एक सम्मिलित स्वर सुनाई दिया—‘पाली किसी एककी कदापि नहीं हो सकती !’

‘तब ? चिल्लाकर चिरंजीवने पूछा।

‘पाली सबोंकी होगी !’ दूरसे आवाज आई।

पुनः सबोंके मुँह मुख्यद्वारकी ओर घूमे—सबोंने वैशालीके संरक्षक और भक्षक अभयको अपने सदैवके विषमय स्मितके साथ खड़ा हुआ देखा। वह बोला—‘पालीको अपने कौमार्थ्यका बलिदान करना होगा ! पाली, एक लिच्छवीकी नहीं, समस्त वैशालीकी होगी’...

सारी सभा वयोवृद्ध अभयको मान देनेके लिए खड़ी हो गई और कुछ समय बाद सब, अपने अपने स्थान पर बैठ गये।... ‘पाली सबोंकी बनेगी’ यह बात सुनकर सुधीर पुनः सुधबुध खो बैठा; वह कूदकर अभयसे भिड़ गया ! ठीक हुआ कि चिरंजीवने स्फूर्तिपूर्वक सुधीरको दूर हटा दिया, नहीं तो अभयराजकी गर्दन ही मुड़ गई होती। जरा भी क्रोधित न होकर अभयने सभाकी गड़बड़ीको शांत किया और मुस्कराकर, धरती पर लोटते हुए सुधीर-

की ओर देखकर बोला—‘मूर्ख, लड़का !’ ठीक इसी समय, पालीके पीछे पागल होजानेवाले रुदनमूर्ति भट्टीका भीषण अट्टहास सुनाई दिया । दो युवक उसे पकड़े हुए थे । उसके लिए भी, अभयने पुनः वे ही शब्द उपभुक्त किये—‘मूर्ख लड़का ...!’

इसके बाद, स्तब्ध सभाके बीच खड़े होकर सदैवकी विषमय मुस्कानसे जैसे कुछ भी न हुआ हो उस शांतिसे अभय कहने लगा—

‘चिरंजीवने जो कुछ कहा, वही आज प्रत्येक समझदार लिच्छवी दूसरे लिच्छवीसे कहता है ! यदि सभा आज्ञा दे और इच्छा प्रदर्शित करे तो मैं पालीके बारेमें दो शब्द आप लोगोंसे कहूँ !’

तत्क्षण सारी सभा, ये दो शब्द सुननेके लिए उद्यत हो गई; और पालीका भीषण भविष्य इस सभामें निर्मित होने लगा ।

[५५]

‘पर अचानक कल ही वैशाली चल जानेका कारण क्या है ?’

‘मेरी इच्छा !’

‘किंतु दो दिन रहकर जायँ...’

‘ना, कल ही जाना होगा !’ पालीने संक्षिप्त और दृढ़ उत्तर विनोदी आनन्दको कह सुनाया । वृद्ध अभिराम एक ताड़पत्र देखनेमें तल्लीन था; भाई बहिनकी झकझकसे ऊबकर उसने ताड़पत्र एक ओर रख कर कहा—‘अरी, बाहरी लड़की ! कल ही जब जानेकी बात निकली तब तो साफ ‘ना’ कर दी, और आज सब लोग इन्कार कर रहे हैं तो तू जानेको तैयार हो गई ? किसलिए जानेका निश्चय कर बैठी, इसका कुछ झूठ सच तो होगा ! क्या बात है बेटी...?’

‘कुछ नहीं, दादा !’ पालीने पूर्ववत् क्रोधसे कहा ।

‘तुम भी क्या बात करते हो दादा ! किसी दिन भी पाली सकारण क्रोधित हुई है, जो आज उसके क्रोधका कारण पूछ रहे हो ?’

‘यों ही कहिये न भाई साहब, कि मैं पगली हूँ...हाँ पगली हूँ बस ! अब तो न मुझे खिजाओ ! मैं जाऊँगी, और कल सबेरे ही...!’ उद्ध्विग्न पाली बोल उठी ।

‘पर...’ अभिराम पालीको शांत करनेके लिए कहने लगा— ‘तू पचास से अधिक लड़कियोंको कलके लिए आमंत्रण दे आई है ! तुम सबोंको लेकर वह गिरजा ब्राह्मणी... भूल गया, कहाँ ले जायगी बेटी...!’

‘मीनाक्षीके मंदिरमें...’ मुँह घुमाये बिना ही पालीने उत्तर दिया ‘हाँ, हाँ...उस पर्वतवाली मीनाक्षीके मंदिरमें ले जाएगी, आजसे ही लड़कियाँ भोजन, नृत्य और कई तरहकी वनक्रीड़ाओंकी कल्पनामें उत्साहित होकर गाँवमें घूम रही हैं, और तू .’

‘रहने दो दादा ! स्त्रियोंको, वचन देकर बदल जानेमें कोई दोष नहीं लगता; इसलिए कल ही पालीके चले जानेमें कोई बुराई नहीं है!...’

‘वचन देकर विश्वासघात करनेमें स्त्री अधिक निपुण है या पुरुष, यह तो ईश्वर ही जानता है, मैं इस विषयमें वादविवाद करना भी नहीं चाहती...मुझे कल ले जाओगे या नहीं ?...’

‘दादा, अपनी इस बुद्धिमान और विश्वासमयी प्यारी बेटीको क्या उत्तर देना चाहिए यह तुम ही जानो; मुझमें इतनी समझ नहीं है !...’

‘याने कल मुझे ले जाना नहीं चाहते यही न ?’

‘कैसे भी हों, नटराज हमारे अतिथि हैं, वे कल ही चले जानेको कह रहे हैं ! हमारा कर्तव्य क्या है दादा; उनके जानेके बाद ही मुझे, जजमानके घरसे निकालना चाहिए न ?...’

‘अतिथि कोई चक्रवर्ती सम्राट तो नहीं है, जो उसकी इच्छानुसार व्यवहार किया जाए ! आज्ञा दो कि आज, अभी इसी समय यहाँसे चला जाए ...!’

‘दादा, एक लिच्छवी कन्या, एक लिच्छवी युवकको अपने कर्तव्यसे विमुख करना चाहती है ! मुझे बचाओ दादा, मैं धर्म-संकटमें हूँ !...’

‘मेरी भूल हुई ...’ पाली बोल उठी—‘भाई साहब, अपने उस अतिथिको सिर पर चढ़ाकर पूजिए और यहाँ नंदीग्राममें ही पड़े रहिए ! देखना, कहीं वैशाली न पहुँच जाना, नहीं तो कर्तव्यच्युत हो जाओगे ! दादा, मालूम होता है रथ भी आगे नहीं बढ़ सकेगा, क्यों ? और घोड़ोंको

चरनेके लिए छोड़ दिया गया है, इसलिए सारे गाँवके कहीं भी वाहन नहीं, मिलना दुर्लभ है; सच है न ? मैं जानती हूँ !...कोई बात नहीं, मैं पैदल ही बैशाली पहुँच जाऊँगी !....’

‘सुन लिया दादा ! सिंहराज महानामकी इकलौती बेटी, पैदल जाएगी तो कलंक तो मुझे ही लगेगा न ! नहीं बाबा, अपने राम तो इस बातमें राज़ी नहीं !’

‘...भैया’ पालीने रोष भरे स्वरमें कहा—‘मैं कल सुबह चली जाऊँगी...’

इतना कहकर, तीव्र वेगसे, पाली किसीके भी उत्तरसे निरपेक्ष होकर बहाँसे चली गई । आनन्द पालीको देखता रह गया; उसे शंका हुई कि पाली की आँखोंमें आँसू भी थे ! अभिराम पालीको देखे बिना ही विश्वास कर चुका था कि पालीकी आँखें आँसुओंसे उमड़ रही हैं !

‘अचानक दोनोंमें क्या बात हो गई दादा ?’ पालीके चले जानेके बाद आनन्दने धीमे स्वरमें अभिरामसे पूछा ।

‘मेरा सिर !...’ ताड़पत्र एक ओर रखकर अभिराम बोल उठा—

‘आज सबेरे तुझसे क्या कहा था ? कल सुबह क्या कहा था ? प्रति-दिन सुबह शाम क्या कहा करता हूँ ? पर तू भी तो पालीका भाई ही है न ! अतिथिसे पूछा क्यों नहीं कि वह कहाँका राजकुमार है ? अभी ही इस लड़की की समझ ठीक कर सकता हूँ !...पर न तो तू ही यह बात पूछता है, और न मुझे ही पूछने देता है !...’

‘पर दादा, दोनोंमें तो...’

‘हाँ, बाबा हाँ ! दोनोंमें झगड़ा हो गया है, होना ही चाहिए ! नहीं तो पुनः और अधिक प्रेमसे कैसे मिला जा सकता है ? निस्सीम प्रेमको सीमित करनेके लिए परस्पर एक दूसरेके लिए आँसू क्यों बहाये जायँ ?...बेटा ये सब बहाने हैं...कुछ, क्रोध, कुछ अनबन, कुछ बहानेभरा क्रोध या रोष, ये सब दोनोंको मिलानेके आवश्यक साधन हैं ! मेरे लिए यह बात कुछ नई नहीं है; तेरे पिताको भी मैंने ऐसे ही झगड़ते हुए देखा है, तेरे काका और मामाको भी !...पर अब ज़रा सोच समझ कर सुन—अतिथि राज-

कुमार है, इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है ! तेरा भी विश्वास है कि वह सर्वगुण सम्पन्न है, और वेदांतीको भी सन्देह नहीं कि उसके लिए चक्रवर्ती सम्राट् बननेका योग है ! तब फिर विलम्ब किस बातका ? उसे बुलाओ, हम अभी पूछे लेते हैं ! महानामको मैं समझा दूँगा ! चल उठ, एक दूसरेके लिए व्याकुल बने हुए इन दोनोंका निर्णय कर दें ! फिर तुम तुम्हारे रास्ते हो और मैं मेरे—!’

इतना कहकर अभिराम उठ खड़ा हुआ, और आनन्दका हाथ पकड़कर खींचता हुआ बिबिसारके कक्षमें आ पहुँचा ।...

पर वहाँ तो मध्याह्नकी धूपमें तपकर दूरसे आया हुआ, शुष्क-मुख ब्रह्मदत्तके सामने खड़ा था; आनन्द उसे घूर घूर कर देखने लगा । अभिरामने कोई सहायक नट समझकर ब्रह्मदत्तसे पूछा—‘नटराज कहाँ हैं ?’

एक प्रकारका कंपन ब्रह्मदत्तके सूखे ओठोंको हिलाने लगा, उसका मुँह बन्द हो गया । कुछ देर बाद एकाएक हँस पड़ा और बोला ‘यँ...यँ...यँ .. यों...यहाँ...हाँ...’

अभिराम और आनन्द विस्फारित नेत्रोंसे ब्रह्मदत्तको देखने लगे । गूँगे का अभिनय करते हुए ब्रह्मदत्तने हाथ और आँखके संकेतोंसे उन्हें समझाया कि बिबिसार कहीं बाहर गया है, थोड़ी देरमें आयेगा । इस नई मूर्तिको अभिराम कौतूहलपूर्वक देखने लगा ।

इस डरसे कि कहीं बात-चीत करनेमें पकड़ा न जाय, ब्रह्मदत्तको उसी समय गूँगे बननेकी युक्ति सूझ गई थी । अभिराम उसे यों ही छोड़नेवाला न था, उसने कुछ सोचकर आनन्दका हाथ पकड़ा और एक रेश्माच्छादिन आसनपर जा बैठा । ब्रह्मदत्तके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ने लगीं ! बिबिसार प्रासाद में तो क्या नन्दीग्राममें भी नहीं था !’

बिबिसार तेजीसे दौड़कर गङ्गातटकी टेकरी तक आ पहुँचा था । उसकी दृष्टि तटके उस पार जा पहुँची, देखते ही उसका मन बैठने लगा । जो दृश्य उसने देखा, उसे देखकर वह काँप गया । घोड़ेसे उछलकर वह नीचे आया, और चीखकर तटके उस ओरके वटवृक्षकी ओर दौड़ा ।

बटवृक्षके नीचे, राजगृहके वृद्ध महामात्य रक्तसे लथपथ होकर पड़े थे; उनकी दाहिनी भुजा कटकर दूर पड़ी हुई थी। संजय और दूसरे योद्धा महामात्यके आस-पास खड़े थे, उनके शरीर रक्तकी बूंदोंसे छिंट गये थे। संजय, महामात्यके आहत कंधेसे रक्तस्राव रोकनेकी व्यर्थ चेष्टा कर रहा था।

‘यह किस दुष्टकी करतूत है ? कौन है वह दैत्य ?’ बिंबिसारने, आहत महामात्यके पास बैठते हुए चीखकर पूछा।

‘कोई भी नहीं महाराज, कोई नहीं !.. महामात्यने उत्तर दिया।

मरते समय भी धैर्यमय महामात्यको हँसते देखकर बिंबिसारका वक्ष फटने लगा। गरजकर वह बोल उठा—

‘संजय, किस कापुरुषकी तलवारने महामात्यके कंधेको छुआ है ?...’

‘कापुरुष नहीं, महाराज, वीर कहिये, निर्भय कहिए ! एक निर्भय लिच्छवी युवककी तलवार इस वृद्ध सैनिकके कंधे पर लगी है।...’

‘लिच्छवी...’ बिंबिसारने दाँत भींचकर कहा—‘पितृ तुल्य महामात्य ! इस चमकते सूर्यके शपथ लेकर कहता हूँ कि...’

‘महाराज...’ महामात्य, बिंबिसारको रोकनेके लिए, सिर उठाकर चीख पड़े,—‘शांत हों, महाराज ! मैं जो कहूँ वही शपथ लेनेकी प्रार्थना करता हूँ... मैं कहूँ वही...’

‘आपकी क्या इच्छा है, वयोवृद्ध ? मैं उसे मरकर भी पूर्ण करूँगा !’

‘मैं अपने वीरमूर्तिको कहाँ नहीं पहिचानता ?... मुझे आपके वचनोंमें अपने से भी अधिक विश्वास है। सबसे पहिले एक काम करनेकी कृपा कीजिए; मेरी मृत्यु निकट है। नदीके सामनेकी और वैशालीकी सीमा समाप्त होती है। मुझे वैशालीकी पृथ्वी पर सुला दीजिए ! संजय, मेरा कटा हुआ हाथ भी ले, ले। शीघ्रता कर !...’

बिंबिसारने, क्षणभर भी विलंब किए बिना, महामात्यके मना करते हुए भी उन्हें अपने हाथोंमें उठाया, और संजयकी सहायतासे, नदीके उस पार एक वृक्षके नीचे उन्हें लिटाया। उनकी शिराएँ टूटने लगी थीं। बिंबिसारके हाथको दृढ़तासे अपने हाथमें लेकर भीष्मपितामहकी तरह उन्होंने बोलना

प्रारम्भ किया—‘आजानबाहु ! मुझे शीघ्र ही सब कुछ बता देना चाहिए—
कुछ नासमझ लिच्छवियोंने, आशंकित होकर हमपर अचानक आक्रमण कर
दिया; सबसे प्रथम वार मैंने ही भेला, मेरा हाथ कट गया, किंतु मैंने सबको,
घातकोंका सामने करनेसे मना कर दिया । सभी मागधियोंके आवेशको मैंने
रोक दिया । जानते हैं, इसका परिणाम क्या हुआ ? सौ से भी अधिक एक
दूसरेको मार डालनेको तत्पर लिच्छवियों और मागधियोंका युद्ध रुक
गया । शत्रु मुझे देखकर, शत्रुता छोड़कर चले गये । लिच्छवियोंके सामने
सबसे पहिले मैं ही आया था महाराज ! क्योंकि मैं वैशालीका हूँ । जब मेरा
हाथ कटकर नीचे जा पड़ा तब आपके उस राजसंन्यासी मित्र गौतमबुद्धके
शब्द याद आये; उसमें मुझे सत्यता दिखाई दी । लिच्छवियों पर आक्रमण
न करनेमें ही मुझे उम सत्यका साक्षात्कार हुआ । वही सत्य सुन लें
महाराज ! लिच्छविगण वीर क्षत्रिय हैं; यदि आप उन पर शस्त्र न
उठाएँ तो वे भी नहीं उठाएँगे । प्रेम करें तो वे लोग भी प्रेम करेंगे । यदि
आद उनसे वर्षों पुरानी शत्रुता रखना छोड़ देंगे तो वे सम्पूर्ण रूपसे आपके
हो जाएँगे । महाराज, मेरे जीवनकी दो ही प्रमुख आकांक्षाएँ थीं—मृत्युसे
पहिले मागधियों और लिच्छवियोंको एकत्रित देखूँ, और दूसरी यह कि अपनी
इसी जन्मभूमिपर मेरे प्राण जाएँ ! दूसरी आकांक्षा तो अभी पूरी हो रही है,
पर पहली बात रह गई !... चमकते सूर्यकी, इस गंगाकी... इस वृद्धकी
प्रामाणिक सेवाकी शपथ लो, महाराज !—कि लिच्छवियोंको प्रेम द्वारा जीतने
का शक्तिभर प्रयास करेंगे !’...

महामात्यकी नेत्र-ज्योति डूबती देखकर बिंबिसार अपनी शक्ति एकत्रित
करके बोला—‘ वृद्ध, मैं वचन देता हूँ कि लिच्छवियोंको प्रेमसे जीतनेका
मैं सम्पूर्ण प्रयत्न करूँगा,... आपकी जन्मभूमिको अपनी बनाने, और मेरे
राज्यको लिच्छवियोंवा बनाने...’

किंतु बिंबिसारके वाक्य पूरा करनेके पहिले ही, बिंबिसारकी प्रतिज्ञाका
पूर्वार्ध सुनकर पुलकित वृद्ध महामात्यकी आत्मा परलोकके मार्गको प्रयाण
कर चुकी थी । द्रवित हृदयको बशीभूत करके बिंबिसारने वृद्धके सम्मानमें
पूज्य भावसे अग्ना सिर झुका दिया । एक हिचकी, चीख, थोड़ा कन्दन—

कुछ भी सुनाई नहीं दिया। पुण्यात्माके शब्दों और महाराजके अंतिम वचनने मागधियोंको संयमित खड़ा रहने दिया था, वे, आज्ञा और आज्ञा-पालनके महत्वको समझते थे। संजयने आँसुओंके बहाते हुए भी हृदयको कठोर बनाया; महामात्यकी वियुक्त भुजा और करवाल उनके पास रख दिये तब अन्य योद्धाओंको चिता तैयार करनेकी आज्ञा दी।

एक प्रहरमें ही अग्निदेवने महामात्यको भस्म कर दिया। चिताकी गगन-गामी ज्वालाओंमें बिंबिसार, वृद्धका सस्मित मुख देखता रहा। आँसूकी एक बूँद उसकी आँखोंसे टुलक गई। तब वह धीरे धीरे बोलने लगा—‘मैं लिच्छवियोंको जीतनेका शक्तिभर प्रयास करूँगा...’

संजय और अन्य योद्धा नतमस्तक खड़े थे। लौटनेमें अत्यधिक विलंब हो जानेका ध्यान आते ही बिंबिसारने एक बार अग्निशैयाको अंतिम नमस्कार दिया, संजयको तीन दिन बाद राजधानी लौट आनेका वचन दिया और घोड़े पर जा बैठा।

घोड़ा आम्रपालीके प्रासादकी ओर दौड़ा जा रहा था। वृद्धके ‘प्रेमसे जीतना’ इन शब्दोंने उसके हृदयमें एक नये उत्साहका संचार किया था; उसे इस बातसे नया मार्ग मिल गया था और इसीलिए वह शीघ्रता-पूर्वक प्रासादकी ओर दौड़ा जा रहा था।

प्रागःदो प्रहर तक अभिरामने गूँगे ब्रह्मदत्तके साथ सिरपच्ची की; नटराजके बारेमें, चुपकेसे, इस गूँगेके द्वारा सच्ची बातें जान लेनेका अभिरामने लाख प्रयत्न किया पर ब्राह्मण नहीं बोला तो नहीं ही। अंतमें थककर अभिराम, आनन्दको साथ लेकर वहाँ से चला गया। उसके जाते ही वहाँ बिंबिसारने प्रवेश किया। उसे देखते ही ब्रह्मदत्तकी तालुसे चिपकी जिह्वा कुछ हिली डुली तथा घबराहट और मानसिक दुविधासे व्यथित ब्रह्मदत्त निश्चेष्ट होकर बिंबिसारके पैरोंसे लिपट गया।

ब्रह्मदत्तको महानामकी मृत्युके समाचार सुनकर कुछ भी आश्चर्य न हुआ। जब वह संजयके पाससे आहत महामात्यके समाचार लेकर निकला था तभी उसे आभास हो चुका था कि महामात्यकी अंतिम घड़ियाँ गिनी जा

रही हैं; फिर भी ब्रह्मदत्त भावाविष्ट होकर कहीं कुछ कर न बैठे इसलिए बिबिसारने उसे शीघ्र ही वहाँ से जाने की आज्ञा दी और स्वयं एक आसनपर बैठकर गहन विचारोंमें निमग्न हो गया ।

उसी समय, आनन्दके शयनगृहमें, आशंकाओंके चक्रमें पड़कर आनन्द, अभिरामसे प्रश्नपर प्रश्न पूछे जा रहा था

‘जिस पुरुषके पास ऐसे मूर्ख मनुष्य भी हों, उसे कैसा समझना चाहिए ?’

‘महान धूर्त बेटा, यह नट ऐसा वैसा नहीं है, और राजा होगा, तब भी साधारण नहीं होगा !’

‘मुझे शंका हो रही है दादा, मैं बहुत आशंकित हो रहा हूँ !’

‘होगा, आशंकित क्यों न होगा ? तू मनुष्योंको पहिचानना कब सीखेगा आनन्द ?’

‘दादा, यह कोई रहस्यमय राजदूत मालूम होता है !’

‘क्यों न हो ?’

‘कोई भेदिया है’

‘होने दे !’

‘दादा मैं विनोद नहीं कर रहा हूँ; इसे शीघ्र निकाल देना चाहिए, यदि यह अपना मेद नहीं खोले तो !’

‘तब ही न ?.. ठीक, यदि यह शुद्ध और निःस्वार्थ प्रेमी होगा तो तेरे दुःखे दुःखे कर डालनेपर भी यहाँसे नहीं हटेगा !’

‘दादा मैं, सचमुच भयभीत हो रहा हूँ, पालीमें कल्पनातीत परिवर्तन दिखाई देता है ! कहाँ यह नंदीग्रामकी पाली और कहाँ वह वैशालीकी पाली थी ! दादा, सूर्य चन्द्रमा बन गया, और भाग पानी हो गया !...यह परदेशी विचित्र है.. !’

‘परदेशी, सचमुच अद्भुत है, नहीं तो तुम्हीं सब लोग मानते थे कि पालीके मनको मनाना, हिमालयको पिघलाने जैसा असम्भव है !’

‘परदेशीका स्थान ज्ञात होनेपर ही दूसरी बात की जा सकती है दादा ! मैं कल प्रातःकाल ही पालीको यहाँसे ले जाता हूँ !’

‘नहीं...’ किसीका निषेध सुनाई दिया, आनन्दने चौंककर द्वारकी ओर देखा वहाँ नतमस्तक रेवा खड़ी थी !

‘रेवा ?...’ अभिरामने कहा, आ, भीतर आ !... ‘नहीं’ क्यों कहती है ? इतनी रातमें यहाँ ?... सब कुशलक्षेम तो है न ?’

‘नहीं, दादा ! पिताजीने अकेले आनन्दराजको वैशाली चले आनेकी आज्ञा दी है ! देवीको यहीं रहने देनेको कहा है !...’

‘क्या हुआ रेवा ! कोई अशुभ घटना घटी है क्या ?...’

आनन्द उद्विग्न होकर प्रश्नपर प्रश्न करने लगा । रेवाने स्वीकृति सूचक सिर हिलाकर ‘हाँ’ कहा और तब पालीके लिए कट मरनेको तैयार लिच्छवी राजपुत्रों, अभयके आश्रयमें प्रोत्साहित लिच्छवी युवकों और अभय द्वारा संधागारमें आमंत्रित लिच्छवी परिषद् आदिकी सब घटनाएँ उसने संक्षेपमें समझा दीं । उसने महानामकी साग्रह सूचना भी कही जिसमें पालीको नन्दी-ग्राममें ही सम्हालकर रहने देनेकी बात थी !

अभिराम और आनन्द एक दूसरेको देखने लगे । रेवा, संदेश सुनानेके बाद पालीके शयनगृहकी ओर चली गई । अभिरामकी इच्छा हुई कि वे भी आनन्दके साथ महानामसे मिलने वैशाली चले जायँ—किसी महान् आपत्तिके आये बिना महानाम कभी ऐसी आज्ञा नहीं करते । किंतु पालीकी रक्षाके लिए आनन्दने उसे रोक दिया ।

उसी समय बिंबिसारने कक्षमें प्रवेश किया; दोनोंने चौंककर उसकी ओर देखा । धीरे धीरे बिंबिसार आनन्दके पास आकर बैठ गया और गंभीर स्वरसे बोला —‘यजमान, तुम लिच्छवी हो, पराकमी हो ! वचन दो कि जो कुछ मैं कहूँगा उसे तुम शांतिपूर्वक सुन लोगे ! और मेरी बातें सुननेके बाद यदि तुम्हें तलवार उठाना आवश्यक ही हो तो आघात करनेके पहले और बादमें इतना अवश्य याद रखना कि मैं तुम्हारे शुद्ध और निःस्वार्थ प्रेममें आसक्त होकर, तुम्हारा अपना बनाईकी आकांक्षा रखने वाला एक परदेशी था !’

इतना कहकर उसने झट द्वार बन्द कर दिये, मुँह पर चतुराईसे चिपकाये हुए बाल और रंग आदिको अलग किया और दोनोंके निकट आकर, दोनोंके हाथ अपने हाथमें लेकर बोलना प्रारंभ किया—‘मैं कौन हूँ, यही कहने यहाँ

आया हूँ !'

आनन्द और अभिराम विस्मित हो, उसकी ओर देखते रह गये ।

[१६]

स्थानीय और लिच्छवी-प्रदेशके अन्य स्थानोंसे आये हुए सभासदोंसे वैशालीका संथागार उमड़ा जा रहा था । इसी महीनेमें लगातार तीन बार परिषदकी सभा हो जानेके कारण इस बार कुछ अधिक चंचलता दिखाई दे रही थी । प्रत्येक सभासद, और प्रायः सभी प्रेक्षक जानते थे कि आजका प्रस्ताव पालीके विषयमें रखा जायगा, किन्तु यह बात बहुत कम लोग जानते थे कि इस प्रस्तावके पीछे अभयका कूटनीतिक हाथ भी है; परिणाम स्वरूप लिच्छवी नेताओंने पालीके विषयमें अनेक अफवाहें उड़ाना प्रारंभ किया जिससे प्रत्येक व्यक्ति कौतुहल-पूर्वक किसी भयंकर उल्कापातकी प्रतीक्षा करने लगा ।

युद्धप्रिय लिच्छवियोंके लिए यह बात स्वाभाविक थी कि हठ पूर्वक किसी वस्तुकी इच्छा करने पर, उसे प्राण देकर या प्राण लेकर प्राप्त करे; अपनी इसी हठके कारण वे कभी कभी अपनी शक्तिकी सीमा भी लाँघ जाते थे । आज भी संथागारमें ऐसे एक दो नहीं, पाच सौ लिच्छवी युवक थे, जिनके हृदयकी वह ज्वाला अभयके प्रज्वलित करने पर, अब जोरोंसे भड़क उठी थी—प्रत्येक युवक पालीके लिए अपने प्राण देनेको प्रस्तुत था ! उन बुद्धिशून्य भावुकोंको अभयने, अपने जन्मसिद्ध अधिकारोंके लिए, और स्वयं महानामको ललकारनेके लिए, इस चालाकीसे प्रोत्साहित किया था कि अब उन्हें समझानेके लिए यदि अभय भी जाता तो वे उससे द्वन्द्व करनेको तैयार हो जाते । संथागारमें, एक सुंदरीके लिए लिच्छवियोंका लड़ मरना कोई नई बात न थी, आजसे तीस वर्ष पूर्व अभयने स्वयं, वर्तमान देशनर्तकी रेणुकाके लिए परिषदका विरोध किया था, और जीता भी वही ।...आज भी उसीकी विजय थी ।

चित्रा नक्षत्रके तीव्र उत्तापने युवकोंको तपा दिया था, इस लिए सभासदों में आम्र, जामुन और द्राक्ष आदिके आसव वितरित किये जाने लगे ।

संथागार ठसाठस भर चुका था, केवल महानामकी देरी थी; और इसी विषयको लेकर एक ओर युवक, तथा दूसरी ओर वृद्ध लोग तरह तरहके तर्क

वितर्क कर रहे थे।...वहाँ, उन सभासदोंमें कई ऐसे भी व्यक्ति थे जिनके हृदय में इस प्रस्तावको लेकर, दुःख था। चाहे महानामसे इन लोगोंका किसी दूसरे विषयमें मतभेद हो पर इतना तो निश्चित था कि महानामकी शूरता, नीति और न्यायपरायणताके आगे सबोंके मस्तक झुक जाते थे; इन बातोंमें उनके शत्रु भी उनकी प्रशंसा करते थे। एक आदर्श लिच्छवीका नाम लेने पर सारी वैशालीकी आँखें उन्हींकी ओर जा लगती थीं। उन्हीं वैशालीके देशनेताकी पुत्री का भविष्य आज संथागारमें निर्मित होने जा रहा था; उसीके निर्णयके लिए आज यहाँ राजा उपराजा और गण एकत्रित हुए थे। यह एक प्रबल मानसिक संघर्ष था जिसमें घबराहट अधिक और दुःख गहरा होने पर भी लज्जा बहुत कम थी।

‘सभापति अभी तक पधारे नहीं!’ एक युवकने संकेत किया।

‘आते होंगे, आयेंगे नहीं तो जायेंगे कहाँ?’

‘यह तो पुत्रीके जीवनका प्रश्न है भाई।’

‘जैसे मुझे तो कुछ मालूम ही नहीं!’

‘तुझे कैसे मालूम होगा प्रद्योत! तू तो कल ही पालीसे विवाह करनेको तैयार हुआ है! पुत्रीके पिताकी मनोवेदना तू नहीं समझ सकता!’

‘अम्बट्ट सच कहता है!’ तीसरेने कहा; ‘हम तो पति बननेकी कामना करके यहाँ आये हैं, पिता बनने नहीं!’

‘मालूम होता है सभापति नहीं आयेंगे!’

‘मुझे लगता है तू सूर्यदेवके पश्चिममें निकलनेकी बात कह रहा है।’

‘अरे रहने भी दे! उनके नहीं आनेसे क्या परिषद् यों ही उठ जायेगी? सभीके एकत्रित होनेपर उसे कुछ करके ही उठना चाहिए नहीं तो देशको युद्ध, अकाल या किसी भयंकर कष्टका सामना करना होगा!’

‘अम्बट्ट सच कहता है, आखिर बात तो पालीकी ही है न! निर्णय करने का काम हम सभासदोंका है, और प्रवेणी पुस्तककी आज्ञानुसार अंतिम निर्णय करनेके लिए अभयराज भी यहीं उपस्थित हैं! सभापति भले ही न आएँ!’

‘बसु ! मुँह सँभालकर बोल ! पाली किसीके बापकी नहीं हैं ! अभयराजने ज़रा भी आगा पीछा किया तो मैं उसे भी कच्चा चबा जाऊँगा, मैं इसीलिए यहाँ आया हूँ, समझा !’ सुधीर चिल्लाया । सदाकी तरह, वह एक एक शब्द चबा चबा कर, अंतिम टीका करनेवाले वसुको ललकार रहा था ! पालीकी बात सुनकर, सचमुच उसका मुँह भीषण हो रहा था ! उसी समय महानाम आते दिखाई दिये; सभासद और प्रेक्षक उनकी जयघोषणा करके स्वागतके लिए खड़े हो गये ।

सभापति, बिना किसी ओर देखे, नतशिर अपने स्थानपर बैठ गये । सभामें सर्वत्र शांति फैल गई । सबसे पहले प्रस्ताव रखनेका काम नगरश्रेष्ठीका था किन्तु वह तो शांतिपूर्वक, दृष्टि नीची किये बैठा था । अपने हाथोंसे देवतुल्य वयोवृद्ध सभापतिकी पुत्रीका सत्यानाश प्रारम्भ करनेके लिए वह तैयार न था; उसने यह पाप महाजेटुकके सिर डाला । चतुर महाजेटुकने संस्थाध्यक्षसे प्रस्ताव रखनेके लिए कहा । संस्थाध्यक्षने यह भार शुल्काध्यक्षको, शुल्काध्यक्षने सुराध्यक्षको, और सुराध्यक्षने शुनाध्यक्षको सौंपा । किन्तु लिच्छवियोंमें हृदयहीनताके लिए प्रसिद्ध शुनाध्यक्ष वीरभद्र भी यह प्रस्ताव सभाके सम्मुख रखनेका साहस न कर सका ! महानाम शांतिपूर्वक प्रस्तावकी प्रतीक्षा कर रहे थे; प्रत्येकके मनकी दुविधा और संकोचको वे समझते थे । धीरे धीरे लोगोंकी गुनगुनाहटने सभाकी वह नीरव शांति भंग की । तब भी प्रस्ताव सम्मुख रखनेके लिए कोई खड़ा न हुआ था । अंतमें स्वयं महानाम खड़े हुए; सभा जैसे भयभीत हो गई । वे गंभीर स्वरमें बोले—‘बंधुओं, बीती तीन दशान्दियोंमें, मेरे लिए यह पहिला ही अवसर है जब मैं देख रहा हूँ कि आज सभाके सम्मुख प्रस्ताव रखनेमें लिच्छवी गणतन्त्र इतना विलम्ब कर रहा है ! लिच्छवी वीरों ! संसार भरमें हमारा गणतन्त्र अद्वितीय माना जाता है; लिच्छवी संथागार, प्रत्येक सामूहिक न्यायका सत्कार करता आया है । हमारे संथागारने कभी एक व्यक्तिकी आज्ञा इच्छा अथवा शक्तिको अपनेमें स्थान नहीं दिया और न देगा ! कुलीन वीरों ! यह याद रहे कि यही एक ऐसा संथागार है जिसमें आनेके बाद, भाई भाईको, शिष्य गुरुको, पुत्र पिताको और प्रजा राजाको आज्ञामें अपनेसे ऊँचा नहीं मानती ! लिच्छवी संथागारमें पैर रखनेसे पहिले प्रत्येक लिच्छवी अपनी वय;

सत्ता और महत्त्वको संथागारके बाहर रख आता है। यहाँ तो सभी लिच्छवी हैं, एक हैं, समान हैं इसीलिए यहाँका प्रत्येक सभासद निडर, सत्यवादी, पक्षपातरहित और मृत्युसे भी टक्कर लेनेवाला होता है। यहाँके सभी सभासद वैसे ही आदर्श लिच्छवी हैं, फिर भी आज लिच्छवी संथागार शांत क्यों है, कोई इसका उत्तर देगा? क्या निडर लिच्छवी किसी बातसे भयभीत हो गया? या मृत्युसे जोहा लेनेवाले लिच्छवीको आज मैं कायर होता देख रहा हूँ!

‘महारथियों और वयोवृद्धों! शपथ है तुम्हें, जो निरीभावुकताके वश होकर तुम अपना कर्तव्य भुला बैठो। वैशालीके इस अद्वितीय संथागारमें किसी लिच्छवीके व्यक्तिगत जीवन अथवा सुखकी अपेक्षा समस्त लिच्छवियोंके लाभके प्रश्न को सदासे अधिक महत्व दिया गया है, और भविष्यमें दिया जाएगा! यदि परिषद अनुमति दे तो मेरी आज्ञा है कि प्रस्ताव शीघ्राति-शीघ्र सभाके सम्मुख प्रस्तुत किया जाय!’

सभा बिल्कुल शांत थी। नियमानुसार, सबोंने मौन रहकर प्रस्ताव रखनेके लिए अपनी अपनी अनुमति दे दी, किसीने भी विरोध न किया। अब तो प्रस्ताव रखनेका काम नगरश्रेष्ठीके लिए अनिवार्य हो गया। वह अपनी तालुसे चिपकी हुई जीभको हिलानेका प्रयत्न करने लगा।...इतनेमें अभयराज खड़ा हुआ, जिससे श्रेष्ठीके जीमें आया। अभयराज, युवक सभासदों की ओर एक दृष्टि डालकर कहने लगा—‘परिषदके माननीय सभासद आज्ञा दें तो मैं आजका प्रस्ताव कह सुनाऊँ...।’

‘नहीं, नहीं, नहीं!’ दूरसे किसीकी पुकार सुनाई दी; वह सुधीर था। वह अभयराजसे, यौवज-सुलभ कुछ और कड़वी बातें कहता उसके पहले चिरंजीवने बलात् उसका मुँह बंद कर दिया।

‘युवक! केवल संथागारका प्रतिनिधि ही समर्थन या विरोध कर सकता है, तू प्रेक्षक है!’ अभयने, हँसते हँसते सुधीरको सुनाकर, जैसे कोई बात नहीं हुई हो, बोला—

‘तो परिषद मुझे अनुमति देती है?...’

किसीने कुछ न कहा; अर्थात् परिषदने अनुमति दे दी ।

‘सभापति और लिच्छवी गणतंत्र !’ अभयने संथागारके नियमानुसार सभापति महानामको वन्दन करके कहना शुरू किया—आपकी आज्ञानुसार मैं सबके सम्मुख वह प्रस्ताव प्रस्तुत करता हूँ ! इस वर्षके नगर-महोत्सव और वसंतोत्सवमें रूप और गुणमें पालीने सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया है । सभापति, आपकी इस सर्वगुण-सम्पन्न सुन्दरी पुत्री आम्रपालीके लिए देशमें अनेक वितंडावाद उत्पन्न हो रहे हैं, कितने ही युवक उसे पानेके लिए अपने प्राणों से हाथ धो बैठे हैं । इस प्रकृति-प्रदत्त असीम सौंदर्यने लिच्छवी युवकोंमें ईर्ष्या, अनैक्य और उन्मादका प्रादुर्भाव किया है । आजकी इस परिषदमें भी सैकड़ों युवक पालीसे विवाह करनेको उत्सुक हैं और उनमें परस्पर शत्रुता और कलहकी ज्वाला प्रज्वलित हो उठी है । लिच्छवियोंकी एकता और देशप्रेम भय और आतंकके भूलेमें भूल रहे हैं । देशकी इस भयंकर परिस्थितिके विषयमें आजकी परिषदसे मेरी प्रार्थना है कि वह अपना मत देकर इस समस्याका अंतिम निर्णय कर दे !’

इतना कहकर अभय इस विषयमें निरपेक्ष और निर्लिप्त सा होकर अपने आसनपर बैठ गया । प्रस्ताव सुनकर सभासदोंके श्वासोच्छ्वास जोरोंसे चलने लगे; इस विषयमें और विवाद होनेकी अब बहुत कम संभावना थी । सभासद केवल सभापतिका ही वक्तव्य सुननेकी आतुरतासे प्रतीक्षा करने लगे, क्योंकि प्रस्तावका विषय प्रायः सभीको अवगत था । अभय तथा उसके अनुगामियोंका विश्वास था कि इतनी देरमें व्यवहार-कुशल महानामने पालीके लिए अवश्य कोई न कोई मार्ग ढूँढ़ निकाला होगा । इधर अभयके सिखाकर तैयार किये हुए युवकोंमेंसे बहुतोंकी आंतरिक इच्छा थी कि पालीका प्रश्न यों ही बिना किसी निर्णयके उड़ जाये, जिससे उन्हें पालीसे किसी भी तरह विवाह करनेकी संधि मिले !...किंतु एक प्रकारकी कठोरता महानामके मुखपर स्पष्ट दिखाई दे रही थी; उन्होंने खड़े होकर बोलना प्रारंभ किया—

‘यह बात परिषदको ज्ञात है कि किसी भी एक लिच्छवी पुरुषके कारण यदि अनेक लिच्छवीगण एकता और साम्य भूलकर एक दूसरेसे द्वेष

करने लगे तो उस पुरुषको मार डालना चाहिए, और किसी एक स्त्रीके सौन्दर्यके कारण ऐसा कुछ हो तो उस सुन्दरीको स्वदेशके लिए अपने कौमार्यका बलिदान करके नर्तकी बन जाना चाहिए ! पालीको देशनर्तकी बनना होगा !... मैं परिषदसे प्रार्थना करता हूँ, परिषद अपनी अनुमति दे !'

इस बार सभा पूर्ववत् शांत न रही । परिषदके दोनों ओरसे विरोधी स्वर सुनाई दिये; प्रत्येक युवक सभासद पालीसे ब्याहनेके लिए खुले शब्दोंमें चिल्लाने लगा । इस अव्यवस्थित विरोधके कारण प्रौढ़ पुरुष और अधिक चिढ़ गये । युवकों और उनमें होनेवाला वादविवाद उग्र स्वरूप धारण करने लगा ! तब महानामने सबोंको शांत किया, और सत्तापूर्ण स्वरमें नगरश्रेष्ठीको प्रवेणीपुस्तक पढ़नेकी आज्ञा दी । नगरश्रेष्ठी डगमगाते पैरोंसे, सभाके बीचोंबीच रत्नजटित चौकीपर सुनहरी जालीमें लपेटे हुए ताड़पत्रोंवाली प्रवेणीपुस्तकके पास पहुँचा; काँपती अँगुलियोंसे ताड़पत्र उठाया और ऊँचे नीचे स्वरमें पढ़ना शुरू किया । पूरी सभा स्तब्ध हो गई । नगरश्रेष्ठी बोला—'देववाणी अपने चतुर्थ खंडकी नवमी ऋचामें बताती है—...और हे सशक्त प्रजा, तुममें यदि कोई कुमारी अति सुंदरी हो कि जिसका सौंदर्य तुम्हारे ही बंधुओंमें परस्पर द्वेषके लिए प्रेरित करे; जिसके कारण तुम्हारे युवक एक दूसरेके प्राण लेनेको प्रस्तुत हो जाएँ, उसका विवाह नहीं करना चाहिए; उसे देशनिकाला भी न दे क्योंकि लिच्छवी कन्या, लिच्छवियोंमें जन्म लेकर लिच्छवियोंमें ही मृत्युको प्राप्त होती है । स्त्रीकी हत्या करना निर्धर्म पुरुषका कार्य है, इसलिए उस सुन्दरी कुमारीके सौंदर्यका उपयोग देशसेवाके लिए ले ! वह कुमारी विवाह न करे; द्वेषपूर्वक लड़ने-वालोंमें प्रेम उत्पन्न करे और स्वदेशहित प्राणोत्सर्ग करनेवाले लिच्छवीको विश्राम और आनन्द प्रदान करनेके लिए नृत्य, संगीत इत्यादि कलाओंमें पारंगत हो, और उन कलाओंसे पुरुषोंको आनंदित करके उन्हें रणक्षेत्रमें जानेके लिए प्रोत्साहित करे ! प्रजा उस स्त्रीके लिए सम्मान प्रदर्शित करे, क्योंकि शक्तिशाली प्रजाके लिए प्राणोत्सर्ग करनेवाले पुरुषकी अपेक्षा उस रूपकुमारीका बलिदान उच्चतर है !' नगरश्रेष्ठी तोतेकी तरह

यह पाठ पढ़कर अपने आसनपर जा बैठा। संथागारमें पुनः विरोधका स्वर सुनाई देने लगा; कोई जोरोंसे चिल्लाया—‘देखूँ तो सही, पालीको कौन हाथ लगाता है !’...यह सुधीरकी चीख थी। एक मित्रने फिर उसका मुँह बन्द किया। सभामें बैठे हुए चिरंजीवने सुधीरकी ओर ध्यान न दिया, आज वही पालीका कट्टर शत्रु था।

सबोंको पूर्ववत् शांत होते देखकर, महानाम स्वयं खड़े हुए। अभय सूक्ष्म दृष्टिसे उनकी ओर देख रहा था, किन्तु महानामका ध्यान उसकी ओर नहीं था। सदाकी तरह शांत स्वरमें उन्होंने बोलना प्रारंभ किया; उनके स्वरमें न कम्पन था, न निर्बलता और न द्वेष ही। सभा निस्तब्ध थी।

‘माननीय सभासदों, इस संथागारके इतिहासमें आज तक किसी सभापतिके सम्मुख ऐसा प्रश्न उपस्थित नहीं हुआ, इसलिए मेरी एक ही प्रार्थना है कि पाली मेरी पुत्री होनेके कारण यदि कोई सभासद अपना सच्चा मत व्यक्त करनेमें हिचकिचाएगा तो वह अपने कर्तव्यसे च्युत होगा ! और जो लिच्छवी कर्तव्यच्युत हो जाये, उसमें लिच्छवीरक्त होगा यह बात मैं नहीं मानता ! बंधुओं, हमारे लिए प्रवेणीपुस्तक ही अंतिम निर्णय है। यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि आप सबोंको यह प्रस्ताव मान्य नहीं। मेरी प्रार्थना है कि शलाका द्वारा परिषदका मत लिया जाए; यदि परिषद मत देगी कि आम्रपाली ही सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है तो आम्रपालीको देशनर्तकी बनना होगा !’

‘नहीं...नहीं !’ सुधीरकी एक कारुणिक पुकार सुनाई दी; इस बार उसके पीछे खड़े हुए मित्रने केवल उसका मुँह ही बंद नहीं किया बल्कि चिरंजीवका संकेत पाकर उसे एक थप्पड़ भी लगा दी।

नगरश्रेष्ठीके पैर फिर ढाँले हुए, अभयराम उसकी ओर एकटक देख रहा था जिससे उसे कुछ दृढ़ता मिली। उसने शलाकाएँ वितरित करनेका प्रबन्ध किया। शलाकाओंके वितरण और मतदानके रिक्त समयमें सभा शांतिपूर्वक कई प्रकारके तर्कवितर्क करती रही। अन्तमें नगरश्रेष्ठीने पसीनेसे लथपथ होकर बोलना प्रारंभ किया—‘पूज्य सभापति और लिच्छवी गण-संघकी आज्ञानुसार सब सभासद परिषदका मत सुननेकी कृपा करें—

‘परिषद...परिषद सर्वानुमतिसे आम्रपालीको सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी मानती है।’

‘धन्य परिषद ! धन्य हैं लिच्छविगण और उनका गणतंत्र !!’ महानामने गंभीर शांतिका अनुभव करते हुए ऊँचे स्वरमें कहा— ‘लिच्छवी संथागारमें ऐसा ही न्याय होना चाहिये ! आपने मुझे देखे बिना, इन पत्थरकी शलाकाओं द्वारा अपने हृदयकी सच्ची बात सभाके सम्मुख रखदी। आप सर्वानुमतिसे स्वीकार करते हैं कि पाली सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी लिच्छवीकन्या है। अब मैं प्रवेणी पुस्तकके आदेशानुसार यह प्रस्ताव रखता हूँ कि पाली आगामी पूर्णिमासे देशनर्तकी बन जाय ! परिषदको यह प्रस्ताव मान्य हो !’

पूरी सभामें सनसनी फैल गई। सबसे बड़ा आघात तो अभयको लगा; उसे विश्वास था कि महानाम किसी भी तरह पालीको बचा लेंगे, किन्तु महानामकी न्यायप्रियता देखकर वह भी स्तब्ध रह गया।...किन्तु वृद्ध सभासदोंकी आँखें आँसुओंसे भर गईं; पुत्रियोंके पिताओंके हृदयपर वज्राघात हुआ। पालीके लिए मरमिटने वाले युवक जो अभयकी बातोंसे उन्मत्त हो उठे थे, दिग्भ्रष्ट हो कर शांत बैठ रहे।

कुछ समय सभा बिलकुल शांत रही, कोई भी न बोला। प्रत्येक सभासदका सिर, महानामकी कर्तव्य-भावना और आत्मसमर्पणके सम्मुख झुक गया। परिषद पूर्ववत् शांत थी।

परिषदने निस्तब्ध रहकर प्रस्ताव मान्य किया; सभापतिने उसी शांतिमय स्वरमें कहा—‘किसीका भी विरोध नहीं है; पूजनीय परिषद ! वंदनीय परिषदकी अनुमतिसे मैं लिच्छवी गणतंत्रके सम्मुख नगर, प्रांत, ग्राम और अन्यत्रवासी लिच्छवी प्रजाकी सूचना निमित्त आज्ञा देता हूँ कि आगामी पूर्णिमाको आम्रपाली देशनर्तकी बनेगी ! वैशालीकी जय हो ! लिच्छवियोंकी जय हो !’ साथ ही साथ सभामंडपमें गगनमेदी जय जयकार हुआ—

‘महानाम सिंहराजकी जय ! सर्वश्रेष्ठ लिच्छवीकी जय; लिच्छवी गणतंत्र की जय ! गणतंत्र अमर हो !’

इसी जय जयकारके बीच सभा विसर्जित हुई और महानाम सभासदोंका

नमस्कार लेते हुए धीरे धीरे संधागारसे बाहर निकले। बाहर आते ही यकायक सुधीर उनके पास झपट आया; उसकी मुखमुद्रा भीषण और आँखें लाल थीं; उन्माद उसके चेहरेसे बरस रहा था। महानामके सम्मुख आकर चिल्लाया—

‘निर्दय ! मूर्ख वृद्ध, तू है तुझपर, तू !!’

सुधीरने पशु बनकर उस श्रेष्ठ लिच्छवीके मुँह पर थूक दिया। वृद्ध महानाम रुके; सुधीरकी ओर मुस्कान भरी दृष्टि डालकर उन्होंने हाथोंसे मुँह पोंछ लिया। सुधीर वह दृष्टि न झेल सका; मुँह फेर लिया। इतनेमें किसीने सुधीरका मुँह पकड़कर उसे जोरोंका झटका दिया; महानामने देखा कि वह आनन्द था; आँसूभरी आँखोंसे उन्होंने पूछा—तू आ गया आनन्द ?—

‘हाँ पिताजी, परिषद् प्रारम्भ होते ही मैं आ गया था !’

पिता-पुत्र, लिच्छवी नेताओंके बीच खड़े रहकर केवल इतना ही बोल सके थे। दोनोंमें कोई भी आगे न बोल सका। दोनोंके हृदय असह्य वेदनासे व्यथित थे। आनन्दका हृदय कट रहा था, किन्तु वृद्धका हृदय कट चुका था। आनन्दने पिताको सहारा देकर रथमें बिठाया।

महानामके मुँहपर थूकनेके बाद भी सुधीर चिल्ला रहा था। चिरंजीवन उसे अपनी लोह भुजाओंमें जकड़ रखा फिर भी वह हँस रहा था। उसने अपना मस्तिष्क पूर्णरूपेण गँवा दिया था। इसी बीच भीड़में से मैले वस्त्रोंवाला दूसरा युवक निकल आया और सुधीरके सामने आकर चिल्लाया, हँसकर कहने लगा—‘पागल, मूर्ख, अरे मैं पाली हूँ, मैं !’ सुधीरकी ओर देखकर वह फिर खिलखिलाकर हँस पड़ा; वह रुदनमूर्ति भट्टी था।

महानामका रथ चलने लगा; उसके पीछे जयजयकार और उस जयजयकारको दबाती हुई सुधीरकी चीख और भट्टीका हास्य सुनाई दे रहे थे !... उन दोनों पागलोंके पीछे पुराजित, अपमानित, तिरस्कृत अभय खड़ा था; जिसके मुखपर अभी भी वही विषमय हास्य था।

शयनगृहमें पहुँचने तक महानामने अद्भुत धैर्य रखा। किन्तु शय्यापर बैठते ही थकावट, तीव्र मानसिक व्यथा, दुःख और घृणाकी तीव्र भावनासे व्यथित होकर वे गिर पड़े। आनन्दने परिषद्की सम्पूर्ण कार्यवाही अपनी

आँखोंसे देखी थी। लिच्छवियोंमें उसकी जोड़के योद्धा इने गिने ही थे, फिर भी वह वहाँ मौन ही रहा; उस समय उसने अद्भुत सहनशीलता दिखाई थी। अनेक मान्यताओंमें पितासे विरुद्ध होते हुए भी उसने पिताके सिखाये हुए अनुशासन और आज्ञाका कभी उल्लंघन नहीं किया। आज वह स्वयं पिता के कष्टका अनुभव कर रहा था। महानाम सोच रहे थे—यह उनकी विजय थी या पराजय ?

मौरपंखेसे हवा करते हुए आनन्दने धीरेसे कहा—‘पिताजी !’ महानामने आँखें बन्द ही रखीं, आनन्दका हाथ अपने वक्षपर रखकर कहा—‘बेटा, कह कि मैंने पालीको मार डाला !’

‘आज आपने वैशालीको नवजीवन दिया है, आज वैशाली गौरवमयी होकर सारे संसारसे कहेगी कि हँसते हँसते पुत्री का बलिदान कर देनेवाला पिता केवल लिच्छवी ही उत्पन्न कर सकते हैं ! किन्तु पिताजी...’

‘क्या बात है बेटा ?’

‘कुछ नहीं !’

‘तुझे अपने पिताकी शपथ है, बोल !’

‘पिताजी, अविनयके लिए क्षमा चाहता हूँ...’ आनन्द इतना बोलकर रुक गया, मानो मनमें उठते हुए तूफानको शांत करनेका प्रयास कर रहा हो। अंतमें मनकी बात बहुत छुपानेपर भी बाहर निकल ही आई बोला—‘पिताजी, सामुदायिक आज्ञाको माननेमें ही लिच्छवियोंका गौरव और हमारे देशका कल्याण है किन्तु...किन्तु परिषदने जो आज्ञा मेरी बहिनके लिए दी, वह अनुचित है, अनीतिपूर्ण है, धर्मके विरुद्ध है। मैं देशके लिए बलिदान देनेमें सहमत हूँ पर मेरी बहिनको मेरी ही आँखोंके आगे किसी अपराधके बिना वारांगना होना मैं नहीं देख सकता, पिताजी !...’

‘बस, आनन्द ! बस, बेटा ! जिस दिन लिच्छवीके जीवनसे न्याय, निस्पृहता और पूर्वजोनुपालित कर्तव्य नष्ट हो जाएगा, उस दिन यह वैशाली नगरी रसातलको चली जाएगी। संथागारमें जो कुछ हुआ, और परिषद्ने जो कुछ किया वह प्रत्येक लिच्छवीने लिच्छवियोंके लिए किया है और वही निर्णय प्रत्येक लिच्छविको निर्विरोध रूपसे शिरोधार्य है। परम पवित्र प्रवेणी-

पुस्तकके विरुद्ध बोलनेका साहस न कर बेटा, नहीं तो आत्मद्रोही, देशद्रोही, घोर अपराधी बनेगा...'

आनन्द मौन रहा । वृद्धके ललाटपर स्वेदविंदु निखर आये थे; आनन्दने धीरे धीरे उन्हें पोंछा और प्रेमपूर्ण किंतु गद्गद् कंठसे बोला—
'अब क्या आज्ञा है, बापू !'

'पालीको यहाँ ले आ बेटा, जितनी शीघ्र हो सके !'

'जो आज्ञा, बापू ! पर आपने तो अभी उसे वहीं...'

'मुझे संथागारमें रखे जाने वाले प्रस्तावकी बात मालूम हो गई थी इसलिए मैंने उसे वहीं रहने देने को कहा था;...आनन्द ! विलम्ब न कर बेटा, पालीको शीघ्र ले आ !'

'जैसी आज्ञा ! क्या अभी ही जाऊँ ?'

'हाँ !'

अपनी मृत्यु समीप आती देखकर महानामने पालीको शीघ्र ले आने को कहा, किंतु यह कारण उन्होंने आनन्दसे गुप्त रखा आनन्दको डर था कि पाली और वह नटराज भावुकतामें आकर वहीं कोई अनुचित बात न कर बैठें; इसीलिए वह भी शीघ्र जाना चाहता था किंतु यह कारण उसने भी पितासे छुपा रखा था ।

आनन्द, नन्दीग्राम जानेके लिए पिताकी शैयापरसे उठ खड़ा हुआ; तब ही मार्गमें दूरसे उन्मत्त सुधीरकी चिल्लाहट सुनाई देने लगी—'मूर्ख ! धूर्त ! कापुरुष !...'

खुली हुई आँखें, महानामने फिर बन्द कर लीं, उनके वक्षपर जैसे कोई बरछीसे आघात कर रहा था । धीरे धीरे सुधीरकी चिल्लाहट समीप आने लगी, स्पष्ट सुनाई दी, और कुछ देरमें धीरे धीरे दूर चली गई । उसकी चीखके साथ लोगोंकी तरह-तरहकी टीका टिप्पणी भी सुनाई दे रही थी । बहुत कठिनाईसे आनन्द, यह सब, दाँत पीसते हुए सुन रहा था ।

[१७]

वेदांतीके पैरोमें भुक्कर जब पाली और बिंबिसार आशिर्वाद माँग रहे थे तब बिंबिसारका ध्यान आशिर्वादको छोड़ किसी दूसरी ओर था ! वह दिग्मूढ़ सा सोच रहा था कि पालीने उसके साथ विवाह करना स्वीकार कैसे किया ? वह पुनः शीघ्रातिशीघ्र बीती हुई घटनाओंको याद करने लगा—

वृद्ध अभिरामने प्रातःकालके पहिले आकर अचानक उसे जगाया । सूर्योदयके पूर्व ही ग्रामके बाहर वेदांतीके समस्त विवाह-विधि सम्पन्न हुई । सूर्योदय होते ही पाली और बिंबिसार पतिपत्नीके रूपमें, वेदांतीके पैरोमें भुक्कर आशिर्वाद माँग रहे थे ... ।' ये सब घटनाएँ इतनी शीघ्रतासे एकके बाद एक घटती गईं कि बिंबिसार विमूढ़ बन गया । वेदांतीने उन्हें आशिर्वाद दिया और तब वे दोनों पास खड़े अभिरामके पैरोमें गिर पड़े । अभिरामकी आँखें आँसुओंसे डबडबा रही थीं, एकबार जोरसे सिसककर उसने दोनोंको अपनी छातीसे लगा लिया ।

सच पूछो तो अभिरामने ही इतनी शीघ्रतासे इतना बड़ा काम सम्पन्न किया था । किसीको भी बिंबिसारका परिचय कहे बिना, दोनों देशोंके हितके लिए पाली-बिंबिसारका विवाह होनाही चाहिए यह निश्चय वेदांतीके साथ करके अभिरामने दोनोंको वेदांतीके समक्ष विवाहित बना दिया । इन चार व्यक्तियोंके अतिरिक्त कोई नहीं जानता था कि पालीका विवाह हो गया !

रात हुई; वही चाँदतारोंवाली रात । आज पालीके सुखका समय था, सीमा थी । जिस विवाहकी पहिली स्वर्णरात्रिके लिए इन्द्र भी मनुष्य बनना चाहता है, तब मनुष्यकी तो बात ही क्या ? रेवासे यह गुप्त विवाह छुपा न रहा । शयनगृहकी शोभा परिवर्तित हो गई; रातके लिए अद्भुत और अननुभूत श्रृंगार तैयार हुए । बिंबिसारने शयनगृहमें पैर रखा और पाली उसके चरणोंसे लिपट गई तब तो इस संसारने कोई नया ही स्वाँग रच लिया था । पालीको उठाकर बिंबिसारने अपनी ओर खींचा; वह काँप गई । बिंबिसारने उसे बाहु-पाशमें जकड़ लिया; ओठोंने ओठोंको छुआ, हृदयने हृदयको । तब बिंबिसारने पालीको भुजाओंमें उठा लिया,—उस दिन गंगावाली टेकरीपर चढ़ते हुए

उठाया था, उसी तरह। पालीने आँखें बन्द कर लीं, मानो उसका सारा संसार मदमस्तीमें परिव्याप्त हो गया है और वह बिना देखे ही उसका अनुभव करना चाहती है ! कुछ क्षण उसकी ओर एकटक देखकर बिबिसार शय्याकी ओर गया।

पालीकी आँखें खुलीं तो देखा—उसका संसार बदल चुका था। मुँह फेरकर उसने अपने पीछेकी ओर बिबिसारको निद्रामग्न देखा ! देखने लगी—कितना सुन्दर मुख, कितना उज्ज्वल ! धीरे धीरे उसने स्वामीके वत्तःस्थल में अपना सिर छुपा दिया और आँखें बन्द करके चुपचाप लेटी रही। बिबिसार सुबहकी मीठी नींदमें निमग्न था, उसका एक हाथ पालीके गलेसे लिपट गया; पाली निःश्रेष्ठ बनकर लेटी रही, सोचती रही।

...वृद्ध अभिरामने मुहूर्त चूक जानेका बहाना कर विवाह करनेके लिए इतना अधिक आग्रह क्यों किया ? वह भी उसे सच क्यों मान बैठी ? अनजान परदेशीसे विवाह करने लिए इतनी शीघ्र तैयार कैसे हो गई ? विवाह कर भी लिया ! भाई और पितासे पूछे बिना ही ? अभिरामके इन शब्दोंपर उसे विश्वास ही कैसे हुआ कि 'बिना पूछे भटपट विवाह कर ले !'... उसका क्रोध कहाँ गया ? और निश्चय ?...इन प्रश्नोंका उत्तर ढूँढ़नेके लिए पाली व्यर्थ प्रयास करनेके लगी। दाढ़ी मूँछ रहित सोये हुए बिबिसारकी कमनीयता रात ही रातमें कई गुनी बढ़ गई थी—उसे देखते ही पालीने पुनः आँखें मूँद लीं।

प्रातःकाल हो गया। नित्यकी तरह दोनों गंगावाली टेकरीपर बैठ पुनः बातें करने लगे; पाली बोली—'अब कहो, तुम कौन हो ?' बिबिसार चौंक उठा; विस्मित दृष्टिसे पालीकी ओर देखकर उसने कहा—'दादाने तुम्हें नहीं कहा ?'...पाली और अधिक आश्चर्यान्वित होकर बोली—'दादा जानते हैं ?'

'हाँ, और आनन्दराज भी जानते हैं कि मैं कौन हूँ !'

'और मैं अकेली ही अनजान रह गई ! मुझसे क्यों छुपाया ?'

'जब मैंने तुझसे कहनेका निश्चय किया तो दादा और आनन्दराजने मुझे रोक दिया था।'

'विवाहके पहिले न कहनेमें क्या कुछ रहस्य था ?'

'हाँ, वह दो राष्ट्रोंकी समस्या थी !'

‘अर्थात् ?...’ पाली बोलते बोलते रुक गई, उसकी दृष्टि कठोर हो गई, वह आशंकित हुई, आशंका सच निकली; बोली—‘तुम मागधी हो ! बोलो, कहो—तुम मागधी हो ?

‘हाँ, पाली, मैं मागधी हूँ, मागधियोंका स्वामी बिंबिसार !’

‘बिंबि...वज्रियों और लिच्छवियोंके कट्टर शत्रु !’

‘अब लिच्छवियोंका परम मित्र, सम्बन्धी...’

‘बस, एक शब्द भी अधिक न कहो !’ कहकर पाली खड़ी हो गई; मनकी भीषण ज्वालाने शरीरको भी प्रज्वलित कर दिया। जैसे किसीने अपमानित करके उसे स्वर्गके उन्नत शृंगसे नरकके गर्तमें गिरा दिया हो !

‘पाली, मेरी बस एक ही बात सुन ले ! उसके बाद जो दराड देगी उसे सहर्ष स्वीकार कर लूँगा...!’

‘मैं शत्रुके साथ बोलना नहीं चाहती !’ पालीने मुँह फेरकर बोलना शुरू किया—‘द्रोही, ... कपटी, स्वार्थी, कायर...’ कहते कहते उसकी आँखें आँसुओं से उभराने लगीं।

उसके समीप आकर बिंबिसार बोला—‘एक बार तो मेरी बात सुन ले ! वैशाली, और राजगृह, लिच्छवी और मागधीको एक करनेका एक ही मार्ग था—एक दूसरेको प्रेम विजित करना ! मेरे महामाल्यने लिच्छवियों और मागधियों के छोटेसे संघर्षमें अकस्मात् प्राणोत्सर्ग कर दिया, किन्तु मरनेके पहिले वे मुझे एक मन्त्र दे गये थे; वही मन्त्र मैंने आनन्दराजको समझाया और वृद्ध अभिराम और तपस्वी वेदांतीने उसी मन्त्रका साक्षात् प्रयोग किया। पाली, आजसे मैं तेरे बिना निर्जीव हूँ—हम दोनों एक हैं ! तू राजगृहकी पट्टरानी बनकर लिच्छवियोंको प्रेम करना सिखा सकेगी। बैर अपने आप भूल जायगा; स्नेह प्रकट होगा और कुछ ही समयमें कटुता और संघर्ष सदाके लिए नष्ट हो जायगा। मुझे अपने राज्य और अपने आपको बचानेका एक ही मार्ग दिखाई दिया और वह था हमारा विवाह ! तेरे लिए भी, लिच्छवियोंके साथ साथ मुझे भी सुरक्षित रखनेका एक ही मार्ग था कि तू मुझसे विवाह-ग्रन्थिमें बँध जाती ! यह तेरी इच्छा है कि इसे स्वीकार करे या न करे !...’

पाली विमूढ़-सी होकर सुन रही थी—प्रेमके साथ राष्ट्रोंके उद्धारकी बात सुनकर वह निस्तब्ध हो गई; किन्तु रोष इतनी शीघ्रतासे शांत न हुआ। उसका हाथ पकड़कर बिंबिसार धीरे धीरे कनारोंमें कहने लगा—यह कोप मगध की महारानीकी ही शोभा देता है ! भूले हुएको क्षमा करना महारानीका कर्तव्य है। साथ ही साथ महारानीसे यह भी प्रार्थना है कि वे कल ही यहाँसे प्रस्थान करनेकी आज्ञा दें,—क्योंकि मगधकी प्रजा महारानीके दर्शनके लिए अतीव आतुर हो रही है !

‘मैं महारानी नहीं हूँ !’

‘मागधी प्रजा यह नहीं मानती !’

‘मैंने मगधकी प्रजाको देखा तक नहीं !’

‘प्रजाके प्रतिनिधिको तो देख रही हो न !’

‘मुझे हँसानेका प्रयत्न न करो !’

‘ठीक है, रुलानेका प्रयत्न करूँगा, कल तक आनन्दराजके आने भरकी देर है !’

‘मैं निरर्थक बातें सुनना नहीं चाहती !’

‘मैं बहुत गूढ़ार्थ बात कह रहा हूँ; अब तक आनन्दराजने पिताजीसे हमारे विवाहकी बात की होगी। वे कल यहाँ आशिर्वाद देने आयेंगे। उसके बाद हम दोनों यहाँ से चले जाएँगे। भाई, पिताजी और देशको छोड़ते समय मगधकी महारानी अवश्य रो पड़ेंगी, मुझे रुलानेका जरा भी प्रयत्न न करना पड़ेगा ! अब कहें, महारानी क्या आज्ञा देती हैं ?’

आँसू भरी आँखोंसे पाली उसकी ओर देखती रही; क्रोधमें भी वह सुन्दर मालूम होती थी और रोते हुए भी। बिंबिसारने भावाविष्ट होकर उसे हृदयसे लगा लिया...बिंबिसारके स्पर्श भरने पालीके क्रोध और शक्तिको शिथिलकर दिया—वह अपना सर्वस्व समर्पण करके उसी तरह बिंबिसारके वक्षसे चिपकी रही।

‘पाली, कल ही प्रस्थान करें ?’

‘हाँ !’

‘तू पट्टरानी बनेगी ?’

‘क्या वहाँ दूसरी रानियाँ भी हैं ?’

‘रानियाँ होंगी, महारानी तो एक ही है, आम्रपाली !’

‘मैं महारानी नहीं बनूँगी !’

‘क्या अभी रोष शांत नहीं हुआ ? देवी अपराध क्षमा नहीं करेंगी !’

‘शत्रुको क्षमा ?’

‘मागधी तो शत्रुको भी क्षमा कर देते हैं, मागधियोंकी महारानी क्या एक मागधीको क्षमा नहीं करेगी ?’

पालीकी आँखें फिर भींग उठीं। बिबिसारने स्वयं झुककर उसे जीत लिया; पाली उसपर न्यौछावर हो गई। किन्तु बाहरसे उसी प्रकार रूष्ट होकर बिबिसार की भुजाओंमें बँधी रही बोली—

‘महारानी क्षमा नहीं करती, दंड देती है।’

‘जैसी आज्ञा ! कौनसे दंडका विधान है ?’

‘उचित समयपर उचित दंड मिलेगा !’ इतना कहकर उसने आँखें मूँद लीं; यह आह्वान था !

‘जैसी महारानीकी आज्ञा ..’ कहकर बिबिसारने पालीको चूम लिया।

साँभ हुई; मार्गश्रमसे अतीव थककर आनन्द नन्दीग्राम पहुँचा। सर्वप्रथम वह अभिरामसे मिला किन्तु जब उसने उसे गुप्त विवाहकी बात कही तो वह जहाँ खड़ा था वहीं बैठ गया। अतिशय मानसिक कष्टके कारण उसे चक्कर आ गये।

‘दादा, हमारी पाली मर गई...’ कहकर आनन्दने पूरी बात अभिराम को कह सुनाई। वृद्ध विस्मयसे विमूढ़ हो गया !

प्रासादमें पैर रखते ही आनन्दने पाली और बिबिसारको देखा। बहनको देखते ही अपार वेदनाने उसके हृदयको व्याथित कर दिया। तब वह उस अकेलीका हाथ पकड़कर अपने वक्षमें ले गया, और द्वार बन्द करके ओठोंको चबाता हुआ वह पालीको देखने लगा।

पाली जीवनमें प्रथम बार अपने भाईसे भयभीत हुई। लिच्छवियों और मागधियोंके राजकीय सम्बन्धोंको ध्यानमें रखकर, पालीको तत्काल राजगृह ले जाने और इस तरह दोनों राज्योंकी शत्रुता दूर करनेकी बात बिबिसारने

आनन्दसे कही थी, फलस्वरूप आनन्दके आते ही तत्काल दोनोंको नन्दीग्रामसे बिदा करनेकी तैयारी भी हो चुकी थी। संभवतः पिताजी नहीं आये! कदाचित् भाईका विचार बदल गया है अथवा वह सदाके लिए सबोंको छोड़कर चली जाएगी इसलिए तो भाईकी इतनी कठोर मुखमुद्रा नहीं है ?

‘भैया !’ वैशालीमें क्या हुआ ? पिताजी क्यों नहीं आये ? मुझसे कुछ अपराध तो नहीं हुआ ?’

‘हाँ, बड़ा भारी, अक्षम्य अपराध हुआ है ! तू स्त्री बनकर पैदा क्यों हुई, और स्त्री बनी तो इतनी सुन्दर क्यों बनी ?’

‘भैया !’ पाली आनन्दकी ओर दौड़ी, उसके मुँहपर हाथ रख दिया; किन्तु आनन्दने उसी कठोरतासे उसके हाथ हड़तापूर्वक पकड़कर उसे खींचा और बलपूर्वक नीचे बैठकर दाँत पीसता हुआ बोला—‘अभागिनी ! तूने वैशालीमें जन्म क्यों लिया ? तू एक लिच्छवीकी पुत्री क्यों बनी ?’

कठोरता और क्रोधकी तीव्रताके कारण आनन्दकी आँखोंसे आँसू बहने लगे थे। चीखकर पाली उसके गलेसे लिपटकर बोली—‘भैया, अपने अपराधके लिए प्राण दे देनेमें मैं जरा भी नहीं हिचकिचाऊँगी स्पष्ट कहो, क्या हुआ है ?’

‘मैं तुझे मार डालने आया हूँ, तेरा गला घोटनेके लिए ! नहीं, नहीं... तुझे ऐसी मौत मारने आया हूँ कि हजार बार जीकर हजार बार मर जानेपर भी तू उस मौतकी बराबरी नहीं कर सकती ! पाली, बहिन ! आजसे समझ ले कि तू जीवित नहीं मर गई है !’

‘मुझे मरना आता है भैया ! समय आनेपर प्राण दे देनेमें मैं डरूँगी नहीं ! पर इतना तो समझाओ कि वैशालीमें सबके सब मुझे मार डालनेके लिए इतने आतुर क्यों हो रहे हैं ? अभी तक मैं मरी नहीं हूँ, कह दो भैया, रुको मत ! मैं भी लिच्छवी हूँ !!’

‘इसीलिए तुझे कह सकूँगा ! कलसे तू महानामकी नहीं, पूरी वैशालीकी, समस्त लिच्छवियोंकी बन चुकी है ! और पिताजीने निःसंकोच होकर अपने हाथों तुझे परिपक्वो अर्पण कर दिया है !’

जैसे पालीकी हृदयगति रुक गई। आनंदके ओंठ काँपने लगे, स्वर तीक्ष्ण हुआ, चिल्लाकर वह बोला—‘सुन लिया पाली! तू, मेरी बहन, महान महानाम लिच्छवीकी पुत्री अब वेदया बन गई है! लिच्छवियोंका यह आदर्श बलिदान है। यह वैशालीका गौरवमय कलंक है!’

इस समय पाली मर जाती तो अधिक अच्छा होता; किंतु मरी नहीं क्योंकि वह लिच्छवी थी! एकाएक मानसिक आघातसे उसका समस्त शरीर शिथिल होकर पुनः चेतन हुआ। अंधेरे गड्ढेमें अचानक गिर जानेके बाद उठकर धीरे धीरे प्रकाशमें आ रही हो वैसे धीमे धीमे पालीको बाह्य जगतकी सुध हुई। वह अंधकारसे प्रकाशमें आनेका प्रयत्न करने लगी और बहुत दूर किसी धुंधले प्रकाशकी रेखाकी ओर देखकर अपने आस पासका अंधकार भूल गई। गंभीर और संयत स्वरमें उसने पूछा—‘क्या आज्ञा है भैया?’

आनंदका कठोर हृदय पिघल गया; वारांगना बननेके पहले उसने अपनी बहनको वीरांगना बनते देखा; उसका हृदय टूक टूक हो रहा था। भविष्य सुन लेनेके बाद तत्क्षण पालीने अपने जीवनके महत् ऐश्वर्य, सुख और प्रसन्नताको मनसे निकाल दिया। पिताकी आज्ञा और वंशगतनियमोंके आगे उसने महारानी का पद छोड़ दिया, शरीरको तिरस्कृत कर दिया, अपनेपनको दबा दिया किंतु केवल हृदयसे वह कुछ न कह सकी; उस आवेशमें उसने उसे भी कुचल दिया! आनन्दने बहनका त्याग और निश्चय देखा; उसने वहाँ बिना आतंकके बलिदानकी स्वीकृति देखी। गर्व, आनन्द और वेदनासे उसका हृदय भर आया। भावाविष्ट होकर उसने बहिनको हृदयसे लगा लिया; आँखोंसे अधुंधारा बही जा रही थी!

बहिन, सुन, यदि तू राजगृह जायेगी तो लिच्छविगण अपनी राजकुमारी को एक मागधीसे पराजित देखकर बिबिसारका वध किये बिना न रहेंगे, और पूरे राष्ट्र पर आपत्तिके बादल मँडरा जायेंगे! यदि तू आत्महत्या करेगी तो पिताजीका वचन निष्फल जायेगा, और बिबिसार यह जानकर कि एक मागधी से विवाह करनेके कारण तूने आत्महत्या की है, लिच्छवियोंसे बैरका बदला लेंगा। बहन, न तू उसके साथ जा सकती है, न प्रेम कर सकती है और न आत्महत्या ही। तेरा पहला काम बिबिसारको समझाना है। हमें शीघ्र ही पिताजी

के पास पहुँचना है'...इतना कहकर वह वहाँसे चला गया; उस विशाल कक्ष में पाली ही रह गई। उस समय निर्दोष और निरपराधिनी पाली एकाकी और निःसहाय थी। रात समाप्त हुई। दूसरा दिन भी बीत गया; वह अर्धरात्रि थी। ब्रह्म-दत्त और संजय पूर्णरूपेण प्रस्तुत होकर अपनी महारानीको ले जानेके लिए आये थे। आनन्दके आते ही बिंबिसारने शीघ्रतापूर्वक जानेकी व्यवस्था करना प्रारंभ कर दिया; उसका हृदय आनन्दसे पुलकित हो रहा था। प्रेमपरीक्षामें हृदय हारकर उसने बड़ी भारी विजय प्राप्त की थी। उसने अपनी प्रेयसीके साथ साथ एक महान राष्ट्रको अपना बना लिया था। उसका हृदय, राजगृहमें पहुँचकर बहुत ही धूम धामसे ध्वजा पताकाके बीच भैरवीनादसे संसारको यह सुनानेको तरस रहा था कि संसारमें उसके समान सुखी राजा और कोई नहीं। अपने प्रबंधकी शीघ्रतामें वह पालीसे मिल भी न सका, पालीने स्वयं अपनेको उसकी दृष्टिमें न पड़ने दिया था। रेवाने बहुत चतुराईसे इस काममें मदद दी थी। किंतु बिंबिसारका मन पालीसे मिलनेके लिए व्याकुल हो रहा था। उन्हें अर्ध-रात्रिमें चुपचाप वहाँसे चले जाना था जिसकी व्यवस्था दो दिन पहले ही हो चुकी थी। रेवा कह गई थी कि—‘समय होते ही, महलयमें देवीको लेने पधारना।’ बाहर रथ प्रस्तुत हो रहे थे। अभिराम, चुपचाप कभी यहाँ और कभी वहाँ जाकर काममें लीन होनेका दिखावा कर रहा था। पालीसे मिलनेके लिए बिंबिसारके पैर धरतीपर टिकते न थे। ब्रह्मदत्तने जानेका मुहूर्त भी निकाल रखा था; ज्योतिषीने कहा था कि यह घड़ी दोनोंके जीवनमें अद्भुत परिवर्तन लाएगी। ठीक मध्यरात्रिके समय, बिंबिसारने पोशाक धारण की; देवपुरुषोंकी तरह मस्तकपर मुकुट था और हाथोंमें रत्नजटित तलवार।

उसी समय द्वार खुलनेकी ध्वनि हुई, बिंबिसारने आँखें उठाकर देखा, वहाँ पाली खड़ी थी।

‘पाली !’ बिंबिसार विस्मयके कारण और अधिक न बोल सका, वह विमूढ़ बन पालीको देखता रहा। पालीने सादे वस्त्र पहिन रखे थे; वह बिंबिसारको देख रही थी। आज बिंबिसारको राजसी पोशाकमें देखकर वह स्तम्भित हो गई—उस समय बिंबिसार मनुष्य नहीं, तावर्तिस+का शक्र

+ बौद्ध शास्त्रोंमें वर्णित इन्द्रका साम्राज्य, शक्र अर्थात् इन्द्र।

दिखाई दे रहा था। हृदय फिर कल्लोलित होकर काँपने लगा किन्तु पालीने निर्दयतापूर्वक उसे कुचल दिया। ओठोंपर बलात् घृणा लानेका प्रयत्न किया; आँखोंमें कृत्रिम क्रोध और धिक्कारका भाव लानेमें वह कृतकार्य हुई। वह वहीं स्थिर बनकर खड़ी थी। बिबिसारके हृदयपर जैसे किसीने वज्रप्रहार किया; उसका स्वर बदल गया, सहसा पालीकी ओर दौड़कर बोला—ये वस्त्र क्यों पहिने पाली ? नंदीग्राम छोड़ देनेका समय हो गया है।’

‘हाँ, तुम्हारे लिए...और मेरे लिए भी !’

बिबिसार, पालीके अप्रत्याशित स्वरसे विस्मित होकर दो ढग पीछे हट गया।

‘मगधके महाराजाको नंदीग्राम छोड़कर जाना होगा क्योंकि उसने मन ही मन जो आशाएँ कलित की थीं, वे आकाशकुसुमकी तरह मिथ्या हैं, झूठी हैं !’

बिबिसारने गंभीर बनकर पूछा—‘क्या कोई नया शत्रु पैदा हुआ है पाली ?’

‘हाँ, तुम्हारे सम्मुख ही खड़ा है।’ अपनी समस्त शक्ति लगाकर पालीने अपने आपको, अपनी आँखों और कण्ठको घृणा और धिक्कारपूर्ण बनाकर पुनः बोलना प्रारंभ किया—‘मगधपति ! एक लिच्छवी कन्यासे प्रेम करनेसे पहिले यह अच्छी तरह सोच लेना चाहिए था कि जिससे तुम प्रेम करना चाहते हो वह एक लिच्छवी कुमारी है। भविष्यमें अब कभी किसी लिच्छवी कुमारीको प्रेम-पराजित करनेका भूठा दम्भ न करना...। राजगृह पहुँचनेपर अपने कुलदेवताको अर्घ्य चढ़ाकर उनका चपकार मानना कि लिच्छवी भूमिसे सुरक्षित रहकर स्वदेश लौट पाये हो। इस प्रासादमें और प्रासादके बाहर कई महारथी योद्धा अभी खड़े हैं; यदि वे चाहें तो मगध-राजको इच्छानुसार दंड दे सकते हैं। सौभाग्यसे तुम एक महान लिच्छवीके अतिथि हो, उसके संरक्षणमें हो !...तुम हमारे शत्रु हो, और लिच्छवी ही शत्रुका सम्मान अच्छी तरह करना जानते हैं।...भले ही हम भेष बदलकर

नाटक करना न जानते हों, पर विशुद्ध मनसे क्षमा करना अवश्य जानते हैं। अब शीघ्र यहाँसे चले जाओ !...'

बिंबिसार वैसे ही खड़ा रहा; उसे विश्वास न हुआ कि यह वही पाली है, जो उसकी थी। उसे पालीसे बोलनेकी जो भी इच्छा थी वह उसकी बातें सुनकर विलीन हो गई। वह कुछ न बोला किन्तु उसने जिस दृष्टिसे पालीको देखा, लगता था कि वह दृष्टि पत्थरको भी टूक टूक कर देगी !

उस समय यदि पालीके स्थानपर कोई दूसरी होती तो वहाँ ठहर भी न सकती। बिंबिसारने कुछ भी कहना व्यर्थ समझा। फर्शपर फेंकी हुई तलवार उसने पुनः उठा ली और मूर्तिके समान स्थिर पालीके पाससे तेजीसे निकल गया। पालीको सुनाई दिया कि एक रथ प्रस्थान कर रहा है, और किसीने अश्वोंको इतने बलपूर्वक चाबुक लगाया, कि उनकी खाल ही फट गई होगी। पाली काँप उठी; उसने अपने हृदयमें चाबुककी वेदनाका अनुभव किया। रथ चला गया, और पाली बेगुध होकर वहीं गिर पड़ी।

आनंद एकदम भीतर दौड़ आया; वह बाहर खड़ा होकर चुपकेसे पालीकी बातें सुन रहा था। वह अपनी बहनके अपूर्व त्यागको, हृदयको निकाल कर बाहर फेंक देनेवाले धैर्यको देख रहा था। पाली और बिंबिसारकी बातें सुनते सुनते वह समस्त संसारके प्रति घृणासे भर गया। वह जानता था कि उसकी अमागिनी बहनके हृदयमें बिंबिसार के लिए कितना प्रेम भरा था। नीरभरे नयनोंसे बहिन ने गोदमें उठाकर उसने हृदयसे लगाया। और चिल्ला उठा—'बहन, मेरी बहना !...'

बाहर खड़े हुए अब दिनहिना उठे। कहीं दूर एक रथ वायुवेगसे दौड़ा जा रहा था।

[१८]

वृद्ध मशानामकी शिराएँ खिंची जा रही थीं। उनकी शय्याके आस पास वैशालीके गगमान्य नेता, महाजेटुक और नगर श्रेष्ठी बैठे हुए थे। वैद्यराज, उन्हें हिमालय की एक जड़ी घीसकर पिला रहे थे; औषधि पीते ही उनके शरीर में जैसे विद्युत् संचार हो गया। धीरे धीरे उन्हें शक्ति आने लगी; तत्क्षण

वे नगरश्रेष्ठीको पास बुलाकर आवश्यक सूचना देने लगे ।

आनन्दका रथ उसी समय महानामके प्रासादके सम्मुख आकर रुका; प्रासादके आगे प्रजाजनोंकी एक भीड़ खड़ी थी । वे अपने नेता लिच्छवी वयोवृद्धकी अस्वस्थताकी बात सुनकर उनके दर्शनके लिए दौड़े आये थे । प्रासादके सम्मुख असंख्य लोगोंको खड़े देखकर पाली आशंकासे भयभीत होकर आनन्दके साथ पिताके पास दौड़ गई ।

महानाम आँखें मूँदकर लेटे थे । वैद्यराजके कहनेसे नगर-श्रेष्ठीको छोड़कर सभी नेता बाहर चले गये थे । नगरश्रेष्ठी ही महानामके पास बैठकर, प्रवेणी-पुस्तकके सूत्र धीरे धीरे पढ़ रहे थे । पालीने आकर महानामके पैरोंमें सिर रख दिया, महानामने आँखें खोलीं । पाली अपना सिर धीरेसे महानामके वक्षस्र गिरा दिया; वृद्ध मुस्कराए । अपना दुर्बल हाथ पालीके सिरपर फेरकर अतीव स्नेह पूर्वक वे बोले—‘आ गई बेटी ?’ उत्तरमें पालीने सिर हिलाया; वह बोल न सकी क्योंकि उसका गला हिचकियोंसे भर गया था । महानामने संकेतसे आनन्दको द्वार बन्द कर देनेके लिए कहा; वह तुरन्त द्वार बन्दकर पिताके पास आकर बैठ गया । महानाम, पाली और वैद्यराजकी सहायतासे तकियेके सहारे बैठ गये । पाली एक हाथ पिताके सिर नीचे रखकर, दूसरे हाथसे उनकी छाती सहलाने लगी । नगर-श्रेष्ठी मंत्रोच्चार करना छोड़ महानामके पैरोंके पास बैठ गये ।

महानाम मंद स्वरमें बोले—‘कई तरहके पाप संसारमें होते हैं, मैंने भी अपने जीवनमें एक पाप किया है किन्तु उसे अपने साथ लेकर मरना नहीं चाहता । बेटा ! तुम मानोगे नहीं कि मैं जीवनमें एकही महान असत्य बोला हूँ जिसे केवल एक ही व्यक्ति जानता है, और वह है हमारा अभिराम । अठारह वर्ष पहिले मैं मल्लोंसे होने वाले युद्धको रोककर, वैशाली लौट रहा था । अति श्रमसे थक जानेके कारण मैं महा उद्यानमें बैठ गया; उसी समय मुझे किसी बालकका क्रन्दन सुनाई दिया । उन दिनों महाउद्यानका रक्षक अभिराम था, वह मेरी सेवा भी करता था । वह उस ओर दौड़ा और लौटनेपर एक अप्सरा जैसी बच्चीको अपने साथ लेता आया । उसे कोई

महाउद्यानके सबसे बड़े आम्रवृक्षके नीचे छोड़ गया था। बच्चीको रोती देख कर मेरा हृदय पिघल गया; मुझे पुत्रियाँ होती थीं पर वे जन्म लेते ही मर जाती थीं। आनंद, तेरी माँ पुत्रियोंको बहुत चाहती थीं। मैं बच्चीको उठाकर अभिरामके साथ गुप्तद्वारसे महलमें ले गया। आनंद, उसी समय तेरी माँने भी एक बच्चीको जन्म दिया; थोड़ी देर बाद जब उस बच्चीको मुझे दिखाने लाये तो मेरे हाथोंमें ही उसके प्राण निकल गये। मुझे भय हुआ कि तेरी माँको उसकी मृत्युसे बहुत आघात पहुँचेगा इस लिए मैंने मृत पुत्रीको अभिरामके हाथोंमें दिया और जीवित बालिकाको अन्तःपुरमें पहुँचा दिया। वही आम्रपाली थी ! आश्चर्य तो इस बातका था कि किसीको जरा भी आशंका न हुई। मैंने इस घटनाको दैवी संकेत मान लिया। आम्रवृक्षके नीचे पाई जानेके कारण अभिरामने उसका नाम आम्रपाली रखा, मैंने उसे मान लिया। अभिराम मेरा बहुत पुराना मित्र है, मैंने उससे यह रहस्य किसीसे भी न कहनेकी शपथ ले ली थी इसलिए मेरे मरनेके बाद भी यह सत्य अप्रकट ही रह जाता, और किसी दूसरे विकृत स्वरूपमें प्रकट होता, इसलिए यह बात मैं अपने मुँहसे कदना चाहता था...पर पाली ! तू हृदय और मनसे मेरी ही पुत्री है। आनंद कईबार मुझपर यही आक्षेप करता था कि मैं और तुम्हारी माँ पालीसे अधिक स्नेह करते हैं !...मेरी आधी सम्पत्तिका स्वामी आनन्द, और आधीकी तू है, पाली ! इन सब बातोंका प्रबंध मैंने नगरश्रेष्ठीसे करनेको कह दिया है। अब तक तू मेरी पुत्री थी, और आगे भी मेरी ही पुत्री रहेगी...! बेटी, नगरश्रेष्ठी और वैद्यराज मेरे परम मित्र हैं, ये लोग कभी भी इस रहस्यको प्रकट न करेंगे। अब मुझे वचन दे कि जीवनपर्यंत तू मेरी ही पुत्री रहेगी। क्षमा करना बेटी, पर मुझे वचन...’बोलते बोलते उन्होंने पालीका हाथ अपने वक्षकी ओर खींच लिया, उनकी आँखें फैलने लगीं।

पालीके सिर पहाड़ टूट पड़ा था। महानामके मुखकी ओर देखकर वह कर्णार्द्र होकर चिल्ला उठी—‘पिताजी...पिताजी !’ किंतु यह सब कुछ न सुनकर नगरश्रेष्ठीके पवित्र मंत्रोच्चारके बीच वृद्धने देह त्याग किया। आनंदने औससे मृत पिताका पदप्रक्षालन किया और विवश मनको बलात् वश करके बाहर आया तथा विशाल जनसमूहको संबोधित करके बोला—‘लिच्छवियों !

वज्रियोंकी इस विशाल भूमिपरसे, बलवान लिच्छवियोंके वयोवृद्ध...मेरे पिताने पितृभूमि को प्रयाण किया है !...'

पाली स्तब्ध बैठी थी; उसने कुछ खाया न था, न वह किसीसे बोली थी। महानामके वचन सुनकर कदाचित्त वह अन्यमनस्क हो गई या उन वचनोंको ही भूल बैठी थी ! रेवाने लाख प्रयत्न किये—रोकर, डरा धमका कर, मनाकर उसे शयनगृहसे बाहर आनेको कहा किंतु सारे दिन पाली वहीं बैठी रही, शयनगृहसे बाहर पैर भी न रखा ! रेवाको भय था कि यदि पाली ऐसी ही रही तो कहीं पागल न हो जाय !

महानामकी अंतिम क्रिया पूर्ण हुई। सारी वैशाली शोकमग्न थी। सैकड़ों नर नारी समवेदनाके लिए महानामके महलमें आ चुके थे, पर पालीकी वह स्थित न बदली ! स्त्रियाँ समझीं कि उसे पिताकी मृत्युसे आघात पहुँचता है, पुरुष समझे कि देशनर्तकी बननेके भयसे मस्तिष्क अव्यवस्थित हो गया है। कुछ भी समझें पर प्रत्येक व्यक्तिकी सहानुभूति पालीके साथ थी। सबोंका हृदय दुःखी था; उनके सर्वप्रिय देश-भक्तके घर पर महान आपत्तिके बादल घिर आये थे। यद्यपि प्रत्येक लिच्छवी, आबालवृद्ध स्त्री पुरुष सब कोई परिषद की आज्ञा चुपचाप मान लेते थे तथापि इस देशनर्तकीकी प्रधाने कइयोंके हृदयमें असन्तोष उत्पन्न कर दिया था। उनकी अन्तर्भावनाकी दृष्टिमें यह प्रथा बलिदान ही नहीं, भीषण क्रूरता थी; एक घातक प्रणाली थी। इस समय उनके असंतोषका सबसे बड़ा कारण मृत महानामकी सज्जनता थी जिसे अभय भी मानता था। किन्तु लिच्छवियोंने, ये सब अन्याय अनुशासित सैनिकोंकी तरह बिना किसी विवादके चुपचाप सहन कर लिये थे !

अभिराम रोता कलपता नन्दीग्रामसे आ पहुँचा; उसने और नगरश्रेष्ठीने मिलकर महानामके महलकी आंतरिक और बाह्य व्यवस्था करनेके लिए बहुत दौड़-धूप की थी। रात होनेपर जब नगरश्रेष्ठी आनन्दके पास आकर बैठे तो वृद्ध अभिराम पालीके पास गया; उसके आते ही रेवा बाहर चली गई। वृद्ध धीरे धीरे पालीके पास बैठा और उसकी पीठपर हाथ फेरकर कानमें बोला—'बेटी !' पाली कुछ न बोली; उसी प्रकार नीचे देखती रही। वृद्धने पीठपरसे

हाथ उठाकर सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—‘बेटी, आँसुओंको न रोक ! इन्हें बाहर बह जाने दे !’...

किंतु अभिरामकी लाइलीने आज उसे आँख उठा कर भी न देखा । अभिराम पालीके हृदयकी हलचलसे अवगत था; वह बाहर आया और महानामका वह मुकुट, जिसे उन्होंने अन्तिम क्रियाके समय स्मरणचिह्नके लिए रख लिया था, लेकर पालीके पास आया । पालीका मस्तक उसी प्रकार नीचे झुका हुआ था । अभिरामने वह मुकुट धीरेसे उसकी गोदमें रख दिया, पाली चौंक उठी, कुछ देर रुककर सहसा उसने मुकुटको बलपूर्वक छातीसे लगा लिया; उसे भ्रम हुआ मानों वह सचमुच महानामके मस्तकको हृदयसे लगा रही है ! अश्रुप्रवाह, जो भीतर ही भीतर अब तक स्तम्भित था, पूरे वेगसे बाहर निकल आया—‘नहीं, नहीं...आप ही मेरे पिता हैं !.. पिताजी... मेरे बापू !’

और अधिक न बोलकर पाली सिसक सिसककर रोने लगी । अभिराम यही चाहता था; उसे विश्वास हो गया कि पाली अब पागल न हो सकेगी । पालीके इस कन्दनसे उसकी आँखें भी भींग चलीं । वह जानता था कि पालीके हृदयमें महानामके प्रति असीम प्रेम है ! पुनः पालीकी पीठपर हाथ फेरकर अभिराम बोला—‘पाली ! वीर पुरुषके उत्तराधिकारी भी वीर ही होते हैं ! तू यह न भूल, कि तू भी एक वीर पुरुषकी उत्तराधिकारिणी है, वीरांगना है ! अब इस उत्तराधिकारका प्रयोग ‘स्व’को भूलकर ‘पर’को अपनानेके लिए करना होगा । तेरे प्रत्येक संस्कारमें नेतृत्व व्याप्त है ! तू साधारण लिच्छवीकी उत्तराधिकारिणी नहीं, महानामकी ‘पुत्री’ है इसलिये तुझसे कुछ महान बातें होंगी और होकर रहेंगी । बेटी, उठ ! हृदयकी उस चोटको छुपाकर अपना कर्तव्य सम्हाल ले !’ रोते रोते पालीने वृद्धके वक्षःस्थलमें अपना सिर छुपा दिया; वृद्ध उसका सिर सहलाने लगा और दूसरे हाथसे पाली न देख सके इस तरह अपनी आँखोंके आसू पोंछ लिये । धीरे धीरे रात गहरी हो चली । रातके बाद दिन और दिनके बाद रात बीतने लगी और पूर्णिमाको एक ही दिन रह गया । महानामकी अन्त्येष्टि क्रियाएँ समाप्त हो चुकी थीं ।

इतने दिनों तक आनन्द बिल्कुल मौन रहा था; अत्यावश्यक होनेपर वह कभी कुछ बोला भी हो, पर नहींके बराबर। नगरश्रेष्ठी आनन्दको समझा रहे थे कि महानामके रिक्त स्थानपर उसे क्या क्या करना होगा... किन्तु आनन्दका ध्यान इन सब बातोंको छोड़कर किसी दूसरी ओर ही था। वह दिनपर दिन खोया-सा रहने लगा जैसे उसमेंका आनन्द कहीं अदृश्य होकर वहाँ केवल जीता जागता शरीर रह गया हो। अन्तिम क्रिया सम्पूर्णा हो जानेके बाद आज दिन भर वह किसीसे एक शब्द भी न बोला था। यह सुनकर पाली और दुखी हुई। पिताकी मृत्युके बाद आनन्द तीन बार नंदीग्राम हो आया था। तीन-चार दिनोंसे पाली पिताकी मृत्युका सब दुःख भूलकर प्राणपणसे आनन्दकी सेवामें लगी रही थी, किन्तु इन सब बातोंसे आनन्द, जल में कमलकी तरह अलित था। किन्तु आज अन्तिम क्रियाओंके सम्पूर्णा होनेके बाद पालीका धैर्य टूट ही गया; भाईकी गोदमें मुँह रखकर वह जोरोंसे रोने लगी।

और तब ही आनन्दका वह अखण्ड मौन टूट सका; उसने बहनको जेहपूर्वक बैठाया; बोला—‘पाली, रो मत ! सचमुच तू ही पिताजीकी सच्ची उत्तराधिकारिणी है; उनका धैर्य और स्थिरता तुझमें अधिक है; यदि तू इसी तरह रोती रहेगी तो दिनको भी रात कहना पड़ेगा ! मैं सोच नहीं सकता कि तुझ जैसा कष्ट किसी और को भी हुआ होगा, पाली !’

‘मुझे कुछ भी दुख नहीं ! भाई जैसा भाई, सामर्थ्यवान भाई मेरे पीछे है, मुझे दुःख किस बात का ? मे बिल्कुल दुःखी नहीं हूँ।’

‘पाली, तेरा दुःख मैं जानता हूँ; भाई और पिता सब कहने भरके लिए हैं, उस रवामीको जिसे तूने अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था, देशके लिए अपने हृदयसे सदाके लिए तुझे दूर करना पड़ा है ! भाग्य-देवी इतनेसे भी सन्तुष्ट न हुई, उसने तुझे मरनेका भी अधिकार नहीं दिया। अब तुझे मृत्युपर्यन्त ऐसा जीवन व्यतीत करना होगा जिसमें पग पगपर अधःपतनका प्रलोभन है ! नहीं, नहीं ! बहिन, संसारका अंत समीप है, प्रकृति मनुष्यपर कुपित है, जगतके

विनाशका बीज लिच्छवियोंमें ही बोया गया है ! देखना, वह फूलेगा, फलेगा और किसी शुभ दिन यह जगत सबोंको अपनी विषमयी शाखा प्रशाखाओंसे आच्छादित करके घोट घोटकर मार डालेगा ! तब ही इस संसारका अन्त होगा, अन्यथा नहीं ! बहन ! अब इस संसारका अन्त होना ही चाहिए !'

'भैया, मेरे भैया ! इतनी घृणा, इतना विषाद किस लिए ? तुम, तुम नहीं रहे ! भैया...'

'हाँ, पाली मैं बहुत सोचता हूँ; किन्तु ज्यों ज्यों सोचता जाता हूँ त्यों त्यों मुझे विश्वास होता जाता है कि ये लिच्छवी लिच्छवीकी तरह न रहें तो अच्छा ! लिच्छवीका जीवन जंबू-द्वीपके किसी अन्य साधारण मनुष्यकी तरह नहीं है वह शस्त्रोंको लेकर जन्म लेता है, शस्त्रोंसे जीता है और मरता भी है तो शस्त्रोंके साथ ! संथागारको छोड़कर तो वह कहीं भी बुद्धि अथवा समझकी बात नहीं करता । संथागारके बाहर वह केवल प्रेम करने और प्राण लेनेकी ही बातें कर सकता है । वह हर समय मरने और मारनेके लिए स्तब्ध रहता है, और इन दोनों घातक कर्मोंमें प्रवृत्त होनेके लिए उसे जरा भी संकोच नहीं होता ! पाली, तू लिच्छवी है, और एक श्रेष्ठ लिच्छवीकी सच्ची उत्तराधिकारिणी है; लिच्छवीके सभी गुण तुझमें हैं; किन्तु तुझमें नहीं ! प्रत्येक लिच्छवी स्वाभाविक रूपसे जो बात सोच सकता है, वह मैं नहीं सोच सकता; मैं जो कुछ सीखा हूँ वह आज मुझे व्यर्थ लगता है, जो कुछ करता हूँ वह निरर्थक मालूम होता है, जो जो विचार करता हूँ वे भी व्यर्थ ही हैं ! नहीं, पाली ! मैं लिच्छवी नहीं हूँ; मैं महानामका उत्तराधिकारी नहीं हो सकता; उनका गौरव तू ही निबाह सकेगी ! ईश्वर तेरा रक्षण करें !'

'ईश्वर ?'...

आनन्द खड़ा हो गया; पाली 'ईश्वर'का नाम बोलकर विस्मित हो उसे देखने लगी—सचमुच आनंद हाथसे निकल चुका था । पूर्णिमा आ गई ।

आज संथागार उमड़ पड़ा था । आज पाली देशनर्तकी बनेगी । वैसे तो वैशालीमें अनेक नर्तकियाँ थीं, किन्तु परिषदकी आज्ञानुसार सर्वमान्य सुन्दरी आम्रपाली, नर्तकी कैसे बनेगी यह देखनेके लिए सब लोग आतुर हो रहे थे ।

उन दिनों वैशालीकी देशनर्तकी दूर देशों तक प्रसिद्ध थी। कई बार वैशालीकी प्रतिष्ठाका प्रश्न भी देशनर्तकीके नृत्य परही निर्भर करता था। तत्कालीन देशनर्तकी अब बूढ़ी होने आई थी, फिर भी वह वैशालीकी वारांगनाओंमें सर्वश्रेष्ठ थी। आज आम्रपाली उसे ही सौंपी जानेवाली थी इस लिए अपनी दासियोंके दल सहित समयपर वह संथागारमें आ पहुँची। ऐसा दिन प्रतिवर्ष नहीं आता इसलिए इसका महत्व भी साधारण न था। महानामकी मृत्युका आघात अभी ताजा ही था फिर भी न जाने क्यों आज श्रोताओं और प्रेक्षकोंकी असाधारण भीड़ इकट्ठी हो गई थी। लिच्छवी नेतागण, राजा और उपराजा तथा प्रत्येक प्रांतके नायक भी आ पहुँचे थे। महानामकी मृत्युके पश्चात सभापति होकर अभय आज गिरिराजकी तरह शांतिधारण करके बैठा था; वह बहुत चतुराईसे सभाको वशमें रख रहा था।

ठीक समय पर आनंद, बहनका हाथ पकड़कर संथागारमें प्रविष्ट हुआ। सभा इन दोनोंके सम्मानमें खड़ी हो गई। दुःख शोकसे दुर्बल होते हुए भी आनंद और पाली केशरिया वस्त्रोंमें सुन्दर लग रहे थे। सभापति अभयराजने आगे बढ़कर कृत्रिम वात्सल्यमयी आँखोंसे दोनोंका सत्कार किया।

प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। आनंदने खड़े होकर कहना प्रारंभ किया—
‘वयोवृद्ध, और वंदनीय परिषद ! मेरे पिताकी मृत्युके कारण उनके स्थान पर मैं आज अपनी बहनको परिषदको सौंपने आया हूँ। पूजनीय परिषद इसे स्वीकार करे !’

नगरश्रेष्ठी, वैद्यराज, अम्बलक जेठुक तथा अन्य श्रेणियोंके महाजेठुक लोग, प्रायः सबही प्रौढ़ और वृद्ध पुरुष नीची आँखें किये बैठे थे। उनके हृदय व्यथित थे जिनमें अभी तक महानामकी मैत्री और प्रेम गूँज रहे थे। अंतर्में सभापति अभय खड़ा हुआ और बोला—पूजनीय परिषद ! स्वर्गीय लिच्छवी वीरकी पुत्री आपके सम्मुख उपस्थित हुई है। यह है लिच्छवी परिषदके स्वातंत्र्यका प्रतीक ! स्त्री हो या पुरुष यदि वह लिच्छवी है तो वह लिच्छवीगण और अपने गौरवके प्राणसे भी अधिक मानता है और यह है

इस बात ज्वलंत उदाहरण ! लिच्छवीको वन्दन हो ! वन्दन हो , आत्मबलि देने वाली आजकी लिच्छवी कुमारीको—!', कहकर अभय व्यासपीठसे नीचे उतरा, और पालीके पास आया । नगरश्रेष्ठीने भींगी पलकों और हँसते मुँहसे विधिपूर्वक बोलनेसे लिए कुछ सूत्र पढ़े; किंतु उससे और अधिक न बोला गया । तब अंतिम वाक्य अभय बोला—' पाली ! परिषद पूछती है कि तेरा मन अभी भी विचलित होता हो तो वैशाली छोड़ कर वनवास कर सकती है !'

' प्रवेणी पुस्तककी आज्ञा है कि विचलित मन वाला लिच्छवी नहीं माना जाता, मैं लिच्छवी हूँ ।' पालीने शांति पूर्वक कहा ।

' परिवर्तनके पहिले यदि कोई इच्छा अधूरी रह गई हो तो परिषद उसे पूर्ण करने देनेके लिए प्रस्तुत है !' चोट खानेके समान अपमानित भावका अनुभव करके अभयने फिर कहा ।

पाली कुछ रुकी, किंतु कुछ सोचकर बोली—' मेरी कोई इच्छा अधूरी नहीं है !'

' तुम प्रसन्नतापूर्वक परिषदका निर्णय स्वीकार करती हो या दुःखी होकर ?'

' प्रत्येक लिच्छवी परिषदके निर्णयका अनुकरण करना ही जानता है; इसमें आंतरिक सुखदुःखका प्रश्न ही नहीं ।'

अंतमें अभयने इधर उधर दृष्टि डालकर राजाओं, उपराजाओं तथा अनुभवी योद्धाओंकी ओर दृष्टि करके पूछा—

' परिषद इस विषयमें और कुछ कहना चाहती है ? परिषदको संतोष है

उपर्युक्त प्रश्न अभयने तीन बार पूछा और परिषदको निरुत्तर देखकर आम्रपालीको देशनर्तकी घोषित की । शंखनाद हुआ और परिषदने खड़े होकर पालीको मम्मानित किया ।

पुनः अभय व्यासपीठसे उतरकर पालीके पास आया, उसका हाथ पकड़कर रेणुकाको बुलाया और बोला—'हे, वैशाली नगरीकी श्रेष्ठ वारांगना ! पवित्र प्रवेणीपुस्तककी आज्ञानुसार पूजनीय, वंदनीय परिषद् आजसे आम्रपालीको तुझे सौंपती है । तेरे बाद वैशालीकी देशनर्तकीका पद इसे

मिले ! इसे तू अपनी सब कलाओंमें निपुण बना कि जिससे यह लिच्छवी योद्धाओंकी प्रेरणामूर्ति बनकर, स्वदेशकी सेवा करते हुए अंतमें पितृलोकमें विलीन हो जाय !'

इतना कहकर अभयने आम्रपालीका हाथ रेणुकाके हाथमें रखा,; रेणु-काने पालीको अपनी ओर खींचा । सभामें नीरव शांति फैल गई । उस समय इधर उधर देखनेपर पालीको ज्ञात हुआ कि आनन्द वहाँ न था ।

सभाके मनोरंजनके लिए वृद्ध रेणुका नृत्यके लिए खड़ी हुई, और ने सब प्रेक्षक, क्या हो गया, इसका विचार करनेकी अपेक्षा, क्या हो रहा है इस ओर ध्यान देनेको उत्सुक हुए ।

सभा विसर्जित होते ही पाली रेणुकाको लेकर अपने प्रासादमें आई; उस समय रात हो गई थी । द्वारमें प्रवेश करते ही व्याकुल सी होकर रेवासे पूछा— 'भैया कहाँ है रेवा ! शयनगृहमें ?...' इतना कहते ही रेणुकाका हाथ छोड़कर पाली शयनगृहकी ओर दौड़ गई । शयनगृहमें नगरश्रेष्ठी और अभिराम खड़े थे ।

'दादा, भैया कहाँ हैं ?'

'धीरज रख बेटी !...'

'दादा, भैया कहाँ गये, क्या हुआ ? झट बोलो दादा !'

'तेरे भैया यहाँ नहीं हैं । और कभी लौटेंगे भी नहीं !'

'क्यों ?...मैं इस महलमें आई हूँ इसलिए ?...दादा, मैं तो उनसे और आप सब लोगोंके आशिर्वाद लेने आई हूँ...उसके बाद मैं यहाँ एक क्षण भी खड़ी न रहूँगी...पर वे गये कहाँ ?'

'बेटी...' नगरश्रेष्ठी कठिनाईसे बोले—'आनन्दने अपनी सारी स्थावर-जंगम सम्पत्ति तुम्हे सौंप दी है, यह महल अब तेरा है !'

'दादा, मुझे कुछ भी समझमें नहीं आता, मैं मूर्ख हूँ, दुःखी हूँ; मुझसे सच बात कह दो !'

'बेटी, आनन्दने संसारका त्याग किया है !'

'दादा !' पाली करुणार्द्र होकर चीख उठी, उससे खड़ी न रहा गया ।

अभिराम उसके पास बैठकर कहने लगा—‘बेटी, वह वेदांतीके साथ गोतम-बुद्धके संघमें श्रमण बननेके लिए चला गया है, उसका पीछा करना या रोकना निरर्थक है; यह भोज-पत्र पढ़ ले !’

पाली वृद्धके हाथसे भोजपत्र लेकर पढ़ने लगी; उसमें पालीके लिए अंतिम आशिर्वाद था; उसकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी ।

अभिराम और नगरश्रेष्ठी बाहर चले गये; केवल रेवा पालीके पैरोंके पास जा बैठी; आज वह भी रो रही थी । वहाँ न रोनेवाला एक ही व्यक्ति था; वह थी दासी भद्रा ।

[१९]

‘महाराज तो खिलखिलाकर हँस पड़े ! तू कहे उसकी सौगंध लेनेको तैयार हूँ संजय, तू कहे उसकी ! इतने हँसे, इतने हँसे कि मुझे भय हुआ कि महाराज समझ खो बैठेंगे ! किंतु नहीं, कुछ भी नहीं, वे तो वैसे ही रहे... संजय ! महाराज अब ठीक हो गये हैं ।’

‘महाराज यदि सचमुच समझ खो बैठते तो और अच्छा होता ।...’ संजयने ब्रह्मदत्तकी ओर देखे बिना कहा ।

‘संजय, मालूम होता है तू भी पागल हो गया है, मुझे तो पहलेसे ही विश्वास था कि तुझे महामंत्रीका पद मिलते ही मस्तिष्कका रोग अवश्य लग जाएगा, और हुआ भी ऐसा ही, तेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है !...’

‘ब्रह्मदत्त, तेरी एक बात सच है ।’

‘मेरी तो सभी बातें सच होती हैं, पर तुम लोग तो मुझे हँसीमें ही उड़ा बेते हो !’

‘मुझे इसी बातका भय है कि महाराज अभी तक वैसे ही हैं ..ब्रह्मदत्त, आम्रपालीको हराने जाकर वे स्वयं हार गये हैं, अब वही हार उनकी घृणाका कारण हो रही है !’

‘संजय, मैं तो यही सीधी गिनती जानता हूँ कि एक और एक दो होते हैं । महाराजको यहाँ आये दो महीने हो गये, ये दो महीने उन्होंने मदिराके

नशेमें ही बिता दिये हैं ! रानियों और नर्तकियोंने उन्हें रिझानेका भरसक प्रयत्न किया पर वे अपनी बातसे न डिगे ! उनके धर्मगुरु गोतममुनि भी उनका मन आम्रपालीकी ओरसे फिरा न सके ! किंतु इस ब्रह्मदत्तने, जिसके प्रत्येक शब्दमें तुम्हें व्यर्थ प्रलाप और भीरुताकी गन्ध आती है, आज एक ही शब्दसे महाराजको हँसा दिया ! सुना संजय ? दो महीनेके बाद पहली बार मैंने उनका सब दुःख, क्लेश, नीरसता और शोक मिटाकर हँसाया है ! पूछ, किस तरह ?

‘ सदाकी तरह आज भी रेवाकी बात ही निकाली होती ।’

‘ मैं जानता हूँ मरते समय स्वर्गीय महामंत्री अपनी सर्वज्ञाता तुम्हे सौंप गये थे । अस्तु, उन्हें हँसाया तो सही न !’

‘ ब्रह्मदत्त, महाराजका हँसना हमारे लिए प्रसन्नताकी बात नहीं, भयकी बात है ! उनकी उस हँसीके पीछे गहरा आघात छुपा है, जो मिटाया नहीं जा सकता । दिन रात उन्हें वैशाली, लिच्छवी और आम्रपालीके नामोंकी रट लगी रहती है ! उस आघातने यदि क्रोधका स्वरूप धारण किया होता तो ठीक था किंतु अब वह घृणामें परिवर्तित हो चुका है ! शत्रुता घृणामें परिवर्तित होकर अपनी अंतिम अवस्थाको पहुँच चुकी है ! मैं महाराजको अच्छी तरह पहिचानता हूँ ।, ब्रह्मदत्त, उनका स्वस्थ होना कठिन है !’

‘ संजय, एक बात मुझे हमेशा विस्मयमें डाल देती है !—मैं पूछता हूँ पालीमें रूपके अतिरिक्त और है क्या ? कुछ नहीं ! तू कहे तो राजगृहमेंसे ही वससे बुद्धिमान स्त्री जब चाहे ला सकता हूँ !’

‘ तू यही मानता है ?’

‘ मैं तो मानता ही हूँ, पर एक दिन मेरी यह बात तुम सबोंको माननी होगी ! कुछ सोच तो सही; एक ओर सम्राज्ञीका पद, नरश्रेष्ठ पति और सारे देशका उद्धार है, और दूसरी ओर लिच्छवी समाजका निकृष्ट बंधन, निकृष्ट खाटुकारी और अत्याचारप्रस्त जीवन होते हुए भी पालीने दूसरी बात ही अधिक पसंदकी इससे क्या ज्ञात होता है ?.. मैं तो एक और एक दो वाली गिनतीमें पूछ रहा हूँ !’

‘ मैं भी दो महीनोंसे यही प्रश्न पूछ रहा हूँ, पर उत्तर नहीं मिलता !’

‘ मिलेगा कैसे ? मुझसे पूछे तब न ! बाबा, एक बात हमेशा याद रखना कि प्रकृतिने जहाँ खुले हाथों सौंदर्य लुगना है, बुद्धिको वहाँसे बहुत दूर रखा है; यही कारण है कि संसारमें दिखाई देने वाली सभी सुन्दर वस्तुएँ मूर्खता पूर्ण और घृणास्पद दिखाई देती हैं । संजय, पाली सुन्दर होते हुए भी बुद्धिमान नहीं है इसका अर्थ ही यह है कि वह घृणामयी है !...पालीने जो मार्ग अपनाया है, वह यही बताता है ।...

‘ मेरा मन यह बात नहीं मानता !’

‘ तेरा मन तो मेरी सभी बातोंका निषेध करता है !...क्या सोच रहा है ?...सच कहता हूँ पाली बुद्धिमान नहीं है ’...

‘ भले ही वह विदुषी न हो, भावुक ही सही पर इतना तो कहना पड़ेगा कि पाली अद्भुत है; नहीं, वीरांगना है !’

‘ वैशालीकी प्रत्येक वस्तु पर तू इतना रीझ गया है कि वहाँका काला कुत्ता भी तुझे सुंदर मालूम होगा ! पाली वीरांगना है ? क्या उसे डूब मरनेके लिए कुआरा न मिला, गंगा दिखाई न दी ? उस वीरांगनासे, शस्त्रास्त्रमें पारंगत होते हुए अपने हाथसे अपना बंधन किया गया जो लाचार होकर नर्तकी बनी ?...पर सच तो यह है महामंत्रीजी ! ये लिच्छवीगण अधर्मी हैं और इन अधर्मियोंमें पैदा होने वाली कन्या कभी भी अद्भुत वीरांगना नहीं हो सकती, समझे !...’

‘ नहीं, ब्रह्मदत्त नहीं...मेरा मन यह बात नहीं मान सकता ।...’

‘ हाँ, महाशय ! मैं कब मना करता हूँ ! आपका मन मेरी बात मानने को कभी तैयार हुआ भी ?...पर सुन ले, आज महाराजके हँसनेसे मुझे शांति मिली है । यह बात निश्चित समझ कि वे पालीके साथ साथ वैशालीको भी भूल चुके हैं ! और यह भी सुन ले कि कत्त महाराज स्वयं जीवककुमार मृत्यु के साथ गोतममुनिके आश्रममें उनसे मिलने जाएँगे, अब तो विश्वास हुआ ?’

‘ नहीं !...संजयने कहा ।

ब्रह्मदत्त खीझकर वहाँसे जाने लगा, संजय कुछ सोचता हुआ उसे देखता रह गया—उसकी बुद्धि इसी दुविधामें थी कि महाराज आज हँसे क्यों ? यही सोचता हुआ वह रंगमहलकी ओर चला, दूरसे ही उसे सुनाई दिया कि महाराज बिबिसार हँस रहे थे । गांधारके उस ओरसे आई हुई नर्तकियोंने नृत्य प्रारंभ किया । राजविदूषक बकुल उन विदेशी नर्तकियोंके हावभावको अँगुलीसे संकेत करके महाराजको हँसा रहा था । नर्तकियोंका नृत्य, संगीत, यौवन-मद और अभिनय मिलकर रंगमहलके वातावरणको उन्मत्त बना रहे थे । आज पुनः महीनों बाद रंगमहलका वातावरण जागृत हुआ । इतनेपर भी संजयको विश्वास न हुआ; वह रंगमहलमें न जाकर, बाहर ही खड़ा रहा । उसे लग रहा था कि रंगमहलकी उन रंगरेलियोंमें भी महाराजका हृदय व्यथित है । अचानक पीछेसे ब्रह्मदत्तने उसे पकड़कर, घबराहटमें कानके पास मुँह ले-जाकर जाने क्या बड़बड़ाया । खीझकर संजयने झटपट उसे एक थप्पड़ लगा दी, और खींचकर उसे अपने भवनकी ओर ले गया । अपनी देहरीमें पैर रखते ही संजयको ज्ञात हुआ कि ब्रह्मदत्तका कहना अक्षरशः सत्य था—**रेवा** आई थी ।

संजयको देखते ही रेवाने उठकर नमस्कार किया, ब्रह्मदत्तको बाहर ही रखकर संजयने द्वार बंद कर दिये और श्वास रोककर पूछा,—‘तू क्यों आई रेवा ?’

इतने लम्बे समयके बाद रेवा राजगृह आई थी; आते ही सहसा संजयके साथ एकांतमें बातें करते देखकर ब्रह्मदत्त ईर्ष्यासे जल उठा रेवाके इस व्यवहारसे वह पहले उसपर जितना मोहित था, उतना ही चिढ़ गया । उसने पाँच क्षणोंमें, दाँत भींचकर और मुट्टियाँ बाँधकर दस बार निश्चय कर लिया कि पहली दृष्टिमें ही वह रेवा और संजयको मार डालेगा !

भीतर संजय शांतिपूर्वक रेवासे प्रश्न कर रहा था और रेवा उसी स्थिर-तासे उसके प्रश्नोंका उत्तर दे रही थी—

‘अब मेरा वहाँ कुछ काम नहीं है...अब मैं वहाँ रह भी न सकूंगी !’

‘रेवा, तू राष्ट्रके प्रति अपना कर्तव्य निवाहनेके लिए गई थी !’

‘पर इसके साथ मैं मनुष्य भी हूँ, आप भूल रहे हैं कि मैं स्त्री हूँ, अब महानामके प्रासादमें रहना मेरा कर्तव्य नहीं !’

‘क्यों ? क्या पाली कुछ समझ गई ? क्या...’

‘नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है !’

‘तब ?’

‘पाली अब नर्तकी है । नर्तकीके घरमें दूसरे गुप्तचर भी अपना स्थान बना लेनेकी तैयारी कर रहे हैं इसलिए अब मेरा वहाँ रहना व्यर्थ है !’

‘रेवा, सच कह पाली कैसी है ?’

‘यह न पूछो; पाली अद्भुत है, इसके अतिरिक्त और कुछ कहनेको नहीं रहता ! महाराज, मगधराजकी गुप्तचर बनकर मैं देश-विदेशमें घूमी हूँ, असंख्य स्त्रियोंके सम्पर्कमें आई हूँ पर आज तक मैंने पाली जैसी कोई स्त्री न देखी; पाली अनूप है, अपूर्व है ! वह प्रातःकालके पहिले उठती है और कुछ पवित्र सूत्रोंका स्मरण करके नृत्य और संगीतमें विभोर हो जाती है ! प्रहर पर प्रहर बीतते जाते हैं; सूर्य और चन्द्रमा उसे विश्रांति लेनेका आग्रह करते हैं पर उसे तो समयकी कुछ सुध ही नहीं रहती; जब तक आँखें अपने आप मुँद न जाएँ वह नृत्यके अध्ययन और अभ्यासमें लगी रहती है । महाराज, पिताके वचनोंको सिद्ध करनेके लिए, देशके लिए किया हुआ पालीका बलिदान देवताओंको भी लज्जित करता है । पालीके लिए आप जो कुछ भी सोचेंगे वह भूटा होगा । पालीके हृदयमें, उसके अणु अणुमें महाराजके लिए अपरिमित प्रेम है । उसने एक लिच्छवी कन्याके रूपमें, वैशालीकी आज्ञाके सम्मान भरके लिए, अपने पिता और देशकी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिए अपना हृदय कुचल डाला है; उस कुचले हुए हृदयको देखनेका धैर्य मुझमें नहीं रहा, इसीलिए मैं यहाँ चली आई हूँ !’

‘तू क्या कहती है रेवा ? तब पालीका वह धिक्कारना ? जो जो घटनाएँ हुई वे...

‘वे सब भूठी हैं महाराज, सब भूठीं ! वह केवल दिखावा था, कठपुतलियों की तरह भूटा ! महाराजको अभिमान था कि उनके शब्द और भाव कोई समझ

नहीं सकता, पर पालीने हृदयके भावोंको छुपाकर, मुखपर कुछ दूसरा ही भाव दिखानेके अभिनयमें महाराजको बुरी तरह हराया है। पाली महान नटी है, महाराज नहीं !... उसने जो कुछ महाराजसे कहा वह बिलकुल भूठा है, मिथ्या है !... महाराज, अब मुझे क्षमा करें ! इन राजकीय दावपेचोंसे दूर रहकर अब कुछ दिन अपने भोले ब्राह्मणके साथ रहनेकी मुझे आज्ञा दीजिए !'

संजयने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया; वह रेवाके इस खेदका कारण समझ गया था ! पाली और बिबिसारके विषयमें जो आशंकाएँ उसके मरिच्छकमें घूम रही थीं वे सब सच निकलीं। महामन्त्रीने उत्तराधिकारके रूपमें जो वरदंशिता और वरपना दी थी वह आज इस कठिन परीक्षामें उत्तीर्ण हुई। जाते जाते रेवाने फिर कहा—'महाराज, एक बात न भूलें, कि महाराज यह बात बिलकुल जानने न पायें, इनका हृदय पलकी ओर जरा भी न खिंचे ! पालीके लिए उनके हृदयमें जितनी घृणा है उसे और बढ़ने देना चाहिए !' पाली यह नहीं चाहती कि उसका पति पालीके पीछे पागल होकर प्रेमकी निराशामें अपना जीवन बिताये, और पीछेसे इसके लिए उसके देशजोंको लज्जित होना पड़े !'

'वही होगा रेवा, अब तू अपने ब्रह्मदत्तसे क्षमा माँग ले ! संजयने द्वार खोलते हुए रेवासे कहा। ब्रह्मदत्तने इतनी देर क्रोधमें और खीझकर लाल-पीला हो जानेके बाद रेवाको फटकारनेके लिए जो कुछ सोच रखा था, वह उसे देखनेपर बोल नहीं सका। वह इतना ही कह सका—मुझे किसीकी क्षमाकी आवश्यकता नहीं, मुझे किसीको क्षमा करना भी नहीं है, मैं होता कौन हूँ ? कोई नहीं !' .. इतना कहकर उसने संजयकी ओरसे मुँह फिरा लिया।

किंतु रेवा तो बिलकुल समीप आकर खड़ी थी, उसकी दृष्टिसे दृष्टि मिलते ही वह ईर्ष्या, द्वेष और क्रोध सब कुछ जाने कहाँ मिलीन हो गये। रेवाका प्रेम हृदयमें जोरोंसे हिलोरें देने लगा। बेचारा भोला ब्रह्मदत्त यह नहीं जानता था कि संजयने रेवाको वैशालीकी किसी गुप्त बातका पता लगानेके

लिए वहाँ भेजा था। रेवा चतुर स्त्री थी और अब तक उसने गुप्तचर बनकर राज्यकी बहुत सेवा की थी। बच्चेको घमकानेके बंगसे नेत्र विस्फारित करके रेवाने ब्रह्मदत्तसे कहा—‘चलो, घर चलो!’ वहाँ मुझे मारवालेके लिए तलवार मिल जायगी!’

‘मार डालनेकी बात कौन करता है!’...इतना कहते कहते तो ब्रह्मदत्त मूसलाधार वर्षा में मिट्टीके ढेलेकी तरह गल गया, क्योंकि अब रेवाने उसका हाथ पकड़ लिया था। वह रेवाकी अँगुली पकड़कर बच्चेकी तरह उसके साथ साथ चलने लगा। संजय अपने भोले मित्रको देख रहा था, वह धीरेसे बोला—‘ब्रह्मदत्त कहें या बिबिसार, प्रेमके साम्राज्यमें तो सब बराबर हैं...’

‘संजय, संजय! भूल हुई, महामंत्री कुछ सुना?’

संजयने चौककर पीछे देखा कि बिबिसार एक सुन्दरी परिचारिकाके कंधे-पर हाथ रखे उसके भवनमें प्रविष्ट हो रहा था। संजयने भट वहाँ जाकर अपने कंधेपर महाराजका हाथ रखा; परिचारिका बाहर चली गई। बिबिसार मदिराके मदमें चक्कूर था, शय्यापर गिरते ही बड़बड़ाने लगा—‘सुना संजय रंगमहलमें अभी ही एक दूत आया है, उत्तर कुरुसे मैंगनी आई है! कहते हैं, कहते हैं...’

कहते कहते तो वह इतनी जोरसे हँसा कि संजय भी घबरा गया।

‘कहते हैं, संजय, हमारी राजकुमारीका पाणिग्रहण करो, नहीं तो युद्धके लिए तैयार हो जाओ। सुना संजय! विवाह करनेके लिए भी बलात्कार...’

कहकर वह फिर हँसने लगा, किंतु संजयको चुप देखकर, चुप हो गया और बच्चेकी तरह जैसे अपना दोष मानते हुए बोला—‘बुरा लगा महामंत्री? तुम आज्ञा दो तो विवाह करूँ, न दो न करूँ...हम तो बस विवाह करना जानते हैं, यह तो तुम अधिक जानते हो कि महाराजको क्या करना चाहिए! पर इस तरह मुँह उतारकर तुम्हारा बैठना मुझे नहीं सुहाता!’

‘महाराज, मुझे दुःख किस बातका? आपने कही यह तो बहुत प्रसन्नताकी बात है, आज सम्राट कितने प्रसन्न हैं!...मागंधी प्रजा महाराज की यह हँसी देखनेके लिए कितनी तरस रही है? मैं क्यों दुखी बनूँ प्रभु?’

‘मैं मानता हूँ तेरे मुँहपर एक बात होती है और मनमें दूसरी ही, महामंत्री है न ! तू निराशासे ही जीता है ! जी; उसीमें सुखी रह !’

संजयने बात सुननेका बहाना करके एक रेशमी तकिया उसके सिरके नीचे रख दिया और पासकी ही एक नीची बैठकपर बैठकर शान्ति पूर्वक बोला—‘क्या आज्ञा है ?’

संजयके इस प्रश्नमें इतना अर्थ भरा था, इतना मर्म था कि नशेमें होते हुए भी बिंबिसारका मुँह उतर गया । संजय उसका महामंत्री होनेके साथ ही साथ बचपनका मित्र भी था । वह जान गया कि संजय उसके मनकी बात समझ गया है, वह उसके हृदयकी वेदना और निराशाको अच्छी तरह समझता है । क्या दूत रंगमहलमें महामंत्रीकी आज्ञा बिना पहुँच गया होगा ?... यह जानते हुए भी वह संजयके पास हँसीकी बात निकालकर नशेमें ही वहाँसे क्यों चला आया, यह बात संजय सकारण जानता था । बिंबिसारने हृदयकी भावनाओंको और अधिक छुपाना व्यर्थ समझा निराशाकी ठंडी साँस रोकते हुए भी मुँहसे निकल ही गई । उसने पूछना चाहा कि पालीके बारेमें कुछ सुना है ?...पर बोला नहीं गया । सिर झुका लिया और मद्यपात्र हाथमेंसे धीरेसे नीचे गिरा दिया । तब रेशमी तकिये पर सिर डालकर थके हुए स्वरमें बोला—‘क्या आज्ञा है महामंत्री ?...’

‘प्रभु, आप बहुत ही...’

‘मेरी प्रशंसा करना चाहता हो तो बोलना बंद कर दे !’

‘देव, दुर्बलता सबके हृदयमें होती है, पर आप जैसे सम्राटके लिए उसे नष्ट करना असम्भव नहीं !’

‘मैं दो महीनेसे अपने मनको यही बात समझाता रहा हूँ, संजय !’

‘अन्तमें यही समझ आपके लिए सुखदायी होगी !’

‘होगी भी ?’

‘होनी ही चाहिए...’

‘संजय, स्त्री जैसी विश्वासघातिनी...’

‘महाराज !’

‘क्या है ?’

संजय जान गया था कि बिंबिसार किस स्त्रीके बारेमें बोलना चाहता है, पालीका नाम न आ जाय इसलिए उसने मुस्कराकर कहा—‘आपने कल मुझे वचन दिया था कि आप स्त्रीके बारेमें कुछ न कहेंगे ?...’

‘संजय, अब मैं समझा, मैं महान नहीं हूँ, तू मुझे महान बनाना चाहता है ! कल मैंने मदिराके नशेमें कह दिया होगा कि मैं स्त्रीके विषयमें कुछ न कहूँगा, यही बात आज मदिराके नशेमें तू मुझसे मनाना चाहता है ?’ ‘अच्छा, मान लेता हूँ ! पर कल क्या मानूँगा ! कल मैं...’

‘महाराज, इतनी निराशा आपको शोभा नहीं देती !’ संजय आवेशमें बोल उठा ।

बिंबिसारने उसकी ओर ध्यान न दिया वह कहता गया—

‘संजय, जानता है मदिरामें एक महान गुण है ! नहीं, तू नहीं जान सकता, पिये तब न ? जो पीनेवाला निर्धन भी हो तो पीनेके बाद वह समझता है कि ‘मैं महाराजा हूँ,’ और मुझ जैसा राजा पीता तो समझता है—‘मैं कुछ नहीं हूँ, उसे मार्गपर चलनेवाला साधारण मागधी बनना अच्छा लगता है ! वह रानियाँ नहीं चाहता, ऐश्वर्य नहीं चाहता, रूप और यौवन नहीं चाहता; चाहता है एक साधारण मागधीको उपलब्ध स्वाभाविक सुख । मदिरा पीकर वह स्वप्नलोकमें विचरण करता है, और कुछ समय तक वह स्वप्न उषके लिए सत्य बन जाता है !’

‘महाराज, स्वप्नको मिटते देर नहीं लगती ! आप जो शांति चाहते हैं वह स्वप्नमें नहीं मिलेगी, जेतवनाराममें प्राप्त होगी !’

‘तू शाक्यमुनिकी बात करता है ?’

‘हाँ महाराज, गौतमबुद्ध यहाँ पधारे हैं, कल आप वहाँ चलिए; उनके सान्निध्यसे आपको शांति मिलेगी ! वे आपके मित्र और सम्बन्धी हैं !’

‘और मुझसे पाँच वर्ष बड़े हैं यह कहना क्यों भूल गया ?’

‘हाँ महाराज, तथागत वर्षावास यहीं बिता रहे हैं; इन दिनों आप उनसे एक बार भी नहीं मिले !’

‘नहीं मिला ?’

‘एक बार भी नहीं, महाराज !’

‘क्या कह रहा है ?’

‘हाँ महाराज ! दो महीनोंके बाद आप आज ही रंगमहलसे बाहर निकले हैं !’

‘ऐं !’

‘कल उनका वर्षावास समाप्त होगा और तथागत अवन्तीकी ओर प्रयाण करेंगे’

‘कल मैं शाक्यमुनिसे मिलूँगा, उन्हें रोक्कूँगा और कहूँगा कि, संजय कहता है—शाक्यमुनि मदिरासे अधिक प्रभावशाली हैं...तब शाक्यमुनि कहेंगे...कि...’

नशेमें गिरते हुए महाराजके पैरोंको संजयने शय्यापर रखा । महाराज निद्रामग्न हो रहे थे; संजयका संकेत पाकर परिचारिका भीतर आई और रत्नजटित मौर पंखेसे महाराजको हवा करने लगी ।

संजय जब शयनगृहसे बाहर आया तो उसकी आँखे आँसुओंसे छलछला रहीं थीं । बहुत प्रयत्न करनेके बाद महामन्त्री हृदयकी दुर्बलताको दूर कर सके । शयनगृहसे बाहर आकर उसने द्वार बन्द किये और आँसू पोंछकर वहीं बैठ गया ।



आम्रपाली

[दूसरा भाग]

आम्रपाली

[१]

आज सारी वैशाली नगरी आनन्दमें नृत्य कर रही थी; आश्विनी पूर्णिमा होनेके कारण आज वैशालीका वार्षिक महोत्सव था। यह केवल लिच्छवियोंके लिए ही नहीं बल्कि वज्जिभूमिके समस्त निवासियोंके लिए शुभ दिन था, जिसे मनानेके लिए मुख्य लिच्छवियोंके अतिरिक्त दूसरे वज्जि भी वैशालीमें आते थे। आज देशकी समस्त प्रथम श्रेणीकी नर्तकियाँ, नट संगीतज्ञ और योद्धागण वहाँ एकत्रित हुए।

किन्तु आज वैशालीके लिच्छवियोंमें सदासे अधिक चंचलता दिखाई दे रही थी, क्योंकि आज पाली संथागारमें अपना सर्वप्रथम नृत्य दिखाएगी और उसके बाद समस्त वज्जियोंके सम्मुख महाउद्यानमें अपना नृत्यमय अभिनय प्रदर्शित करेगी।

आज सदाकी तरह संथागार राजनेताओं और समाजनेताओंसे भरा हुआ नहीं, वहाँ केवल युवकोंकी सभा थी। प्रातःकालसे ही वैशालीके ससिक नवयुवक संथागारमें आसन पानेका प्रयास करने लगे।

सूर्योदयके ठीक दो घड़ी पश्चात् नृत्य प्रारम्भ करना निश्चित हुआ था। पाली पाँच महीनोंके बाद जनसमूहके सम्मुख पुनः आनेवाली थी। प्रारम्भसे कुछ ही पहिले अभयरज वृद्ध रेणुकासे कह रहा था—‘एक सहस्र

कहापण * और एक सइल पादजे तुके अनी पुरस्कृत कर दूँगा'...कइते कइते उसने पास खड़े हुए दासकी ओर आँखें घुमाई और बोला—'इसके अतिरिक्त इतनी ही रकम फल और भेज दूँगा...पर आजकी रात मेरी होगी !'

रेणुका कुछ देर तक अभयकी ओर एकटक देखती रही तब ओठोंपर मृदुहास्य लाकर बोली—'अभयराज ! याद है, मेरी प्रथमरात्रिको तुमने पाँच सहस्र कहापण दिये थे ।'

'आज वह समय याद करनेकी आवश्यकता नहीं है !'

'मुझसे भूल गई ! उस समय आप युवक थे, आज आपका 'मन' युवक है ।...'

'रेणु, मैं अपना निरवयव पूरा किये बिना नहीं रहता; आज तू उसे पूरा करेगी-।'

'जी नहीं; उसका पूरा होना पाली पर निर्भर है !'

'सबसे पहले मेरा अधिकार है क्योंकि मुझसे पहले यहाँ कोई नहीं आया और किसीने अनी तक मुझसे अधिक मूल्य नहीं दिया । रेणुका यह न भूलता कि अनी भी मैं वही योद्धा हूँ और अनी तक मैंने शत्रुओंका त्याग नहीं किया है । ..',

इतना कहकर दासको थैली वहीं रख देनेका संकेत करके वह जाने लगा; रेणुका आँठ चबाती रह गई । उनकी प्रवृत्ति इच्छा हुई कि अभयके पीछे दौड़कर वह उसकी पीठमें कटार भोंक दे; किन्तु इस शुभ दिनको यह कार्य आतिथेयनरुप सफलता मुष्टियों बाँधे वह घरमें चली गई । वह जानती थी कि कोई भी योद्धा देवार्थकी द्वासे अकारण ही लौटकर नहीं जाता ।

संथागारकी सभाकी घड़ी आ पहुँची । प्रत्येक प्रेक्षक श्वास ऊँचा करके

* कहापण, पाद, और मास ये तीन उस समयमें चलनेवाले सिक्के थे; पाद, कहापणका चतुर्थांश होता था । सुवर्ण और निष्क स्वर्णनिर्मित थे इसके अतिरिक्त 'कंस' और 'काकणिका' नामके सिक्के भी प्रचलित थे ।

विस्फारित नेत्रोंसे एकटक द्वारकी ओर देख रहा था। शंख, मृदंग, वीणा, भेरी, वंशी इत्यादिसे सुसज्जित वाद्यसमूह ‘तूरीय’ तैयार था। सभापति अभयराज आज युवकोंके नीचमें बैठा था; इतनी देर चुप रहनेके बाद अब वह प्रसन्नतासे खिल उठा था, क्योंकि उसने जो कुछ सोचा था वह आज पूरा होने जा रहा था। अपनी सफलताके गर्वसे वह अभिमत हो रहा था; केवल प्रतिस्पर्द्धी युवकोंका भय था; इसके लिए भी उसने कुछ निर्णय कर लिया।

कई दर्शकोंको शंका थी कि पाली इतने दिनोंमें म्लान और दुर्बल हो गई होगी; कई लोग इसके विपरीत अनुमान कर रहे थे। पालीके लिए दो तरहके मत न थे किन्तु उसके नृत्यके बारेमें लोग अलग अलग अनुमान लगा रहे थे। सब ही व्यक्ति पालीपर सबसे प्रथम दृष्टि डालनेके लालायित हो रहे थे कि पाली वहाँ आ गई। आते ही उसने प्रत्येकको विमूढ़ बना दिया।

उस समय पाली मानुषी नहीं, अप्सरा ज्ञात होती थी। मानों उसके सौन्दर्यकी कल्पना करके ही वे दस्त्राभूषण तैयार किये गये थे। पुष्पाच्छादित और सुव्यवस्थित धूँधरवाली अलकें, काजलसे अंजितः आँखें, और तरहके सुगंधित प्रलेपोंसे-महकती हुई उसकी देहलताने प्रथमदृष्टिने ही दर्शकोंको मदमत्त वरना चाहा। नागिनीकी कुंडलीकी तरह बँधा हुआ जूड़ा और ललाटपरकी तिलकबिंदीने दर्शकोंको इतना विमुग्ध बना दिया कि अभयकी वह अतृप्त पाशविकता भी निमिष भरके लिए कुंठित हो गई और उस विशुद्ध सौन्दर्यको निहारनेमें वह अपनी सुधबुध खो बैठा !... पालीकी आँखों या ओठोंपर प्रसन्नता अथवा उत्साह परिलक्षित नहीं हो रहा था, केवल उसका देवोपम सौन्दर्य अपने सोलहों शृंगारमें सज्जित होकर दर्शकोंकी आँखोंको अतिरंजित कर रहा था। उसके मुखपर पूर्ववत् गर्व था, वही मद और निर्भयता थी। संगीत प्रारम्भः हुआ और जब पालीके चरणोंमें लिपटे हुए स्वर्ण-धुंधुराँने मृदंगकी तालपर धिरकना शुरू किया तो सभा सबसे अधिक स्तब्ध हुई।

नाचते नाचते पालीने अपने कुंकुमरंजित पदोंकी विशिष्ट कलाके द्वारा लिच्छवियोंकी विजयध्वजापर चिह्नित, लिच्छवियोंका प्रतीक चिह्न धरतीपर चित्रित कर दिया। पालीकी ताल, हाव भाव और अंगपरिचालनके साथ संगीतविशारद संगीतज्ञ भी अपना सिर हिलाने लगे। पालीके इस चमत्कारमें किस शक्तिका हाथ था यह तो कोई नहीं जान सका पर इतना निश्चित था कि वह नृत्य श्रेष्ठ कोटिका था; मानों पालीने नृत्यहीके लिए जन्म लिया हो ! धीरे धीरे नृत्यकी गति तेज होने लगी और उसने स्थानकी मर्यादाको तोड़ दिया, एकके बाद दूसरी पंक्तिके क्रमसे पाली प्रत्येक प्रेक्षकके पाससे नाचती हुई निकल गई। वे दर्शक भी साधारण न थे, उन्होंने अनेकों नृत्य अबतक देख डाले थे, किन्तु यह नृत्य सबसे अद्भुत था। प्रेक्षक जान न सके कि नृत्य समाप्त कब हुआ; अपने प्रथम नृत्यमें ही पालीने उन्हें इतना विमूढ़ बना दिया था कि जब रेणुकाको लेकर पालीका रथ महाउद्यानकी ओर अदृश्य हो गया तब प्रेक्षकोंको ज्ञात हुआ कि पाली सभामंडपमें न थी !

‘बेटी, प्रथम उपहार लेनेके लिए भी न खड़ी न रही ?’ रेणुकाने चलते हुए रथमें बोलना प्रारम्भ किया।

‘माँ, उपहार लेनेके लिए मुझे खड़ी न रहना होगा, उपहार देनेवाले खड़े रहेंगे !’

‘तू झूठ नहीं कहती, पर बेटी, आजका नृत्य तुझे किसने सिखाया ? मैं तो इसे जानती भी नहीं !’

‘लिच्छवियोंकी सभामें पैर रखनेके बाद देशनर्तकीको सीखनेके लिए कुछ भी शेष नहीं रहता; अपने आप उसे नये नये नृत्योंकी प्रेरणा होती रहती है !’

‘झूठ कहती है, तू !’

‘हाँ, आधा झूठ, और आधा सच है ! इसलिए तो यहाँ आई हूँ !’

‘यहाँ ? अरे, तू जा कहाँ रही है ? महाउद्यान तो दाहिनी ओर रह गया !’

‘वन विहार करने जा रहे हैं !’

‘वन विहा...र, बेटी, नर्तकीके लिए शरीरकी रक्षा बहुत आवश्यक है !’

‘मैं जानती हूँ माँ ! जानती हूँ कि यह शरीर देशका है पर क्या कहूँ !’

बीते पाँच महीनोंमें अनुभवी रेणुकाने पालीको देशनर्तकीके जीवनकी अनेक रहस्य-कुंजियाँ बता दी थीं, जिससे कि उसके जीवनमें घटने वाली निराशा, घृणा, और विराग अधिक समय तक टिक न सके। रेणुकाने पालीको उन स्थानोंसे सावधान कर दिया, जहाँ उसने अपने बीते जीवनमें ठोकरें खाई थीं। उसने पालीको समय और संयोगोंमें तद्रूप हो जानेमें निपुण कर दिया था। वृद्ध रेणुका ही पाँच महीने पहिलेकी नीरम पाली और आजकी पालीमें परिवर्तन कर पाई थी। पति, पिता और बंधुके जानेके बाद यदि रेणुका न मिली तो बहुत संभव था कि पाली भी इस संसारसे प्रयाण कर देती; रेणुका ने ही उसे सहसा आये हुए दुःखोंका सामना दृढ़तासे करना सिखाया; वह पालीकी नस नससे अवगत थी। सचमुच वह पालीकी माँ थी। किन्तु उसने सोचा न था कि पाली संथागारके नृत्यमें इतना उत्साह दिखाएगी। पालीने वहाँ इतनी प्रचण्ड स्फूर्तिसे नृत्य किया मानों कोई भैरव या वैताल उसके शरीरमें संचरित हो गया हो और वही अब उसे बलात् वनविहारके लिए खींच लाया हो। रथ सहसा रुक गया।

पाली रथमेंसे उतरकर एक आम्रवृक्षकी ओर बढ़ी, तब ही रेणुकाको सुध आई कि पाली उसे लिच्छवियोंकी स्मशान भूमिमें ले आई थी। पाली जिस वृक्षकी ओर जा रही थी, आजसे पाँच मास पूर्व उसीके नीचे महानामकी मृत देह सुलाई गई थी और वनके गोचर अगोचर प्राणियोंने उसका भक्षण किया था। उसी वृक्षकी जड़में महानामकी खोपड़ी और अन्य अस्थियाँ गाड़ी गई थीं। पालीने फूल चढ़ाकर प्रणाम किया और आकाशकी ओर मुँह करके आँखें मूँदकर बोली—

‘स्वर्गीय पिता ! आज आपकी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई है। जिस संथागारमें आपका प्रत्येक शब्द सत्य होकर रहता था, वहीं आज आपके अंतिम शब्द भी सत्य हुए हैं ! पिता, आप निश्चिन्त रहें, पाली जीवन भर लिच्छवियोंकी सेवा करेगी ! पितृआत्मा तृप्त हो; स्वस्थ हो; मेरा पुण्य तेरे उर्ध्वगामी पथको प्रशस्त करे ! जय हो, पुरुषसिंह ! लिच्छवियोंके पिता, जय हो !’

अंतिम शब्द ऊँचे स्वरमें बोले जानेके कारण रेगुकाने सुन लिये; पाली के निकट जाकर वह चकित हो गई। पालीके कपोलोंपर आँसूकी धारा बही जा रही थी; स्वयं महानामकी तनुजा न होनेका ज्ञान होते हुए भी, आज उसके वंशज होनेका कर्तव्य सफल हुआ। उसका मुख, सारी देह पुलकित हो गई, मानों उसकी आत्माको घोटनेवाला बन्धन सदाके लिए दूर हो गया हो। अब रेगुकाने जाना कि संथगारके उस नृत्यके पीछे कौन सी प्रेरणा थी। पालीने आँखें खोलीं; रेगुकाने बहुत स्नेहसे उसके आँसू पोंछे। पाली बोली— ‘माँ, अब तू यहाँसे निश्चित होकर चली जा, अपना जीवन सार्थक कर; आज-से मैं तेरा स्थान ग्रहण करती हूँ, मैं उसे अच्छी तरह समहाल लूँगी !’

‘नहीं बेटी, अभी मेरे जानेका समय नहीं हुआ, पाँच महीने बाद होगा !’

‘पाँच महीने !’ पालीने सिर झुका लिया; रेगुका उसका हाथ पकड़कर रथकी ओर ले गई।

महाउद्यान वज्रियोंसे भर गया था। अपने अपने विविध-शृङ्गारोंमें सजकर कन्याएँ, युवतियाँ और वृद्धाएँ वहाँ आ पहुँची थीं। मद्यप्रिय युवक और यौवनप्रिय वृद्ध लोग मस्त हाथियोंकी तरह झूम रहे थे। महाउद्यान आज भोग विलासकी भूमि बन गया था। वहाँ वज्रियोंका ऐश्वर्य और आनन्द अपनी चमकसे संसारको चकाचौंध कर रहा था क्योंकि संसारकी एक श्रेष्ठ वस्तु वे, आज अवश्य देखने वाले थे; चाहे वह उन्हें प्राप्त न हो !

सहसा पाली उस नन्दन-वनमें प्रविष्ट हुई; कुछ समयके लिए वहाँका कोलाहल बहुत बढ़ गया। आज :पालीको देखनेके लिए दूर दूरसे रसिक वज्रि और लिच्छविगण आये थे। पाली आकर एक आम्रवृक्षके नीचे खड़ी हो गई; वृक्षके आस पास पत्थरकी गोल बैठकें सजाई गई थीं। यह वही आम्रवृक्ष था जिसके नीचे वर्षों पहले अभिरामने पालीको पाया था !

संगीत प्रारंभ हुआ; तत्क्षण कोलाहल शान्त हो गया। पालीके प्रथम अंगपरिचालनने ही दर्शकोंको विमुग्ध कर लिया। पालीके कलापूर्ण अंगोंका संचालन, देहसुषमाका आकर्षक दर्शन, आँखें, ओंठ, हाथ और पैर सब उस नृत्यमय अभिनयको उच्चतर बना रहे थे। धीरे धीरे दर्शक लोग नृत्य-

के साथ साथ ताल देने लगे, उसके सम विषम पर हर्षनाद होने लगा; इस तरह एक नृत्य पूरा हुआ हुआ ।

नृत्यके समाप्त होते ही प्रशंसाकी ध्वनिसे आकाश गूँज उठा । रेणुका घबरा गई, क्योंकि पालीको तत्क्षण दूसरा नृत्य प्रारम्भ करना पड़ा; समूहके आमन्त्रणको अस्वीकार करना गिरते हुए आकाशको रोकने जैसा था । दूसरा नृत्य प्रारम्भ हुआ; उसके बाद भी उसी आनन्द-ध्वनिकी गूँज हुई । पालीको तीसरी बार नृत्य प्रारम्भ करना पड़ा; दूसरा उपाय न था । रेणुका व्याकुल हो कर इधर-उधर दौड़ने लगी और दर्शकोंको समझाने लगी । तीसरा नृत्य भी समाप्त हुआ । पुनः एक बार प्रशंसा और प्रसन्नताकी मिश्रित ध्वनि गूँज उठी ।

पालीके अंग प्रत्यंग अतीव परिश्रमसे शिथिल हो गये थे; उसकी कोमल देहपर पसीनेकी धाराएँ बहने लगी थीं । उस हर्षध्वनिमें पाली चौथी बार फिर खड़ी हुई, किन्तु नृत्यके प्रारम्भमें ही पहली चाल पूरी होते न होते वह नीचे गिर गई ।

सहसा महा उद्यानमें हाहाकार मच उठा । रेणुका चीखी और दौड़कर पालीको अपनी गोदमें ले लिया । आजका महोत्सव पालीके अनुपम नृत्यसे प्रारम्भ होकर, नृत्यके बाद इस अन्तिम घटनासे मंद हो गया, किन्तु पाली आजसे वज्जियोंकी दृष्टिमें भूत और भविष्यके लिए अद्वितीय नर्तकी बन गई ।

कुछ देर बाद पाली सुधमें आई और सबसे पहिले उसकी दृष्टि अभय पर पड़ी—वह अपने सदाके विषमय हास्यके साथ पालीके पैरोंके पास खड़ा था ।

महाउद्यानसे अपने प्रासादमें आनेके बाद भी पाली बहुत देर तक यों ही निश्चेष्ट पड़ी रही । अभय साथ ही था, रेणुकाने उसे शयनगृहसे बाहर आनेका संकेत किया, और शयनगृहके द्वार बन्द करा दिये । तब वह अभयके साथ उद्यानमें आकर बैठी ।

‘रेणु, तुझे याद है, पालीके इस महलको एक हजार युवकोंने घेर लिया था ।’

‘और आपने उन्हें समझाकर लौटा देनेके लिए दो प्रहर तक कठिन-

प्रयत्न किया यह भी मैं जानती हूँ ।’

‘अब इसका मूल्य जब मिले तब सही । पर आज यहाँ रहनेका अधिकार मेरा है ।’

‘अभयराज, सुनो ।’

‘कह, क्या तू भी मुझे उपदेश देना चाहती है ? महानाम भी ऐसा ही करते थे । पर मैं सदा इन उपदेशकोंसे घृणा करता आया हूँ; मैंने निश्चय किया है कि सबसे पहले पालीको मैं पाऊँगा और पाकर रहूँगा ।’

‘सबसे पहिले ?’ रेणुकाने कटाक्ष किया ।

‘हाँ !’ पूरे विश्वासके साथ वृद्ध अभयने उत्तर दिया ।

रेणुका हँस पड़ी, बोली—‘अभयराज ! आपने सदा ही अजित होनेका दम्भ किया है, जिस समय मुझे देशनर्तकी बनाई तब तुममें जितनी नीचता, उच्छ्वलता और पशुता थी वह आज सहस्र गुनी बढ़ गई है । ईश्वर जाने, प्रकृतिने उन्हें बढ़ने भी कैसे दिया...पर अब बुढ़ापेमें न सुना जाता हो तो ऊँचे स्वरसे कहती हूँ, सुन लो—पालीने तुम्हारे मुँहपर सबल थप्पड़ लगाई है ! तुम्हें उसने हराया है, विजित किया है—पाली कुमारी नहीं है !’

‘रेणु, मुझे मूर्ख बनानेकी बात न कर !’

‘नहीं, महाशय ! आप जो मूर्ख बन चुके हैं उसकी बात कह रही हूँ !’

‘शयनगृहके द्वार बंद कर दिये हैं, इसीलिए कहती है ?’

‘नहीं, वे तो आप अपने अधिकारसे खुलवा सकते हैं, पर अब आपको पाली नहीं मिल सकती !’

‘दिखता हूँ ।’

‘दिखनेकी नहीं, सुननेकी बात है—सुन लो !...पाली शयनगृहमें अकेली नहीं है, उसके शरीरमें एक दूसरा प्राणी भी है, जो ठीक पाँच महीनोंके बाद सबोंको दर्शन देगा...और तब ही वृद्ध और अजित अभयराज जान पाएँगे कि सबसे पहिले पालीको पानेवाला पुद्गल किसे दूसरा ही है ! इसीलिए मैंने द्वार बंद किये हैं, पाँच महीने बाद खुँतेगे, नमस्ते !’...

रेणुकाने वाक्य पूरा भी न किया था कि द्वार खुल ही गये और पाली

बाहर निकली; वह प्रासादके प्रवेश द्वारकी ओर दौड़ी जा रही थी। रेवा और अन्य दास-दासियाँ भी उसके पीछे दौड़ने लगे; अभय और रेणुका भी विस्मित होकर, दौड़ते हुए प्रवेश द्वार तक आ पहुँचे। तब कहीं उनकी आँखें खुलीं—रक्तराजित तलवार हाथमें लेकर सुधीर द्वारके बीचोंबीच खड़ा था; बलात् रोकनेका प्रयत्न करनेमें दो युवक कट चुके थे और यदि पाली वहाँ दौड़ती हुई न जा पहुँचती तो संभव था और दो-चारको वह सदाके लिए सुला देता। किन्तु पालीको आई देखकर उसका क्रोधसे काँपना अचानक रुक गया और वह स्थिर दृष्टिसे एकटक पालीको देखने लगा। वह मुस्कराकर उसकी ओर बढ़ी; सुधीरने तलवार फेंक दी और मुँह फिराकर दूसरी ओर जाने लगा। पाली जान गई थी कि सुधीर उसका पागल प्रेमी है। द्वारके आस-पासकी कानाफूसी और रोनेकी चिल्लाहटसे उसे ज्ञात हुआ कि सुधीर अपने गाँवसे यहाँ भाग आया था और पालीके प्रासादमें प्रवेश करते समय रोकने वालेके हाथसे तलवार छीनकर दो अन्य रोकनेवालोंके प्राण ले लिए थे। कुछ देर तक पाली सुधीरको देखते रहनेके बाद बोली—

‘रेवा, आजसे हमारे महलमें इस पागलके रहनेकी व्यवस्था कर दे।’

इतना कहकर धीरे धीरे वह शयनगृहकी ओर चली गई; न उसने अभयको देखा, न रेणुकाको।

रात हो गई थी। पाली व्याकुल होकर शय्यामें करवटें बदल रही थी; उसका मस्तिष्क इसी दुविधामें था कि क्या नियतिने उसके भाग्यमें अपने प्रेमीको दुःखी देखना ही लिखा है? वह पागल सुधीर और बिबिसारकी तुलना करने लगी; एक उसके पीछे पागल हुआ था, और दूसरेके पीछे वह स्वयं उतनी ही पागल हुई थी। सहसा उसकी दृष्टि शय्याके पास रखी हुई कठपुतली पर पड़ी; उसने उसे हृदयसे लगाकर आँखें भूँद ली। बिबिसारके प्रथम मिलनसे वियोग तककी सभी मीठी घटनाएँ एकके बाद एक स्मरण करनेमें वह विभोर हो गई। शनैः शनैः उसका छिन्न हृदय अनुभूति-पूर्ण होने लगा; आँखोंसे आँसू भरने लगे। उसने कठपुतलीको हृदयसे चिपका

लिया; और-बलपूर्वक, और आविष्ट होकर !...पाली उसी स्थितिमें बहुत समय तक लेटी रही !

उस समय तो अभय चला गया, किन्तु वह ऐसा व्यक्ति न था जो एक बातको हाथमें लेकर उसे अधूरी ही छोड़ देता । मशानामकी मृत्युके समय और उसके पश्चात् अबतक वह बिलकुल मौन रहा था, किन्तु उस मौनके पीछे उसकी पशुता उतनी ही उमंगके साथ जी रही थी । उसे पालीको पानेकी धुन सवार हुई थी और वृद्धावस्थाकी निर्बलताने उसे कठोर बना दिया था ।

अभय, रात और दिन गिनता हुआ पूरे छः महीने तक प्रतीक्षा करता रहा । पाली चार महीनेसे नन्दीग्राममें थी । रात दिन निरन्तर बिंबिसारका स्मरण करते हुए पूरे महीनोंके बाद पालीने एक पुत्र प्रसूत किया । इस बातके बहुत गुप्त रखे जानेपर भी अभय जान गया था किन्तु उसकी कुछ गुप्त बातें रेणुकाको ज्ञात होनेके कारण वह इस घटनाका दुरुपयोग न कर सका । जीवनके अन्तिम दिनोंमें प्रतिष्ठा खो जानेके भयसे वह चुप रहा ।

पाली, पुत्र-जन्मके बाद, नृत्यकी उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके बहाने रेणुकाके साथ कुछ दिन इधर उधर घूम आई । उसका मन पुत्रको देखते ही प्रफुल्ल हो उठता था; उसे पुत्रको देखनेसे बिंबिसारके सान्निध्यकी अनुभूति होती थी । उसकी बहुत इच्छा थी कि कुछ दिन और वैशाली न जाए किन्तु चारों ओर प्रख्यात हो जाने, और गाँव गाँवमें उसके नृत्यकी चर्चा होते रहनेके कारण कुछ ही समय बाद वह पुत्रको लेकर वैशाली चली आई । आनेके बाद उसने जाना कि इतने समयमें उसके प्रशंसकोंकी संख्या कई गुनी हो गई थी; पालीका नवजीवन अब प्रारम्भ हो रहा था ।

प्रासादमें पैर रखते ही, उसका सर्वप्रथम स्वागत करने वाला, संथागार का वृद्ध सभापति अभयराम था । सभापतिका, वैशालीकी देशनर्तकीसे मिलना अनुचित नहीं माना जाता, और उनपर किसी प्रकारकी शंका अथवा आलोचना करना भी व्यर्थ ही था क्योंकि वैशालीके सभापतिके द्वारा देशनर्तकीका स्वागत होना बिलकुल ठीक था । रेणुकाने रात होनेके पहले पालीका ध्यान नर्तकीके साधारण कर्तव्योंकी ओर खींचा और उससे अभयकी बात बही ।

रात होते ही अभय पालीके शयनगृहमें आ पहुँचा । अभयको देखकर पाली कुछ भी न बोल सकी, वैसी ही बैठी रही । अभयने अधिक बातें करना उचित न समझा; दीपकके प्रकाशमें पाली, उसके वृद्धत्वके आगे अधिक यौवन-सम्पन्न दिखाई दे रही थी । तब वैशालीके उस भीषण नरपशुने धीरेसे शय्याके पासका दीपक बुझा दिया ।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही सारी वैशालीमें हाहाकार मच गया । पालीके प्रासादसे कुछ ही दूर पर लहकते हुए तालाबके किनारे लोकप्रतिष्ठित अभय-राजका मस्तक और धड़ धरती पर लौट रहे थे, और उसके पास ही, हाथमें रक्त-रंजित तलवार और हृदयमें अभयराजकी कटारके साथ सुधीर सदाके लिए सो रहा था । अभी भी उसके मुखपर भीषण घृणाकी रेखाएँ स्पष्ट दिखाई दे रही थीं !

[२]

राजगृहके विशाल विल्ववनके कलन्दक—निवापमें इस समय गोतमबुद्ध विहार करते थे; आज चार महीने समाप्त हो जानेके कारण भिक्षुकको रखनेकी बल्ल आदि पौंच * आवश्यक वस्तुओंका वितरण हो रहा था । आज वे सब भिक्षुक चारों दिशाओंमेंसे अपनी निश्चित दिशाकी ओर अलग अलग प्रस्थान कर रहे थे । इस समय शाक्यमुनि गोतम एक पीपलके वृक्षके पास टहल रहे थे, तब ही बिंबिसार अपने रथको कुछ दूर खड़ा करके उनके पास आया; शाक्यमुनिने कुछ चौंककर अपनी विश्वविजयी मुस्कानके साथ उसपर एक दृष्टि डाली । दोनोंने एक दूसरेकी कुशल चेम पूछी; तब बिंबिसार उन्हें प्रणाम करके एक ओर बैठ गया ।

बिंबिसारने, नौसिखिए तैराकके पानीमें हाथ पैर पछाड़नेकी तरह बोलना प्रारंभ किया—‘भगवान, आज आप अपना प्रस्थान करना रोक दें । मैं जानता हूँ, कि चार महीनेके वर्षावासके बाद आप एक दिन भी नहीं ठहरते, किंतु इस

* पिंडपात, चीवर, मेसज, सूची और वीज ।

बार आपको रहना ही होगा....स्वीकार कीजिए मुनि !'

बुद्ध, राजाकी व्याकुलता जान गये; उन्हें उसके व्यग्र हृदयको शांत करना आवश्यक प्रतीत हुआ, प्रेमपूर्ण नेत्रोंसे उसकी ओर देखते हुए अन्तमें उन्होंने कहा—' तथास्तु !'

बुद्धका यह शब्द सुनते ही बिंबिसारको शांति मिली; तत्क्षण वह वहाँसे उठ खड़ा हुआ और प्रणाम करके चला गया। आनन्द, जो अब शाक्यमुनिका अंगरक्षक जैसा था, विस्मित होकर दूरसे सम्राटका यह विचित्र व्यवहार देखता रहा।

बिंबिसारके जाते ही शाक्यमुनिने भिक्षुओंको अपने पास बुलाया, उनके आ जानेपर उन्हें धरतीपर बैठ जानेकी आज्ञा दी और कहा—'भिक्षुओं, संघ का यह नियम है कि केवल वर्षावासमें ही संघको चार मास तक एक स्थानपर रहना चाहिए, फिर भी यदि कोई राजा महाराजा आप्रदूर्वक संघको और अधिक ठहराना चाहे तो ठइनेमें कोई पाप नहीं है क्योंकि संघको राजाकी इच्छाका सन्मान करना चाहिए। आज हम लोग प्रस्थान नहीं करेंगे, कुछ दिन और यहीं ठहरेंगे...' १ कहकर शाक्यमुनिने उस पिण्डजहो की ओर देखा, जो भिक्षुक होनेसे पहिले एक मीशण लिच्छवी था, और स्वजन और स्नेहियों को मार डालनेमें भी संकुचित नहीं होता था; उसे सम्बोधित करके शाक्य-मुनि बोले—'पिण्डजहो ! सुन, मैंने एक गृहस्थसे जो कुछ कहा था उसे तू पुनः सुन ले, भिक्षुओ तुम भी सुनो, सुनकर उसका मनन करो—भिक्षुओं, भ्रमण करनेसे संगति होती है, संगति से स्नेह उत्पन्न होता है, और स्नेहसे ही सदाके 'दुःख' की उत्पत्ति होती है। इसलिए स्नेहको ही 'दुःख' का मूल समझ, जैसे कि वराहकी नाकपर सींग होता है, संसारमें तुम्हें अकेले ही विचरण करना चाहिए !'

उपर्युक्त वक्तव्यका संदर्भ-सहित विवरण—

१—विनयपिटक।

२—थेरगाथा।

३—'जन्म लेना दुःख है, जन्म लेकर मरना दुःख है। अनन्त जन्मोंकी गणना भी दुःख है। जन्म-मरण की शृंखलाका अंत प्रदर्शित करनेवाला आर्य

अष्टांग मार्ग, अर्थात् निर्वाण है यह बौद्ध धर्मके चार आर्य सत्योंमें प्रथम सत्य है ।

४—सुख निपात ।

यही उपदेश शाक्यमुनिने संध्यासमय बिंबिसारको भी दिया ।

ठीक छः महीने बाद बिंबिसार उसी पीपलके वृक्षके नीचे बैठा था; वहाँ इस समय शाक्यमुनि गोतम-बुद्ध अथवा उनका संघ, कोई न था । कृष्णपक्षकी आधी रात थी; दूर जलनी हुई मशालका प्रकाश उस अंधकारमें गम्भीरता उत्पन्न कर रहा था । बिंबिसार मदिराके मदमें चक्चूर होकर बड़बड़ा रहा था—‘शाक्यमुनि ! स्नेह संसर्गसे उत्पन्न नहीं होता, मूर्खतासे उत्पन्न होता है ! स्नेह स्त्रीरूपी हलाहलमें से उत्पन्न होता है, जिसका फल कितना विषैला होता है, यह पूछने तुम मेरे पास आना ! रेवा कहती है, मैं एक पुत्रका पिता बन गया हूँ; उँह, मुनि ! अपना उपदेश बदल देना; संगतिसे स्नेह पैदा नहीं होता...स्नेह विषसे उत्पन्न होता है और उस स्नेहका अंतिम परिणाम....’

‘महाराज !’ किसीका धीमा कंठस्वर सुनाई दिया ।

‘कौन, संजय..?’ बिंबिसार नशेपेँ सिर एक ओर घुमाकर बोला—‘पर-छाईकी तरह मेरे साथ ही चला आया...कृष्णपक्षमें भी ?...तुम्हें नींद नहीं आती...तुम्हें अपने बालबच्चों और पत्नीसे मीठी बातें करके समय बिताना नहीं आता ?..दुष्ट, आठों पहर मेरे साथ ही रहा तो तू भी अपनी मनुष्यता खो बैठेगा !’

‘राजन्, मैं मनुष्यताका इतना तिरस्कार नहीं देख सकता !’

‘संजय !’

‘देव, एक स्त्रीके लिए इस अतुल शक्तिका नष्ट होना मुझसे नहीं देखा जाता ! आप मागधियोंके प्राण हैं, आप हमारे हैं । हमारे होकर भी जब आप एक स्त्रीके पीछे अपना सर्वस्व भूलकर, निरुत्साह और निष्क्रिय हो जाते हैं तब हमसे देखा नहीं जाता । आपकी इस निष्क्रियतासे शत्रु प्रसन्न हो रहे हैं ! मगधराजकी दुर्बलता उनकी विजय-लालसाको उत्तेजित कर रही है; वे मगधको लील जानेके लिए अनुकूल समयकी प्रतीक्षा कर रहे हैं !...’

इन शब्दोंने बिंबिसारको जैसे चाबुक मारकर नशेसे सचेत कर दिया; आई संजयकी ओर वह एकदक देखने लगा। छुपी हुई अग्नि जैसे वायुकी एक लहर पाकर भबक उठी हो, उस तरह बिंबिसारकी आँखें चमक उठीं; बोला-- 'संजय, बात यहाँ तक पहुँच चुकी है ?'

‘हाँ, महाराज !’

‘तो उन शत्रुओंको गुप्तचरों या राजदूत भेजकर कहला देना कि चन्द्र और सूर्यको दृष्टियानेकी चेष्टा करनेवालोंको हम उन्मत्त कहते हैं और उनका उपचार करनेके लिए शस्त्रास्त्रोंके अतिरिक्त राजवैद्य कुमार भृत्य भी सदा प्रस्तुत रहते हैं !...संजय, तू मुझे सचेत करनेके लिए तो यह सब नहीं कह रहा है ?..यही बात है; तो सुन, मैंने अपनी सुध खोई ही कब है ? मैं लिच्छवियोंको नहीं छोड़ूँगा, उन्हें झुकाऊँगा, सलाऊँगा। उनके सिर तेरे पैरोंसे रौंदूँगा तब ही मुझे शांति मिलेगी। संजय, लिच्छवी नीच हैं, क्रूर और हत्यारे हैं...विषप्रर्वतक हैं !...’

‘महाराज, महलको प्रस्थान करेंगे ?’

संजयके बात बदलनेसे बिंबिसार बिलकुल शांत हो गया। संजयके कंधोंके सहारे वह रथकी ओर जाने लगा लगा। क्रोध, घृणा और अपमानके मानसिक परितापके कारण वह शिथिल हो गया था।

उस समय पालीकी स्थिति उससे बिलकुल विपरीत थी। बिंबिसार आहत हृदयसे पालीका स्मरण करके घृणासे भर उठता था, और पाली गंभीर प्रणय से उसका विचार किया करती थी। पुत्र होनेके कारण वैशालीमें और कुछ गड़बड़ी न फैल जाए इस डरसे पाली अधिकतर नंदी ग्राममें ही रहने लगी। एक दिन गुप्त रूपसे रेवा उससे मिलने आई; पालीका पुत्र देखकर उसका मन खिल उठा, और जब वह राजगृह गई तब क्षणभरका भी विलम्ब किये बिना उसने यह बात संजयसे कह दी। किन्तु संयोगवश बिंबिसारने उन दोनोंकी बातें सुन लीं, और पालीके प्रति भूली हुई घृणा दुगुने वेगसे प्रज्वलित हो उठी, पालीकी मृदुस्मृतियाँ कटु बन गईं। उसके बाद बिंबिसार पागल जैसा रहने लगा, मदिराकी मात्रा अतिशय बढ़ गई। रेवाको इस घटनासे बहुत

पश्चात्ताप हुआ, पर वह बेचारी क्या करती? संजयने बिंबिसारके अस्थिरचित्त को स्थिर करनेका प्रयोग पुनः प्रारंभ किया;...इसी तरह दिन बीतने लगे।

अब पालीके प्रशंसकोकी संख्या असंख्यसे बढ़कर अरुण हो गई। उत्तर-कुरु, पांचाल, दक्षिणापथ, भृगुकच्छ और पट्टन तथा ताम्रलिपि, पश्चिमी प्रदेश गांधार, कोशल, चंपा, विंध्य और हिम-प्रदेश इत्यादि कई देशोंके अनेक राजा, श्रेष्ठी और मंत्रीगण आम्रपालीके प्रासादमें उसे बुला ले जानेके लिए आ चुके थे; साथ ही साथ वैशालीका प्रत्येक लिच्छवी युवक सबसे पहिले पालीका कृपा-कटाक्ष पानेके लिए तड़प रहा था।

किन्तु अमराजकी मृत्युने पालीमें अद्भुत परिवर्तन ला दिया। उसने पुरुषकी पशुताका भीषण स्वरूप देखा था। उसपर प्राण देने वाले मूर्खोंका कुंड उसके सामने अब हाथ बाँधे बैठा रहता; उन सबोंको उसने सचमुच मूर्ख बनाया, निराश किया। पुत्रका निर्दोष मुख उसे कई बातोंसे रोकता था। रिक्त समयमें वह पुत्रको हृदयसे लगाकर बिंबिसारकी स्मृतिमें खोई हुई बैठी रहती थी—उसे वे अभिराम दादा और आनंद याद आते, वेदांती और उस समयका नंदीग्राम याद आता; किन्तु पुत्रको देखकर वह कुछ देर तक सब कुछ भूल जाती। मातृत्व उसका दृढ़तम आधार था। पुत्रका निर्दोष मुख उसकी निराशा और दुःखको दूर करने लगा; वियोग और दुःस्वप्न भी उसे आशा और तृप्ति-मयभावनाओंकी अनुभूति होने लगी।

एक दिन सबेरे एक दासी दौड़ती हुई आई और कहने लगी कि 'भद्रा कहीं चली गई है।' इस तरह पालीका वह बचा हुआ स्नेह-बन्धन भी टूट गया।

समय और समुद्रकी लहरोंकी थाह किसीने पाई है ?

दिन बीतने लगे। रेणुकाने सब ही कहा था कि जो मार्ग उसने ग्रहण किया था उसे निबाहना ही कर्तव्य है। शनैः शनैः पाली विविध युवकोंके सम्पर्कमें आने लगी। उन युवकोंको सुगंधावस्था और कल्पना, उनके उन्माद और बुद्धि, उनकी दृढ़ता और मूर्खता भरे प्रदर्शनमें ही पालीका समय हास्य विनोद अथवा कटाक्ष करनेमें बीतने लगा। रेणुकाने उसे, सबोंको मूर्ख बना देनेकी कला अच्छी तरह सिखा दी थी। पाली सबोंको मूर्ख बनाने लगी;

उसके सामने आने वाला कोई भी पुरुष उसकी बुद्धिसे प्रभावित हो जाता था।

पुनः एक बार अश्विन पूर्णिमा आई। वज्रियोंको छोड़कर लिच्छवियों के आसपास बसने वाले अनेक गणतंत्रोंमें पालीकी प्रशंसाने उसका नृत्य देखने के लिए वहाँके रसिक युवकोंको आतुर बना दिया। वहाँके भल्ल, शाक्य और केलिगणोंने, जो वर्षोंसे लिच्छवियोंके शत्रु थे आम्रपालीको देखनेके लिए अश्विन पूर्णिमाके लिए लिच्छवियोंसे संधि कर ली थी। फलस्वरूप पाली संथागारके राज्यकर्मचारियोंके आभारकी पात्र बन गई क्योंकि उसने सचमुच देशनर्तकी नामकी सार्थकता राजनैतिक ढंगसे कर दिखाई थी। इसलिए इस वर्ष यदि लिच्छविगण पालीका नृत्य देखनेके लिए अधिक आतुर बन गये तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात न थी। इतने छोटे समयमें पालीने संसारमें अपनी महत्ता स्थापित कर ली, और नृत्यकलाने भी मानों प्रसन्न होकर उसके अंगोंमें वह आभा भर दी कि कोई भी युवक उसका नृत्य देखनेके लिए अपनी बड़ीसे बड़ी हानि सहन करनेको प्रस्तुत था।

जनताकी असीम प्रशंसा और आदर-सत्कारको वह एक प्रकारसे अपने जीवनकी सफलता मानने लगी। नृत्य प्रारंभ करते ही वह अपनी प्रसन्नतामें खो जाती थी और वह मानसिक तृप्ति इतनी घनी होती कि जब तक वह अपने महलमें आकर निश्चेष्ट नहीं हो जाती, वह अनुभूति बनी ही रहती थी।

आश्विन पूर्णिमाका महोत्सव प्रारंभ हुआ; पालीने गत वर्षकी भाँति इस बार भी उत्साहपूर्वक नृत्य किया। जब नृत्य समाप्त हुआ तो दर्शक गण गत वर्षकी अपेक्षा अधिक उन्मत्त दिखाई दे रहे थे। इस बार पारितोषिक और उपहारकी भेंट इतनी थी कि जब पाली अपने महलकी ओर जाने लगी तो उसके रथके पीछे उपहारोंसे भरे हुए चार हाथी और छः रथ थे।

पालीके महलमें पैर रखते ही वृद्ध रेणुका उससे लिपट गई और भीतरके विश्रामकक्षमें ले गई। रेणुका पालीके साथ इसलिए नहीं गई कि वह अपनी एक आँख खो बैठी थी और दूसरी दुख रही थी। वह आँखोंमें आँसू लाकर बेली—'बेटी, हमने तो प्रायः विशिष्ट पुरुषोंका ही मनोरंजन

किया, पर तूने तो आज सारे देशको आनन्दमें डुबो दिया है !—तूने देशका उपकार किया है; सचमुच तू देशनर्तकी है!...' पाली कुछ न बोली; रेणुकाके आँसू पोंछकर उसने महलके द्वार पर खड़े हुए कितने ही स्निग्धवी सपूतोंकी ओर संकेत करके कहा—'मैं तो इन्हें समझा-समझाकर थक गई हूँ, अब तू इन्हें समझा दे कि मैं भी मानवी हूँ मुझे भी श्रम, और भूखके बाद विश्रामकी आवश्यकता है !'

उनकी ओर देखकर वृद्ध रेणुका आँखका कष्ट भूल गई, बोली—'यदि यहाँ खड़े रहनेसे ही उनका मन तृप्त होता हो तो, खड़े रहने दे ! बेचारे लड़के हैं...' कहकर वह पालीको स्नानागारमें ले गई । उसके बाद कई दासियोंको साथ लेकर वह बाहर आई और प्रासादके प्रांगणमें खड़े तरुणोंको तथा उद्यानमें खड़े हुए परदेशियों और अन्य लोगोंके उपहार स्वीकार करके उन्हें शीघ्रतापूर्वक समझाने लगी ।

स्नान करके पाली शयनगृहमें पहुँची और अपना उत्तरीय दूर करनेके पहिले तो जोरसे चिल्ला कर बैठ गई ।

उसका खोया हुआ भाई आनन्द, सम्मुख खड़ा था; उसकी पोशाक बिलकुल बदली हुई थी । वे वस्त्र न परिव्राजकके थे, न श्रमणोरके, न जटिलकके; अग्निपूजक अथवा ब्रह्मचारीके भी न थे; वे एक दूसरी ही प्रकार के काषायवस्त्र थे । आनन्दकी आँखें एक प्रकारके उन्मादसे अभिभूत हो रही थीं ।

पाली चिल्लाई—'भैया, भैया !'...दौड़कर वह आनन्दकी बाहोंसे स्निपट गई; स्निपटी ही नहीं रोने भी लगी । कुछ देर पालीको सहलाकर आनन्दने उसे दूर किया; बोल—'पाली, मेरे सामने देख !'

पालीने उसे देखा ।.....

'पाली, तीन तीन वर्षोंसे मैं मनको दबाता आ रहा हूँ ! मैंने हृदयको मसल डाला; दन, उपवन और गिरिकंदराओंको रौंद डाला!.. शाक्यमुनि, गोतम बुद्धके आदेशोंको हृदयमें रखकर दृत्त-दृक्षके नीचे पद्मासन लगाये ।... पर तुझे नहीं भूल सका... नहीं, तुझे नहीं, तेरे पुत्रको !.. मेरे हृदयमें दही

एक ध्वनि उठ रही थी...नहीं, उसके बिना मुझे शांति नहीं मिलेगी !... मैं उसे लेने आया हूँ बहन ! अपना पुत्र मुझे सौंप दे !'

'भैया, मेरा हृदय ही ले जाओ, मुझे उसकी आवश्यकता नहीं; इस हृदयको मैंने बहुत कुचला है, रौंदा है...फिर भी यह अभी तक जीवित है; इसे उखाड़ कर, खींचकर ले जाओ—बचचेको नहीं, मैं उसे न दे सकूँगी !'

'नहीं पाली, मना करनेसे काम कैसे चलेगा ? मैं उसे ले जाऊँगा, ले जानेके लिए ही आया हूँ। अधेरा फैल रहा है, गहरा होने दे तब मैं उसे ले जाऊँगा।'

आनन्दकी आँखोंका वह उन्माद मिट कर अब वहाँ एक विचित्र आकर्षण दिखाई दे रहा था। पाली एकाएक कुछ न बोल सकी; बालकके पलनेके पास जाकर उसे उठाकर छातीसे लगा लिया और जोरोंसे रो पड़ी। उसके रुदनका स्वर इतना कारुणिक था कि कठोर-हृदय पुरुष भी द्रवित हो जाता। आनंद धीरेसे बहनके पास बैठ गया, बोला--'बहन, तू देशनर्तकी बन गई है ...देशनर्तकीके भी कहीं पुत्र होता है ? और इसके भाग्य कैसे हैं ? पिता भी इसका होना नहीं चाहता ; माँ भी प्रकाश्यरूपसे इसका पालन-पोषण नहीं कर सकती ! बड़ा होने पर यह पुत्र, कई प्रकारकी भज्जी-बुरी बातें सुनकर क्या सोचेगा ? यह राजवंशमें उत्पन्न हुआ है, इसलिए आत्महत्या किये बिना न रहेगा। यह साधारण आत्मा नहीं, मेरा मन कहता है कि यह तेरे पास रहने योग्य नहीं है !'...

'ऐसा न कहो भैया ! ऐसा अशुभ न बोलो !'

'मैंने एक दो दिनसे नहीं, पाली, दिन-मास-वर्षोंसे यही विचार किया है, यही सोचा है—मुझे दे दे ! मेरा मन कहता है, मेरे भगवान भी कहते हैं कि मुझे दे देनेमें ही मेरा, इसका और तेरा उद्धार है। व्यर्थ समय न गँवा बहन!...यह तो ऐहिक-पारलौकिक सम्बन्धोंका लेनदेन है ! मुझे सौंप दे, मुझे दे, शीघ्रता कर ।...' कहकर आनन्दने हाथ बढ़ाये। उसके शब्दोंमें कठोरताके साथ स्पष्ट प्रेम भी झलक रहा था; उसकी वाणी मर्म-मेदिनी होकर भी आर्द्र थी।

पालीका मन बालकको दे देनेको उद्यत हुआ। उन डेढ़ वर्षोंमें उसने संसारका अति सुन्दर और धृणात्मक स्वरूप देख लिया था; वह जानती थी कि भाई की बातें उसके हृदयमें चुभते हुए भी सत्य थीं; उसे समझानेकी आवश्यकता नहीं थी।

किन्तु वह माँ थी; लहूका घूँट पीकर बोली—‘तुम इसे कहाँ ले जाओगे?’

‘जहाँ मैं जाऊँगा, जहाँ शाक्यमुनि बुद्धका मिश्रकसंघ विहार कर रहा होगा, जहाँ तथागतका नाम गूँज रहा होगा, वहाँ!’

‘तब मैं इसे कैसे देख सकूँगी?’

‘पाली, देखनेकी क्या आवश्यकता है? तू अब इसे कभी नहीं देख सकेगी!’

‘भैया! तुम इतने कठोर कैसे बन गये? मेरा भैया कहाँ विलीन हो गया! नहीं, नहीं भले ही वह यहाँ रहे! चाहे बड़ा होकर मुझे माँ न कहे, मुझपर थूके, चाहे मुझे देखना भी न चाहे पर मैं इसे अपनी दृष्टिसे ओझल नहीं होने दूँगी!...’

बहुत स्नेहपूर्वक, रोती हुई पालीके दोनों हाथ अपने हाथमें लेकर वह समझाने लगा—‘पाली, वृद्ध वेदांतीने कहा है कि तेरा पुत्र एक महान् दैव-विभूति बनेगा! तू इसे पाल-पोसकर बड़ा करेगी तो यौवन तक पहुँचते न पहुँचते यह स्वयं अपनेको धिक्कार करेगा, इसे अपने लिए, स्वयंपर घृणा उत्पन्न होगी। अन्तमें अपमानोंसे दुःखी होकर यह आत्महत्या करेगा। अपने भानजे की, एक महान् राजकुमारकी, मैं यह दशा नहीं होने दूँगा, इसे वहाँ तक पहुँचने ही न दूँगा!... इसे मुझे दे दे, पूज्य वेदांती कहता है कि यह हमारा उद्धार करेगा इसीलिए मैं इसे तुमसे दूर ले जानेके लिए आया हूँ, जिससे यह तुम्हें न देख सके! यदि एक बार भी तुम दोनों एक साथ मिले तो तेरा वात्सल्य इसके जीवनको शून्य बना देगा!...’

‘भैया, मैं इसकी माँ हूँ!’

‘किसी भी लिच्छवी माताने अपने पुत्रकी अपेक्षा अपने सुखको अधिक

माना है ?'

‘भैया यह असम्भव है !’

पाली !...’ पुनः उसकी आँखोंका स्थिर तेज चमकने लगा...‘अपने भाईके शब्दोंमें तुम्हे विश्वास है ? बालक मुझे सौंप दे !’ यह आज्ञा थी । पाली निष्प्रभ हो गई । उसने बालकको बल-पूर्वक वक्षसे चिपकाकर, चूमकर, भाईके हाथोंमें सौंप दिया ।

‘पाली, बौद्ध साधु, यजमान द्वारा खुले मनसे हँसते-हँसते दी हुई मित्रता ही ग्रहण करता है ! पाली मेरी ओर देख !...’

पालीने बहुत प्रयत्न करके मनको सम्हाला; मुस्कराई । ‘भगवान् बुद्ध रक्षक हो!’ इस आशीर्वादके साथ आनन्दने बालकको लिया और पाली हँसती हुई भाईके पैरोंमें गिर पड़ी ।

[३]

सात वर्ष बीत गये । इन सात वर्षोंमें पालीमें अचिन्त्य परिवर्तन हो गया था । दूर देशों तक वह प्रख्यात हो गई थी । संथागरकी सभा न होने पर, यदि पालीको वहाँ जाना न होता तो किसी बड़े राजाके आमन्त्रणको स्वीकार करके वह वैशालीके बाहर भी पैर रखने लगी । वर्षमें अनेक बार पालीका रथ जय जय ध्वनिके साथ वैशालीको छोड़ता था । पालीकी ख्याति ने अनेक गूढ़-कथाओंका रूप ले लिया था । जिस नगरीमें पाली पहुँचती, उसके आगमनके प्रथम दिन और प्रस्थानके दूसरे दिन वहाँका सारा काम-काज निष्क्रिय-सा रहता, और नगरीका रसिक-समाज पालीके रूप और गुण की भूँठी और सच्ची बातोंमें अपना समय व्यतीत किया करता था । किन्तु पाली बाहर तब ही जाती थी जबकि वैशालीका भी कुछ न कुछ लाभ हो । शनैः शनैः अपनी नृत्यकला और देहसुषमाके द्वारा पालीने बात बातपर लड़ बैठनेवाले लिच्छवि और वज्जि राजा और उपराजाओंमें एकता उत्पन्न कर दी जिससे वे सम्मिलित और शांत हो गये । उस समयके प्रायः सभी लिच्छवि और वज्जि नेतागण पालीकी मोहनीमें फँसे हुए थे; भीष्णु योद्धाओं और

अनेक संयमी पुरुषोंके मुँहसे भी 'नहीं' से 'हाँ' कहलानेमें वह समर्थ थी। उसने सबोंको मुग्ध किया था, उसकी रूपमोहनीमें खोया हुआ पुरुष उसकी इच्छा करनेपर निषेध करनेका साहस न कर सकता था।

किंतु महानामकी मृत्युके बाद, लिच्छवियोंमें एक प्रकारकी निम्नकोटि की स्वच्छन्दता फैलने लगी; यह एक प्रकारकी अराजकता थी जिसने इन सात वर्षोंमें भीषण रूप धारण कर लिया था। अनेक धर्मप्रवर्तक लोग स्वातंत्र्य-प्रेमी लिच्छवियोंको भड़कानेके लिए मैदानमें उतर आये थे, जिनमें जटिलक और निर्भ्रंशोंका वैशालीमें प्रचार मुख्य था। दूसरी ओर कई साम्राज्यवादी कूटनीतिज्ञ लोग परिषद्के कितने ही नेताओंको वहकानेकी अपनी जालसाजीमें सफल हो रहे थे। नियमानुसार सदा ही लिच्छवी परिषदकी सभाएँ संथागार में होती थीं, प्रवेणीपुस्तकका निर्णय भी अंतिम माना जाता था तथा अब भी लिच्छवी गणतंत्र अमेय और प्रभावशाली ही था। पर यह सब होते हुए भी, पहिले जिस तरह एक भावना और विश्वासके साथ प्रत्येक कार्य सम्पादित होता था वैसा अब न था। पुराने नेताओंमें अंतिम अवशिष्ट, नगर-श्रेष्ठीका भी देहावसान हो गया था।

ऐसे दिनों शाक्यमुनि गौतम बुद्धके धर्मने लिच्छवियोंको झकझोरकर सचेत किया; धीरे धीरे अन्य देशोंकी अपेक्षा लिच्छविगण बौद्ध धर्मको अधिक दृढ़तासे अपनाने लगे। जो बुद्धानुयायी नहीं थे वे ही उस सामयिक अराजकताके कारण शंकाशील, क्रूर और निर्लज्ज बन गये। इस परिस्थिति में समस्त लिच्छविगण जिस एक ही व्यक्तिका एक दृष्टिसे सम्मान करते थे वह आम्रपाली थी। मानसिक दृष्टिसे वैशालीपर मानों आम्रपालीका ही शासन चलता था। पालीके दिनोंदिन वृद्धिगत शरीर-सौष्ठवने सबोंको पराजित कर दिया। पालीने इन सात वर्षोंमें अपने पंचभूतको नया रंग देनेका भरसक प्रयत्न किया। पुत्रके जाते ही उसका जीवन-लक्ष्य मानों बदल चुका था। सतत अभ्याससे उसकी सुकमार देह सहन-शील बन गई थी। हृदयके रुदनको दबाकर पालीका मुख आठों प्रहर मुस्कराता रहता, अपनी मानसिक वेदनाको छुपानेके लिए वह कई बार हँसती और हँसाती थी; इस तरह दुःखको

भुलानेका प्रयत्न करने लगी ।

पालीके प्रासादमें बहुत दिनोंसे उज्जयिनीसे भागा हुआ एक राजकुमार रहता था । आज विविध वार्तालाप करके पाली उसे प्रफुल्लित कर रही थी; अपने पुत्रसमान राजकुमारको अपने पीछे पागल देखकर पाली सहानुभूतिसे मुस्करा उठती थी । अन्तमें राजकुमारने पालीकी बात मान ली; और घर जाकर पिता द्वारा निश्चितकी हुई कन्यासे विवाह करना स्वीकार किया । इसे पहिले इसी राजकुमारने आम्रपालीके बिना जीवित न रहनेका निश्चय किया था !

ऐसे अनेक अनुभव पालीके जीवनमें हो चुके थे; राजकुमारके वचनसे वह संतुष्ट हुई । सहसा दासी सुनेत्राने आकर समाचार कहा—

‘एक परदेशी दर्शन करनेकी आज्ञा चाहता है ।’

‘कह दे कि एक हजार कहापण दे तो भी आज्ञा नहीं मिलेगी !’

‘उसने दो हजार दिये हैं, और मैंने ले लिये हैं ।’

‘तो लौटा दे ।’

‘वह चार हजार भी दे सकता है देवि; उसने मुझे पहलेसे कह दिया है ।’

‘और चार हजार कहापण भी लौटा दें तो ?’

‘तो आठ हजार देगा । जब तक आप दर्शन न दें, वह लौटेगा नहीं ।’

‘जा बुला ला ।’

‘वह एकान्त चाहता है, देवि ।’

पालीने उस बाल राजकुमारकी ओर देखकर कहा—‘वसंतराज, तुम कुछ देर उद्यानमें टहलो, मैं अभी आती हूँ ।...सुनेत्रा, जा उसे मुख्य भवनमें ले आ ।’ इतना कहकर पाली मुख्य भवनमें जा पहुँची । सुनेत्राने परदेशीको भीतर भेज दिया और बाहरसे द्वार बन्द कर दिये ।

परदेशीको देखते ही पाली स्तब्ध हो गई । दश वर्ष पहिले एक कठपुतलीवाला आया था; आज उसी महलमें, उसी स्थानपर फिर एक कठपुतलीवाला आया है । किन्तु आजका पुरुष दूसरा ही मालूम होता था, कौन कह सकता है यह भी बिबिसार नहीं है ? वर्षों बीत जानेपर क्या

उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता ?...

पाली बोल न सकी; परदेशीका हाथ पकड़कर वह उसे अपने शयन-गृहमें ले गई; उसने वहाँका प्रत्येक द्वार और बातायन बन्द कर दिया। वर्षोंका रोका हुआ आवेग एक साथ बाहर आना चाहता हो उस तरह उसके रोके हुए आँसू धारा बनकर बहने लगे। कोई देख न सकेगा यह विश्वास हो जानेके बाद पाली परदेशीके समीप आई। किन्तु कठपुतलीवालेने दाढ़ी निकाल डाली थी जिसे देखकर पालीका उबाल सहसा शान्त हो गया।

मूर्खा यह समझ बैठी थी कि वह आगन्तुक बिबिसार ही है; किन्तु यह संजय था। अपना वेश बदलकर जब उसने पालीकी चरणरज ली तब ही पालीकी उसे रोकनेकी सुध आई।...संजयको देखकर उसे बहुत सान्त्वना मिली।

संजय व्यर्थ विलम्ब न करके मुख्य विषयपर आया; बोला—‘देवी, मुझसे कोई भी बात छुपानेका प्रयत्न न करें, रेवाने मुझसे सब कुछ कह दिया है। मैं सात वर्षोंसे आपको मिलनेके लिए तरस रहा था, पर संयोग मिलनेपर भी समय बहुत थोड़ा है। यहाँके गुप्तचरोंको ज्ञात हो गया है कि मैं वैशालीमें हूँ। इसलिए मैं जो कुछ कहूँ आप शीघ्र सुन लें। देवि, मैं आपसे भीख माँगने आया हूँ।’

‘एक नर्तकीसे ?’

‘नहीं, अपनी महारानीसे।’

‘यह न कहो, महासचिव !’

‘आपने जो देशसेवा और आत्मत्याग किया है उतना कोई सम्राज्ञी भी नहीं कर सकती। आम्रपाली केवल नर्तकी ही नहीं है, वह तो देशोद्धारिणी, कुलोद्धारिणी प्रेमदेवी है। देवी, सात वर्षोंका पुराना आघात महाराजा भूले नहीं हैं, और यह भी मैं जानता हूँ कि सात वर्षोंसे मेरी महारानी, महाराजाको आतुरतासे भुला बैठी हैं। मैं कोई बात गुप्त नहीं रख सकता, यह बात आप अच्छी तरह जानती हैं।’

पालीने आँखोंके आँसू छुपानेके लिए मुँह फिरा कर पूछा—‘महामन्त्री,

किस कार्यके लिए आये हो ?

संजयने नीचे बैठकर उत्तर दिया—‘आपके शुभ हाथोंसे आपके महाराजाको सुखी बनानेके लिए ।’

पालीने चौककर संजयकी ओर देखा; उसकी आँखें भींग उठी थीं । संजय बोला—‘देवी आपने जानबूझकर, अपने लिए महाराजके हृदयमें जो घृणाकी ज्वाला सुलगाई थी उसने अब भड़ककर अमिका रूप धारण कर लिया है । लिच्छवियोंकी शत्रुता अब मगधमें व्यापक हो रही है; द्वेष बढ़ गया है, कटुता फैल गई है । किन्तु इस समय भी एक प्रसंग ऐसा हाथ लगा है जिससे लिच्छवियों और मागधियोंका कलह सदाके लिए शान्त हो जाय ।’

तीव्र वेदनाने भी पालीको विचलित नहीं किया; बोली—‘तुम लिच्छवियों और मागधियोंकी एकता क्यों चाहते हो ?’

‘सबसे पहली बात यह है कि दो शक्तिशाली राष्ट्र एक होंगे, पर उससे भी अधिक महत्वकी बात यह है कि मेरी महारानी एक समय उसकी ...’

‘बस महामन्त्री !—मैं नर्तकी हूँ ।’

‘कहमे और मानने भर से कुछ होता हो तो, अभी मैं भी इन्द्र बन जाता; इन्द्र बननेके बाद मुझे यहाँ न आना पड़ता । और मैं अपनी दिव्य शक्तियोंके द्वारा यह सब भेदभाव, अनैक्य और कुमति दूर कर देता और प्रत्येक मनुष्यको लिच्छवी बना देता ।...’

‘लिच्छवियोंके लिए इतना अनुराग कबसे उत्पन्न हुआ, महामन्त्री ?’

‘सच्चा लिच्छवी ही मनुष्य कहलाने योग्य है । क्षमा कीजिएगा, मैं आजके लिच्छवीकी बात नहीं करता ।’

‘तो मेरे पास भेदभाव, अनैक्य और कुमति दूर करनेके लिए आये हो ?’

‘हाँ देवी ! महाराजा शिविसारकी दृष्टि राजकुमारी चेलनापर पड़ी है; गत वर्ष आप चेलनाके यहाँ नृत्य करने गई थीं; मैंने सुना है कुछ दिन पहिले ही आप वहाँ गई थीं । यदि चेलनाका मन महाराजाकी ओर झुकाया जाय और दोनोंका विवाह हो जाय तो बहुत सम्भावना है कि मागधियों और लिच्छवियोंकी मित्रताका नाता लम्बे समयके लिए जुड़

जाय । जिस महान उद्देश्यको लेकर आप दोनों प्रेमी विवाहग्रंथिमें बँधे थे, और जो उद्देश्य अधूरा ही रह गया था, अब उसके सम्पूर्ण होनेका अवसर आया है, और वह आपके हाथों ही पूरा हो सकता है ।’

पाली ध्यान देकर यह बात सुन रही थी; सहसा खड़ी होकर वह बोली—‘संजय, सोचकर कहूँगी ।’

‘देवी, यह सोचनेका नहीं, करनेका प्रश्न है । आपके आत्मबलिदानने महाराजाको अतिशय दुःख पहुँचाया है; लिच्छवियोंके प्रति उनके मनमें रोषका यही मुख्य कारण है । चेटकराजकी पुत्री चेलनाके पा जानेसे यह रोष अवश्य कम होगा । हमारे और आपके राष्ट्रको सुखी करनेका यह सुन्दर अवसर है; और यह कार्य आप करेंगी ही । एक और प्रश्न पूछूँ ?—

‘पूछो !’

‘छोटे महाराजा कहाँ...?’

‘महामंत्री !—’ पाली चिल्ला उठी; फिर एकाएक सम्हल गई । वह अपने अचानक चिल्लानेके कारण लज्जित हुई; उसका सारा शरीर काँप रहा था । नारीके हृदयमें और अधिक सहनेकी क्षमता नहीं थी । पाली शय्या पर गिर गई; आँखोंसे आँसू बहने लगे ।...

...सात वर्ष बाद पतिके समाचार मिलने पर वह घृणासे अभिभूत हो गई; अब पतिका ही एक परम मित्र हाथसे निकले हुए पुत्रकी याद दिला रहा है !

पहले तो संजय विस्मित हुआ; किंतु धीरे धीरे सारा सत्य उसे स्पष्ट दिखाई देने लगा । सचमुच मौन रहकर सहन करने पर भी पालीका कष्ट असह्य था । उसने पालीको नमस्कार करके कहा—‘देवी ! आपको उपदेश देने या समझानेकी क्षमता मुझमें नहीं हैं !...आपका आत्मत्याग अद्भुत है; आपकी सहनशीलता आश्चर्यजनक है ! महान कार्योका निमित्त बनाकर प्रकृतिने आपको पृथ्वी पर भेजा है; उन कार्योके सम्मुख अपनी बातें करना आप जैसी महान आत्माके लिए बहुत ही साधारण बात है ! मुझे जानेकी आज्ञा है ?...’

पालीने सिर उठाया । संजयने अपना गुप्त वेश धारण किया और नमस्कार

करके बाहर जाने लगा। पालीने आँसू पोंछ डाले, वह अपने प्रियतमके अति निकटके मित्रको जाते हुए देखती रही।

जब दूसरे दिन आम्रपाली लिच्छवी राजा चेटककी पुत्री चेलनासे मिली तो उसे देखकर चेलना बहुत विस्मित हुई, क्योंकि सात दिन पहले ही जब उसने पालीको सादर आमंत्रण भेजा तब उसने आनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की थी।

पालीको देखते ही चेलनाको प्रसन्नता हुई; वह पालीकी प्रतिभासे प्रभावित थी। पाली वहाँ पाँच दिन रही और इन पाँच दिनोंमें उसने चेलनाको इस योग्य बना दिया कि उसका मन अनुपम सुंदरी आम्रपालीका तिरस्कार करने वाले बिंबिसारको पानी बना देनेके लिए तरस उठा। दूसरी ओर संजय भी बिंबिसारका मन चेलनाकी ओर आकर्षित कर रहा था।...

...और एक दिन बहुत गुप्त रीतिसे बिंबिसार और चेलना मिले। बिंबिसारके हृदयपट पर चेलनाकी अमिट छवि अंकित हो गई; चेलनाका हृदय भी बिंबिसारकी छवि-दर्शनमें विभोर हो गया। उसमें सौंदर्यकी अपेक्षा बुद्धि अधिक थी इसलिए बिंबिसारको मुग्ध करनेमें उसे अधिक समय न लगा। धीरे धीरे उनके गुप्त मिलनकी संख्या शीघ्रतासे बढ़ती गई और हृदयमें प्रेमका पुट गहरा होता गया।

माताने मनाया, पिताने समझाया पर चेलना किसी भी राजकुमारके साथ विवाह करनेको प्रस्तुत न हुई; माता पिता यह कैसे जानते कि उसका मन तो बिंबिसारसे बस गया था। अंतमें चेटकराजने अपनी दो अन्य पुत्रियोंके साथ ही चेलनाका विवाह करना भी निश्चित किया। चेलनाकी व्याकुलता बढ़ गई।

...इधर बहुत दिनोंसे वह बिंबिसारसे मिली भी न थी, धीरे धीरे विवाह का दिन समीप आ पहुँचा।

एक रातको जब सब निद्रामग्न थे, बिंबिसार उसके शयनगृहमें आ पहुँचा देखते ही चेलनाका रक्त मानों सूख गया वैशालीके मुख्य लिच्छवी नेताओंसे चेटकराजकी अनबन थी; लिच्छवियोंकी शताब्दियों पुरानी सीढ़ीको तोड़कर उसने अपनी पुत्रियोंके विवाह वज्जियोंकी भूमिसे बाहरके महाराजाओंके साथ

किये थे। ऐसा करते हुए भी वह एकलिच्छवी था; और मगधकी शत्रुता उसके मनमें भी पूरी दृढ़ताके साथ थी। चेलना यह जानती थी कि यदि चेटकराज बिंबिसारको अपने राज्यकी सीमा पर भी देखे तो उसे छोड़ नहीं सकता; वह विस्मिति होकर देख रही थी कि बिंबिसार वहाँ आ कैसे गया?...

बिंबिसारने उसके मनकी बात समझ ली, और हँसते हँसते उसका हाथ पकड़कर भवनके एक कोनेमें ले गया; धरतीमें खुदे हुए एक गडढेके पास दोनों पहुँचे; बिंबिसार उस ओर संकेत करके बोला—‘यह सुरंग मगधकी सीमासे यहाँ तक मेरे गुप्तचरोंने तैयारकी है। मैं चेटकराजको अच्छीतरह जानता हूँ; उन्होंने मेरे आधीन और विरोधी कई राजाओंके पास प्रसन्नतासे अपनी कन्याएँ भेजी हैं, और भेजते हैं! पर अपनी ही एक कन्याकी इच्छाओंको वे रौंद रहे हैं। वे यह नहीं जानते कि मैं अपनी हृदयेश्वरीको लिए बिना छोड़ नहीं सकता। इसलिए मैंने यह मार्ग निकाला है।’

‘पर यह तैयारी आप :कबसे कर रहे हैं?’

‘जब हमारा प्रथम-मिलन हुआ तब ही से।’

‘अंतमें चेरीसे ही लेनेका प्रयास किया न?’

‘हाँ, मेरी प्रेयसीके पिता मेरे लिए भी पिता तुल्य ही हैं, और किसी मागधी राजाकी माता अपने पुत्रको पिताकी आज्ञा उल्लंघन करना नहीं सिखाती.. तब मेरे लिए दूसरा मार्ग ही क्या था?... मैं तुम्हारे पिताके सामने शस्त्र नहीं उठा सकता !....’

‘तब?’

‘मेरा महामंत्री ब्राह्मण है, उसने कहा है कि विवाहके दिन ही शुभ-मुहूर्त निकलता है। उस दिन सबेरे मैं अपनी रानीको इस मार्गसे ले जाऊँगा !...’

‘याने आजसे पाँचवे दिन?’

‘हाँ, पाँचवे दिन!’ यों कहकर बिंबिसारने चेलनाको अपनी ओर खींच लिया जो आँखोंके कोनेसे उसे देख रही थी।...

ठीक उसी समय, कुछ उसी तरह नगरसे दूर एक विजन महलमें पाली

अपने पीछे हृदय गँवा बैठने वाले चेटक राजाको समझा रही थी—

‘सच मानें महाराज, यदि आपने बिबिसारकी बात न मानी तो उसकी सेना चढ़ाई करके चेलनाकुमारीको ले जाएगी। चेलना आपकी पुत्री होते हुए भी हृदयसे विवाहिन कुमारीको रोका नहीं जा सकता; अप्रयशसे मिली हुई पराभवकी अपेक्षा आप एक साथ यश और सम्मानको स्वीकार क्यों नहीं करते...?’ इतना कहकर पालीने मदिराका एक भरा हुआ पात्र चेटकराजके मुँहमें उँडेल दिया। पीते पीते चेटकराज बोला—‘तुने यह कैसे समझ लिया कि वह चेलनाको ले जा सकेगा?’ पालीकी इच्छा हुई कि इस नारी-भक्त राजाको थप्पड़ लगाकर कह दूँ कि सुरंग उसके महल तक खोदी जा चुकी है, जिसे खोदनेका निश्चय बिबिसारके मंत्रीने किया था, और मंत्री को सुरंगका मार्ग दिखाने वाली वह स्त्रय है ! किंतु पाली चाहती थी कि सुरंगके विषयमें बिबिसार स्त्रय जितना अनभिज्ञ है उतना ही अनभिज्ञ चेटकराज भी रहे !... वह आशंकित न हो इसलिए पालीने बात बदली—

‘महाराज, मैं नर्तकी हूँ—लिच्छवी नर्तकी हूँ !’

‘नहीं, मेरी नर्तकी है !’

‘हाँ महाराज ! आपकी कृपासे देश विदेशसे कई राजदूत मेरे यहाँ नृत्य और संगीतसे मनोरंजन करनेके लिए आते हैं; कल मैंने जो भीषण समाचार सुना वह शीघ्रसे शीघ्र आपसे कहनेके लिए मैं यहाँ आई हूँ ! दो ही दिनोंमें आप सब वज्रियों लिच्छवियों और आपके मित्रोंको सहायताके लिए नहीं बुला सकते; प्रायः आधे लिच्छवी आपका साथ भी नहीं देंगे; उधर बिबिसार एक स्त्रीके लिए अपनी सारी सेना लेकर मिथिजापर चढ़ाई कर देगा !’

नशेसे कुछ सचेत होकर चेटकराजने आँखें चमकाई—‘एक स्त्रीके लिए?’

‘क्यों नहीं महाराज ? आप मेरे लिए इतनी रातको राजमहल छोड़कर एक योजन दूर मितने नहीं आए ! यदि एक राजा नर्तकीके लिए एक योजन दूर आ सकता है तो क्या दूतरा राजा अपनी पत्नीके लिए पचास योजन भी नहीं जा सकता?’...

चेटराज मयपात्र हाथमें लेकर पालीको देखने लगा ।

वैसे चेटराज उदारचित्त और समझदार था; यदि उसमें स्त्रीके लिए इतनी निर्बलता न होती, तो लिच्छवी ही क्या, समस्त वज्जियोंका स्वामी होनेकी क्षमता उसमें थी । वह अकेला ही लिच्छवियोंका खुला विद्रोह कर सकता था । पाली चेटराजके मनकी बात जान गई; वह उसके बिलकुल समीप आकर बैठ गई और इस चतुराईसे उसे समझाने लगी कि चेटराज उसके नृत्यकी अपेक्षा चतुराई पर अधिक मुग्ध हो गया ।

पालीकी वे सब बातें उसने मान लीं, फिर भी प्रकाश्य रूपसे वह बिंबिसारसे हारने या दामाद बनानेके लिए प्रस्तुत न था । पाली बहुत सूक्ष्मदृष्टिसे चेटराजको देख रही थी; वह चेटराजकी उस इच्छाको समझ गई जो बाहर न निकल कर मन ही मन अकुला रही थी ।

पाँचवें दिन प्रातःकाल विनिध वाय राजमङ्गलमें बज रहे थे । महाराजा चेटराज अम्य राजा महाराजाओंके सत्कारमें लगे थे; तब ही सहस्र रानी चीखती हुई उनके पास आई, बहुत घबराई हुई होनेके कारण वह स्पष्ट न बोल सकी किंतु उसके कहनेका भावार्थ यही था कि चेलना वहाँसे अटश्य हो गई थी ।

चेटराज सब कुछ छोड़कर चेलनाके शयनगृहमें पहुँचा । एक दासीने अकस्मात् सुरंगका मुँह देख लिया था, डरते डरते उसने महाराजको वह बता दिया । चेटराज, पत्नी और विशिष्ट योद्धाओंको साथ लेकर सुरंगमें उतर गये ।

सुरंगके दूसरे छोरसे बाहर निकलने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि वे दूसरेके राज्यमें आ पहुँचे थे । दोनोंने चेलनाको देखा, किन्तु चेलना अकेली नहीं थी, उसके साथ बिंबिसार भी था और उनकी विवाह-विधि अभी ही समाप्त हुई थी ।

चेटराजने सिर झुका लिया; चेलना और बिंबिसारने उनके सम्मुख बैठकर आशीर्वाद माँगा; मौन रहकर चेटराज और रानीने आशीर्वाद दिया और तब मागधी भूमिपर अधिक न ठहर सकनेके कारण वे दोनों

सुरंगमें अदृश्य हो गये। चेन्नना आँसूभरी आँखोंसे माता-पिताको जाते हुए देखती रही।

चेटकराज किंकर्तव्य-विमूढ़-सा सुरंगमें चला जा रहा था, वह यही सोच रहा था कि इतनी घटनाएँ एक साथ कैसे हो गईं ! पालीके वचन उसे अचरशः सत्य मालूम हुए; उसे अपने आप पर क्रोध हुआ। चलते चलते वह यही सोच रहा था कि अपना यह लज्जित मुँह दिखानेकी अपेक्षा कहीं चले जाना अच्छा है !

आवेशमें रानी शीघ्रतासे चली जा रही थी, चेटकराज भी उसी गतिसे उसके पीछे पीछे चला जा रहा था; एक एक करके उसने अपनी तलवार, कटार आदि सब शस्त्रास्त्र निकाल फेंके। उसके कान बधिर हो रहे थे, आवेश के कारण उसके वक्ता रक्त उछल रहा था। अंतमें वह चेन्ननाके भवनमें आ पहुँचा।

सुरंगके छोरसे चेटकराज पहिले निकला; ऊपर आते ही सहसा उसकी मुख-मुद्रा बदल गई, उसे इतनी प्रसन्नता हो रही थी कि जैसे भूत होकर वह जीवित हो रहा हो, जैसे अंधा होनेके बाद उसे आँखें मिल रही हों !... महारानी सुरंगसे बाहर निकली, वह महाराजके इस परिवर्तनको विस्मित होकर देख रही थी।...

राजा और रानीके सम्मुख, गंभीर मुँह बनाकर वैशालीकी नर्तकी आम्रपाली खड़ी थी; उसने दोनोंको नमस्कार किया। राजा उसके पास आकर आवेशमें बोल उठा—

‘पाली, तू मानेगी ? मैंने सुरंगसे बाहर निकलते ही एक निश्चय कर डाला था !’

पालीने पूर्ववत् गंभीर मुँहसे उत्तर दिया—‘मैं जानती हूँ !’

‘तू जानती है ? क्या ?’

‘मगधराजको मार डालनेका निश्चय !’

‘ऐं, पाली !...’ चेटकराज विस्फारित नेत्रोंसे उसे देखने लगा। वह उसके मनके तर्क-वितर्क भी जानती थी !

‘मैं लिच्छवी हूँ राजन् !’ पालीने मुस्कराकर एक बड़ी बात कह दी—‘और आप भी लिच्छवी हैं; क्या मैं आपको नहीं पहिचान सकती !’

‘तुझे देखकर मुझे एक प्रकारकी शांति मिलती है, पाली !’

‘इसीलिए तो मैं यहाँ आई हूँ !’

रानी पीछे ही खड़ी थी, पालीकी चतुर आँखोंने उसके मनकी बात जान ली। हँसते हँसते वह बोली—‘महाराज, एकांतमें चलें: मुझे आपसे और महारानीसे कुछ प्रार्थना करनी है ! आप उससे संतुष्ट होकर उसके अनुसार करें तो मेरे अहो भाग्य !’ कहकर पाली, चेटकराज और महारानीको दूसरे भवनमें ले गई; उसने दूसरे सबोंको वहाँ से चले जानेकी आज्ञा दी। तब वह एकांतमें उन दोनोंको अपना सोचा हुआ एक नया मार्ग समझाने लगी।

[४]

नगरश्रेष्ठीका साहस बैठा जा रहा था। आज वैशालीके संथागारमें भीषण कोलाहल हो रहा था ! युवक लिच्छवियोंकी हुंकारों, शस्त्रोंकी खन-खनाहट और अश्वोंकी हिनहिनाहटने वहाँके वातावरणको रणक्षेत्रकी तरह उग्र बना दिया। पूर्ववत् अनुशासनका भाव होनेपर भी, अभयको मृत्युके बाद अनेक राजाओंके मनमें स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करनेकी आकांक्षा जाग उठी थी। अभी भी आज्ञापालन शिथिल नहीं हुआ था; स्वातंत्र्य प्रेमी लिच्छवियों का उत्साह और शौर्य पहलेसे जरा भी कम न होनेपर भी संथागारमें अब एक वैसे प्रतापी लिच्छवी सभापतिकी कमी मालूम होती थी जो सब ही सभासदों को संथागारमें एक साथ, एक छत्रके नीचे खड़ा कर सकता। तीन चार शक्तिशाली राजा संथागारमें अपनी सत्ता जमानेका प्रस्तुत हो रहे थे। इस अवस्था में यह बिल्कुल स्वाभाविक था कि प्रामाणिकतासे पूर्वजोंकी रूढ़ि निबाहने वाले एक वृद्ध नगरश्रेष्ठीको सभापतिका पद मिल जाय। किंतु अब इन लोगोंको एक साथ किसी एक ही मार्गपर ले जाना, नगरश्रेष्ठीकी शक्तिके बाहरकी बात थी।

संथागारके ही एक लिच्छवी अधिकारी चेटकराजने लिच्छवी संथागारक

अवहेलना की थी; उसने एक नहीं, तीन बाह्य राजाओंसे अपनी पुत्रियोंके विवाह किये थे, इतना ही नहीं इस बार उसने वैशालीके लिच्छवियोंके कट्टर शत्रु बिंबिसारसे एक कन्याका विवाह करके उनका क्रोध उग्र बना दिया था। आज परिषद होनेका यही कारण था, और इसीलिए प्रत्येक लिच्छवीका रक्त उबल उठा था। अपने आसनकी महत्ताका ध्यान करके नगरश्रेष्ठी अपनी घबराहट और पैरोंका कंपन कठिनाईसे छुपाता हुआ सबोंको शांत करनेका प्रयत्न करने लगा।

सत्ताके आकांक्षी शिवि राजाने बात उठाई; श्रोताजनोंको भड़कानेके लिए वह जोरसे बोला—‘सभापति, चेटकराजको लिच्छवी गणतंत्रसे पदच्युत किया जाय ! उसे कठोर दंड दिया जाना चाहिए !’ तब ही दूसरा सभासद बोल उठा—‘शिविराज सच कहते हैं, चेटकराजको ऐसा दंड मिलना चाहिए जिससे एकाधिकारसे सत्ता चलानेवाले और लिच्छवी परम्पराको तोड़नेवाले लिच्छवियोंको सही शिक्षा मिले!’ शिवि राजा और उसके समान दूसरे सत्ताकांक्षी राजाओंकी दृष्टि उस ओर गई—यह था चिरंजीव; वह युवक, जो वंशपरम्परागत लिच्छवी पुरुषत्वका सच्चा और आदर्श उत्तराधिकारी था। वह आगे बोला—‘पूर्वजों द्वारा संस्कारित संथागारसे दूर जानेवालों, लिच्छवी गणतंत्रसे अलग होनेवालों, उसकी अवहेलना करनेवालों या उसमें बैठकर अपनी एकछत्र सत्ताके महत्वाकांक्षियोंके हाथ, पैर या शरीर छेदनेसे या उनके प्राण ले लेनेसे ही हमें संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए ! उसे ऐसा दण्ड मिलना चाहिए जिसके गंभीर परिणामका अनुभव उसका रोम रोम करे ! लिच्छवी गण एक हैं और एक रहेंगे ! जो लिच्छवी, लिच्छवी परिषदसे अलग हो वह जीवित रहने योग्य नहीं है !...’ तुरन्त दो तीन युवक सभासद बोल उठे—चिरंजीव सच कहता है !... चेटकराज और उसके उपराजाओंको नष्ट करो !’

‘आज ही !’

‘अभी ही !’

‘लिच्छवी सदैव तैयार रहते हैं !...’

‘वीरता-प्रेरक आम्रगलीको बुलाओ !’

‘हम वहींसे युद्धके लिए प्रयाण करेंगे !’

‘आम्रपाली, लिच्छवियोंको रण-भूमिकी ओर प्रयाण करानेके लिए प्रस्तुत है, किन्तु एक लिच्छवीसे लड़नेके लिए नहीं !’ कोई बोला ।

सब सभासद चौक उठे; पाली संथागारके सिंहद्वार पर खड़ी थी ।

उपर्युक्त वाक्य पालीने बहुत दृढ़तापूर्वक कहा था; सब अवाक् होकर उसे देखने लगे ।

पाली नर्तकी थी या स्वामिनी ?.. उसके छुम छुम पायलोंवाले चरण, सभाको मुरध करते हुए आगे बढ़े, उनमें दृढ़ता थी । पाली, सभाके बीचों-बीच प्रवेणी-पुस्तकके सम्मुख आकर खड़ी हुई; पुस्तकको वंदन करके उसने सभापतिको प्रणाम किया । देशनर्तकीको परिषदमें आनेकी आज्ञा थी; इसलिए पालीके आ जानेसे नगरश्रेष्ठी प्रसन्न हुआ । परिषद, हृदयस्वामिनी पालीसे प्रभावित होकर कुछ देर तक शांत रही; नायक, राजा और उपराजागण मिलकुल मौन बनकर बैठे रहे ।

पाली बोली—‘लिच्छवी परिषदकी जय हो ! सभापतिकी जय हो !’

‘सभापति, सेविकाको लिच्छवी गणतंत्रसे एक निवेदन करनेकी आज्ञा हो !’

‘आज्ञा !’

‘पूज्य परिषद !’ आम्रपालीने निवेदन करना प्रारंभ किया—‘दिशनर्तकी उत्तर चाहती है, लिच्छविगण किस दिशाकी ओर बढ़ रहे हैं ? वीरत्वकी ओर या पशुत्वकी ओर...?’

शिविराजा बोल उठा—‘परिषद अपमानित होती है !’

पाली खीझकर बोली—‘तो क्या परिषद अपना परंपरागत पुराय खो बैठी है ?...सभापति ! प्रवेणी-पुस्तकका प्रथमखंड आज्ञा देता है कि शाश्वत बंदनीय प्रवेणी-पुस्तकके आस-पास, लिच्छवी संथागारमें एकत्रित होकर, लिच्छवी गणतन्त्रकी परिषद सदा पवित्र रहती है ! कोई भी लिच्छवी उसका अपमान नहीं कर सकता ! उसी तरह जिस तरह अग्निशिखरपर जलबिंदु गिरता है !... तब क्या परिषद सचमुच अपमानित हुई ?’

‘नहीं !’ चिरंजीव बोल उठा ।

‘प्रवेणी पुस्तकका अठारहवाँ खंड आज्ञा देता है....’ पाली दृढ़तापूर्वक बोलने लगी—‘कि प्रत्येक लिच्छवीको प्राण-प्रणसे प्रयत्न करना चाहिए कि लिच्छवियोंकी एकता नष्ट न हो, उनमें मतभेद उत्पन्न न हो ! अलग अलग होनेसे लिच्छवियोंका सम्मिलित अहंभाव नष्ट हो जायगा....’ सभापति महोदय उत्तर देंगे ?.... एक भुजा काट डालनेसे दूसरी भुजा बलवान अवश्य होगी, पर क्या एक भुजा दोनों भुजाओंका कार्य कर सकेगी ?.... क्या चेटक राजाको नष्ट करनेसे लिच्छविगण शक्तिशाली होंगे ?’

शिविराज आँखें लाल करके बोला—‘चाहे जो हो, गणतंत्रद्रोही लिच्छवी चेटकका नाश होना ही चाहिए !’

पालीने गम्भीर स्वरसे कहा—‘कुमार्गपर गये हुए लिच्छवियोंको सन्मार्गपर लाना लिच्छवियोंका कर्तव्य है ।’

शिविराज अपमानित होकर यह बात माननेके लिए तैयार नहीं था; बोला—‘प्रवेणीपुस्तक यह आदेश नहीं देती ।’

आम्रपालीके पास इसका उत्तर प्रस्तुत था; बोली—‘आपके अज्ञानके लिए दक्षिणापथकी किसी स्त्रीको भी लज्जित होना होगा ।... प्रवेणी पुस्तकके बीसवें खंडका अंतिम अनुष्टुप किसीसे पढ़ाकर सुन लीजिएगा ।’

एक उरराजा, जो शिवराजका मित्र था बोला—‘सभापति, एक स्त्री इस परिषदके सभासदका अपमान कर रही है ।’

इस बार नगरश्रेष्ठी साहस करके बोला—‘लिच्छवी परिषदमें स्त्री और पुरुषका भेद नहीं है; यहाँ सब ही लिच्छवी हैं ।’

चिरंजीवने धीरेसे शिविको खिझानेके लिए कहा—‘इसके लिए प्रवेणीपुस्तक के प्रथम खण्डका तीसरा श्लोक पढ़ लीजिए...’ फिर खड़ा होकर बोला—‘सभापति, यदि परिषद प्रवेणी-पुस्तकको भुला देनेवालेके लिए दंड देनेका निर्णय करे तो प्रवेणीपुस्तकका अंतिम खंड एक नये नियमके साथ समाप्त होगा ।’

शिवि जल उठा; फिर भी कुछ बोल न सका ।

तब नगरश्रेष्ठीने गम्भीरतापूर्वक पूछा—‘किस इच्छासे आगमन

हुआ पाली ?'

पाली इसी क्षणकी प्रतीक्षा कर रही थी; उसने एक बार परिषदकी ओर देखा और तब नगरश्रेष्ठीकी ओर घूमकर बोलने लगी—'सभापति, आज जिस लिए परिषद एकत्रित हुई है उसी कारणको लेकर मैं यहाँ आई हूँ। आज चारों ओरके राज लोग शक्तिशाली लिच्छवी प्रजाको नष्ट करनेके लिए उद्यत हो रहे हैं; वे यही चाहते हैं कि हम उनसे युद्ध करें, कटें, कम हो जायँ कि अन्तमें हम सब नष्ट हो सकें।.. चेटकराज शक्तिशाली लिच्छवी है; दूसरे राजाओंने उन्हें हमसे दूर किया है; चेटकराजके अलग हो जानेसे लिच्छविगणका शक्तिमय हाथ टूट जाएगा ॥ आज आप उसका बहिष्कार कर रहे हैं, कल किन्हीं दूसरोंका बहिष्कार करेंगे, इस तरह समस्त जंबूद्वीपमें विख्यात लिच्छविगणका ऐक्य और समूहशक्ति नष्ट हो जाएगी। प्रवेणीपुस्तक शक्तिशाली राष्ट्रोंसे सम्बन्ध स्थापित करनेका निषेध नहीं करती, किन्तु कुछ बादमें मिलाये हुए नये नियमोंने ही लिच्छवियोंको अकेले रहनेकी आज्ञा दी है। सच पूछें तो प्रवेणी-पुस्तक अपने स्वामिमान रखते हुए अन्य महान राजाओंके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेकी स्पष्ट आज्ञा देती है।...यदि चेटकराजकी चार कन्याओंके बाहर जानेसे शत्रुओंके मनसे शत्रुता नष्ट होती है तो इसमें लिच्छवियोंकी क्या हानि है? लिच्छविगण शक्तिशाली हैं, किन्तु उस शक्तिको सुरक्षित रखनेसे ही हम प्रगति कर सकते हैं; शक्तिको व्यर्थ व्यय करनेसे हमारा विनाश स्पष्ट है। शत्रु हमें उभारेंगे और लिच्छविगण स्वदेशप्रेमके नामपर नष्ट होते जाएँगे; प्रजा कम होगी। इसी बातपर हमें ध्यान देनेकी आवश्यकता है। लगातार युद्धके कारण लिच्छवी प्रजाके नष्ट होनेकी अधिक संभावना है। इसीलिए मैं कहती हूँ राष्ट्रोंका आपसी सम्बन्ध एक दूसरेको अधिक शक्तिशाली बनाएगा; स्वतन्त्र लिच्छविगण अधिक शक्तिशाली होंगे।...पूज्य परिषदसे मेरी यही प्रार्थना है कि वह चेटकराजका सम्मान करे, अपमान नहीं; लिच्छविगण-तन्त्रमेंसे उसका अन्तर्भाव नष्ट न हो।'

‘पर बिनासित हमारा शत्रु है।’ शिविके मित्रने कहा।

पालीने तुरन्त मुँह फिराकर उत्तर दिया—‘वैशालीके लिच्छवियोंका शत्रु है, समस्त वज्जियोंका नहीं ।’

‘शत्रुकी संगति...’

‘परिषदसे द्रोह कराती है !’

‘वैशालीके लिच्छविगण वज्जि हैं, इसलिए बिंबिसार वज्जियोंका भी शत्रु है ।’

पालीने चारों ओर देखा; परिषदके कुछ सदस्य विरोध कर रहे थे। उसका स्वर बदल गया; वह नम्रतापूर्वक सभापतिसे बोली—‘शत्रुसे, युद्धको छोड़कर उसे मित्र बनानेकी आज्ञा भी परिषद दे सकती है, यदि वह हमारे आगे भुके ।’

भट्ट शिविने कटाक्ष किया—‘प्रवेणीपुस्तक ऐसी आज्ञा भी देती है ?’

पालीने सिंहनीकी तरह मुँह फिराकर शिविको देखा और व्यंग्यपूर्ण स्वरमें बोली—‘जब प्रवेणीपुस्तकके अन्य खंड सुनें, तब उनचासवाँ खंड सुनना भी न भूलें ।...’

पुनः पालीने सभापति की ओर देखा और लिच्छविगणकी स्वामिनी हो इस तरह आज्ञापूर्ण स्वरमें विश्वासके साथ बोली—‘सभापति, वीर लिच्छवियोंको शोभा दे वैसी ही सूचना मैं परिषदको देने आई हूँ; परिषद सम्मति दे कि लिच्छवियोंको प्रतिभासम्पन्न, अमेश्व और सम्मानित रखनेके लिए वह चेटकराजके कार्यको मान्य करे क्योंकि इस समय परिषदके सम्मुख यही एक सही मार्ग है । लिच्छवी परिषदकी जय हो ! जय स्वदेश !!’

कुछ क्षणों पश्चात् उस लिच्छवी संथागारमें विद्युत्प्रकाशकी तरह सारी परिषदके मुखसे यही उद्गार निकलने लगे; और संथागारके बाहर खड़े हुए श्रोताओंने उन्हें सम्मानित किया । महानामकी पुत्रीने, महानामका विस्मृत तेज जय-जयकार और जयनादके बीच पुनः झुलका दिया !

[५]

आज चेटकराजके पैर धरतीपर न पड़ते थे । दूर दूरके प्रान्तोंसे लिच्छवी नायक और राजा लोग आये हुए थे । आज समस्त लिच्छवी

नेतागण एक ही भूमिपर एकत्रित हुए। आज वे सब लिच्छवी महारथी जो सदासे एक दूसरेसे दूर रहते थे, हाथमें हाथ डालकर बैठे थे। चेटकराजकी राजधानीमें, पुनः वर्षों पहलैकी एकताके दिन आ जानेसे मंदिर प्रसन्नता चारों ओर फैल रही थी।

लिच्छवियोंकी लोकप्रिय पालीने परिषदको विजित किया था; तर्कोंसे और प्रेमसे भी। केवल पालीकी सामर्थ्यसे ही वैशालीके अन्य लिच्छविगण एकत्रित हुए थे। जो श्रेष्ठतम कार्य परिषद नहीं कर सकी, वह कार्य देशके लिए पालीने कर दिखाया था। आज उराने एक लिच्छवी, एक स्थान, और एक स्वर निश्चित किया, इसलिए सबसे अधिक प्रसन्नता देशनर्तकीके ही हिस्से में थी।

कल खेलना बिदा होगी और उसके साथ ही साथ अन्य लिच्छवी राजा भी; इसलिए आजकी सभाका महत्व अधिक था। चेटकराज एकके बाद एक लिच्छवी नेताओंका बिंबिसारसे परिचय कराता जा रहा था; बिंबिसारके उस समयके शिष्टाचार और नम्रताने मानों लिच्छवियोंके गर्वको सन्तुष्ट कर दिया।

वीर लिच्छवियों और मागधी सरदारोंसे पूरा राजदरबार भर जानेके बाद वहाँ बिंबिसार और चेटकराजने प्रवेश किया और मुस्कराते हुए सबोंको नमस्कार करते हुए आगे बढ़ते गये।

प्रसन्नता होते हुए भी सबोंका मन पालीकी कमीका अनुभव कर रहा था। इन लोगोंकी प्रतीक्षाके बाद अंतमें विवाह-मण्डपमें न आकर नर्तकी पालीने सभामण्डपमें प्रवेश किया। बिंबिसारने वर्षों बाद पालीको देखा था; आँखें चार होते ही बिंबिसारने मुँह फिरा लिया। पहले तो वह पालीको देखते ही स्तब्ध हो गया, तत्क्षण उसके हृदयमें एक आवेग उठा कि उसी क्षण दौड़कर पालीसे लिपट जाए; किंतु कुछ ही क्षणोंके अन्तरने उसके शरीरमें क्रोध, ईर्ष्या और लज्जाकी भावनामय आग प्रज्वलित कर दी। उसके लिए मुँह फिरानेके सिवा दूसरा मार्ग ही न था।

किंतु पाली अपने प्रियतमकी मूर्तिको, कई क्षणों तक इस तरह देखती रही मानों उसे हृदयपर चित्रित कर रही हो। तब वह उसे देखकर, मुस्कराती:

हुई सभाकी ओर देखने लगी। वाद्य और साज तैयार हुए, प्रेक्षकोंने देखनेके लिए सिर उठाये और नर्तकी पालीके हाथ पैर संगीतकी तालके साथ नृत्य करने लगे। देखते देखते सारी सभा भूमने लगी, राजासे लेकर द्वारपाल तक सब पालीके नृत्यसे आकर्षित हो गये, राबोंकी आँखें पालीपर जा लगीं।

केवल बिंबिसार ही नर्तकी पालीके नृत्यको जी भरकर नहीं देख सका। प्रारंभमें पालीको देखते ही उसका मन प्रीतिसे आलहादित हुआ था, किंतु अब घृणा और धिक्कारसे तपकर उसकी आँखें अङ्गारों सी लाल हो उठी थीं। जब पालीने नृत्य करते हुए सब दर्शकोंका मन अपनेपर स्थिर कर लिया, तब बिंबिसारका मन कभी पालीको नष्ट करनेके लिए उद्यत हुआ, कभी उसे देखते ही संन्यास ले लेनेके लिए उदासीन हुआ और कभी पति-द्रोही स्त्रीके रूपमें भरी सभामें हाथ पकड़कर लाने और वहाँ तिरस्कृत करके जला देनेकी उत्तेजनासे फड़क उठा।

किंतु जब तक नृत्य होता रहा, वह अपनी विभिन्न भावनाओंसे दग्ध होता रहा क्योंकि सारी सभा आम्रपालीपर मुग्ध होकर उसके नृत्यको निर्मि-मेष दृष्टिसे देख रही थी। पालीके अंग-प्रत्यंग, उसकी मदमयी गति-शीलता, उसका प्रत्येक क्षणवर्ती अभिनय, उसकी मनोहर मुद्राएँ और अंग-विन्यास, उसके अधरोंकी मुस्कान और मुखपरकी भावभँगिमाने प्रत्येकको विमूढ़ बना दिया। अपने नृत्यके पीछे प्रत्येकको पागल बनाकर पाली 'न भूतो न भविष्यति' हो गई थी। आजकी सभा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण थी। जब नृत्य समाप्त होने आया तब, पालीने नाचते नाचते बिंबिसारके निकट आकर उसके चरणोंमें फूलोंकी एक रसमयी सुन्दर भेंट रख दी और नृत्य समाप्त किया। बिंबिसारकी सहनशीलताका सीमोल्लंघन हो गया, उसने भरी सभामें आम्रपालीकी ओर देखा भर नहीं बल्कि उसके जाते ही लोगोंकी दृष्टि बचाकर उस फूलोंकी सुकुमार भेंटको मसल डाला! संजय निकट ही खड़ा था, पुष्पोंके रौंदे हुए उपहारको देखकर उसका हृदय आहत हो गया; उसने उन फूलोंके भीतर सोलह शृङ्गारोंसे सजी हुई उस छोटीसी कठपुतलीको देखा।

इतना ठीक था कि सभा अभी तक पालीके नृत्यमें विभोर होनेके कारण

सुधमें न आई थी इसलिए बिंबिसारका वह तीव्र क्रोध देख न सकी नहीं तो कुछ ही क्षणोंमें वहाँका वातावरण जाने क्या स्वरूप धारण कर लेता ! किंतु बिंबिसारकी वह विशुद्ध क्रिया चेटकराजसे छुपी न रही; उसे भी क्षोभ हुआ, पर मौन रहा। पालीके उस मदमय प्रेमरमने उसके मनमें जामाताके प्रति रोष भी उत्पन्न किया; उसने एकबार मृदु दृष्टिसे पालीकी ओर देखा भी, किंतु उससे दृष्टि मिलाने ही आँखें झुक गईं।

सभा समाप्त होते ही बिंबिसार शीघ्रतापूर्वक वहाँसे चला गया। संजय-को दुःखके साथ ही साथ क्रोध भी हुआ; वह निराश हो गया। दोनोंके हृदयकी बात ठीक तरहसे वही जानता था, और यही उसके निराशामय दुःखका कारण था।

रात हुई। विवाहकी प्रथम-रात्रिके विषयमें जो कुछ कवियों और राज-गायकोंने गाया है, आज वैसा कुछ ज्ञात न होता था, जो भी चेटकराजका वृद्ध बीनकार वीणाके तार छेड़ रहा था। मनमें अननुभूत भावनाओंको सहला कर चलना प्रथम-रात्रिका संगीत सुनती हुई बिंबिसारकी प्रतीक्षा कर रही थी; वृद्ध बीनकारकी तानें उसकी उत्कण्ठाओंको जागृत कर रही थीं, किंतु अभी तक बिंबिसारने शयनगृहमें पैर न रखा। चलनाका हृदय विभिन्न भाव-नाओं और विचारोंसे कंपित हो रहा था; उसे पौ फटने ही यहाँसे बिदा होना था। राजमाता दस बार कानोंमें कह गई थी कि उसे बहुत सचेरे उठ जाना चाहिए क्योंकि चैत्य-पूजा भी करनी थी; चलना यह बात बहुत अच्छी तरह जानती थी कि बिदाके पहिले बहुत भक्ति-पूर्वक चैत्य-पूजा करनी चाहिए नहीं तो अनिष्ट होता है !

रात गहरी हो चली, चन्द्र आकाशमें दौड़ा जा रहा था। चलनाका बहुत सावधानीसे किया हुआ श्रृंगार अस्तव्यस्त होने लगा। पुरुषको बाहर से आसक्त कर देनेके स्त्री-सुलभ स्वभावको लेकर ज्यों ज्यों रात बीतने लगी त्यों त्यों उसके मनका भय बढ़ने लगा—यदि ठीक समय पर उसे बनना चाहिए वैसी न बन सकी तो ?...समयके बीतनेके साथ उसकी आशंका भी बढ़ने लगी कि संभवतः बिंबिसार न भी आये; कौन जाने, संभव है प्रथम-रात्रिमें

स्त्रीको न देखनेकी मागधियोंमें कोई प्रथा भी हो !.. वृद्ध बीनकारका संगीत अभी तक रुक न सका था !...

बहुत देरके बाद बिंबिसार आया; उसके मुखपर उत्साहके स्थान पर खेद था; आनन्दके स्थान पर अरुचिकी रेखा मुखपर स्पष्ट दिखाई दे रही थी। फिर भी चलनाको देखते ही ऐसा ज्ञात हुआ मानों उसे कुछ आसरा मिला हो; यह भी उसे याद आया कि यह विवाहकी पहली रात है। ऐसी अनेक सुहागरातोंका बिंबिसारको अनुभव था; आज वह अपने मनकी सब व्याकुलताओं को दबाकर चलनाको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगा !...स्त्री और पुरुष मनीषी और बुद्धिमान होते हुए भी प्रणयकी एक विशेष मर्यादा या परिधिके भीतर केवल स्त्री और पुरुष ही बन जाते हैं; उस समय उन्हें देखनेवाला कोई तीसरा व्यक्ति उन्हें उन्मत्त समझ बैठता है। चलना और बिंबिसार उन्मादकी उस मर्यादाको लौंघ चुके थे। वह बोली—‘राजसभामें मुझे याद करते थे?’

‘हाँ!’

‘सच कहना, कितनी याद करते थे?’

‘उतनी, जितनी समझाई नहीं जा सकती!’

तब झूठ बोलते हो ! मैं वहाँ याद ही कैसे आ सकती हूँ जहाँ देवोगना जैसी नर्तकी नृत्य कर रही हो !...सच कहना, नृत्य बहुत अच्छा लगा?’

‘नहीं!’

‘अर्थात्?’

‘नहीं सुहाया!’

‘क्या? नृत्य या नर्तकी?’

‘दोनों!’

‘क्यों?’

‘मालूम होता है, मुझे बहुत सुहाया है!’ बिंबिसार कटुता छुपाकर बोला।

‘हाँ, नृत्य तो सुहाता ही है, पर उससे भी अधिक नर्तकी सुहाती है ! आप जानते हैं, यदि वह न होती तो हम इस तरह नहीं बैठ सकते थे।’

बिबिसार, मनुष्यताके बहुत निम्न-स्तर पर द्रोने वाली ईर्ष्यासे जल उठा। वह किसी भी रूपमें पालीका नाम सुनना नहीं चाहता था। इस बार उसने अपने भावोंको बहुत प्रयत्न करके दबा रखा।

बिबिसारको अचानक चुप देखकर चेलना उसके और समीप आ गई बोली—‘मुझसे आपने पूछा नहीं, कैसे?...अच्छा, रहने दो, मैं ही कहती हूँ...आप जानते हैं कि सबसे अधिक आपकी प्रशंसा करने वाला कौन है?... यही प्रसिद्ध नर्तकी। रात दिन मेरे सम्मुख आपके ही गुणगान करने वाली भी यही सुंदर नर्तकी है! अब मुझे मालूम हुआ कि वह बहुत बड़ा चढ़ाकर आपकी प्रशंसा करती थी—मुझे फुसलानेके लिए!...’ चेलनाने आँखोंमें मृदु रोष भरकर कहा।

बिबिसार अचानक हँस पड़ा, बोला—‘तुम्हें फुसलानेमें नर्तकीको क्या लाभ था?’

बिबिसारके इस प्रश्नमें, कटुता छुपी हुई थी; यह बात चतुर चेलना समझ गई। वह रंगमें भंग करना नहीं चाहती थी; मृदु मुस्कानके साथ बोली—‘नर्तकियाँ आपको पसंद नहीं हैं?... यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है! मुझे तो बहुत पसंद हैं!’

‘मैंने कब कहा कि नर्तकियाँ मुझे पसंद नहीं हैं?’

‘तब यह नर्तकी ही पसंद क्यों नहीं है?...महाराज, आम्रपाली केवल नर्तकी ही नहीं, मेरी सखि भी है, गुरु भी है! देव, पाली अद्भुत है!... क्या आप उसे नहीं पहचानते?’...

बिबिसारके पैरोंमें जैसे काँटा चुभ गया!...घबराहटके कारण वह कन्ध में टहल रहा था; यह बात सुनकर न वह आगे बढ़ सका न पीछे। खड़े खड़े वह केवल चेलनाको देखता रहा...पालीको, अपनी पालीको क्या वह स्वयं नहीं पहिचानता? उसकी इच्छा चेलनासे यह पूछनेकी हुई कि वह पालीको कितनी पहिचानती है? उसके हृदयमें आम्रपालीके लिए जो कटुता थी, वह चेलनाकी बात सुनकर और बढ़ गई; किंतु उसने बलात् भावोंको उभर आनेसे रोक लिया। विवाहकी पहली रातको इसके सिवा कोई दूसरा मार्ग न

था; बोला—‘तुम सच कहती हो, मैं उसे नहीं पहचानता !’

‘तो ऐसा कष्ट; आप जानते हैं यदि वह देशनर्तकी न बनती तो क्या करती ?’

बिंबिसारने सोचा था कि चेलना देशनर्तकीकी बातको छोड़ देगी, किन्तु उसकी बात बढ़ती जानेके कारण ऊबकर मुखपर खेदका भाव दबाकर वह बोला—‘आत्म-हत्या करती !’

‘महाराज !’ चेलनाने प्रेम-भरा रोष दिखाते हुए कहा—‘ऐसा अशुभ मुँहसे न निकालिए...आम्रपाली किसी महाराजाकी रानी बनती !’

बिंबिसार एकाएक बोल उठा—‘अशक्य, असम्भव ! एक तुच्छ नर्तकी !...’

‘हाँ, महाराज...’ बिंबिसारको चिढ़ानेके लिए चेलना बोली—‘एक दिन ऐसा भी था, जब हम सब बहनोंने यहाँ सुना था कि महानामकी पुत्री आम्रपाली, मनसे बिंबिसारको वरण कर चुकी है; हम सुनती थीं....’

‘क्या सुनती थीं ?...’ बिंबिसार एकदम चौंकर घबराहटमें पृष्ठ बैठा । रानी चेलनाने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—‘सुनती थीं कि मगधराज छद्म-वेशमें पालीको देखने गये थे; और बड़ीसे बड़ी हानि सहकर उससे विवाह करनेका प्रयत्न किया था....यह बात सच है ?...’

‘भूठ...बिलकुल भूठी बात है !’

‘आम्रपाली मुझे यह कहना कैसे भूल गई कि मेरे महाराज असत्य बोलना बहुत अच्छी तरह जानते हैं ?...’

बिंबिसार चेलनासे हार गया; किन्तु अपनापन बचानेके लिए वह बोला—‘देवि, मैं देखने अवश्य गया था, पर पालीको नहीं....’

‘पर पालीको देखा तो था न ?’

‘हाँ, पर जानेका कारण दूसरा ही था !’

‘...विवाद करने का ?’

बिंबिसारने चेलनाके हाथ पकड़ लिये; और उसके बहुत समीप जाकर बोला—‘देवी, यह बात हम यहीं समाप्त नहीं कर सकते ?’ चेलना बिंबिसारको वैसे ही छोड़ देनेवाली न थी, उसका मन चंचलता से मस्त हो रहा था; बोली—‘ना प्रभु, आज मैं अपनी सखिको नहीं भुल सकती !...’

बिंबिसारने चेलनाके हाथ छोड़ दिये, और कुछ दूर हट गया। क्षण-भर चेलना उसे देखती रही, तब कुछ आर्द्र स्वरमें बोली—‘देव, उस प्रेम-मयीके कारण ही मुझे यह महत् सुख देखनेको मिला है, इसे मैं भूल नहीं सकती; उसीने मेरे मनके द्वार खोले हैं ! मैंने विवाह न करनेका निश्चय किया था फिर भी जाने कैसे मैं उसके शब्दजालमें फँस गई।...मुझे उसने झकझोर कर कैसे जगाया, मेरे विषादमय जीवनमें कैसे उसने प्रेमांकुर उत्पन्न किया; मैं संसारको किसी और ही तरहसे क्यों देखने लगी, मैं आपकी कैसे बन गई—यह सब मैं कुछ भी न समझ सकी !...और जब समझी तब केवल आम्रपाली ही याद रही !...महाराज, यह दिव्यनर्तकी अद्भुत है, आज उसके पुण्य-प्रतापसे सर्वत्र मंगल दिखाई दे रहा है !...आज उसी मंगलमयीके कारण यह नगरी इन्द्रपुरी बन गई है !...महाराज, आपके जीवनमें प्रविष्ट होनेके लिए पहला पैर रखते हुए मैं आपसे एक ही वस्तु मांगती हूँ—मेरी सखिको आप घृणासे नहीं, प्रेमसे देखेंगे !...और कुछ भी नहीं तो केवल इसी लिए कि वह मेरी सखि है !...’

चेलनाके कंठकी अतीव आर्द्रतामें छुपी हुई सच्ची भावनाको बिंबिसार जब होकर देखता रहा। चेलना खड़ी हो गई और बिंबिसारके दोनों हाथ पकड़कर पुनः बोली—‘वरदान दीजिए महाराज, वचन दीजिए !...’

उत्तरमें बिंबिसारने चेलनाको पकड़ लिया और चन्द्रिकासे अभिषिक्त अट्टालिकामें ले जाकर बोला—‘प्रयत्न करूँगा, चेलना, अवश्य प्रयत्न करूँगा !...’ कह कर उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी।

इस समय वृद्ध वीनकारका संगीत अपनी सम्पूर्ण गतिसे खिल उठा था।

रात बढ़ने लगी...जब चेलना गहरी निद्रामें मग्न थी, तब धीरे-धीरे बिंबिसार शय्यासे उठकर खड़ा हो गया, वह उसका मुख निहारने लगा—चेलनाके निर्दोष मुखपर मानों अभी भी वे ही शब्द खेल रहे थे—‘वरदान दीजिए महाराज, वचन दीजिए...मेरी सखि को आप घृणासे नहीं, प्रेमसे देखेंगे...!’ बिंबिसार धीरे धीरे वहाँसे बाहर आ गया, उसका मन भ्रमित हो रहा था; कुछ भी सूझ नहीं रहा था, हृदयकी घबराहट तीव्र हो गई थी। महलसे बाहर आकर वह धीरे धीरे उद्यानमें आकर बैठ गया।

सहसा उसे ध्यान आया कि वह उद्यान-विहारके लिए बनाये गये एक आसनके पास बैठा था, उससे कुछ ही दूर, प्रायः बहुत ही कम अन्तर पर एक मन्दारवृक्ष था, उसके पास ही जुही, और उससे लगी हुई मालती थी...उसे नन्दीग्राम याद आया। उस महलका उद्यान याद आया, और उद्यानकी बैठक; ओह ! सुगन्ध भी वैसी ही थी; उसने ऊपर देखा—चन्द्रमा भी वैसा ही था; इधर उधर देखा—रात भी वैसी ही थी; यदि कमी थी तो पत्तोंकी खड़खड़ाहट करके किसीके आगमनकी !...उसे भ्रम हुआ, पुनः पत्तोंकी खड़खड़ाहट हुई; उसने पीछे देखा और चौककर खड़ा हो गया; जीभके छोर पर आया हुआ आम्रपालीका नाम वहीं रुक गया !...पत्तोंकी खड़खड़ाहट उसका भ्रम नहीं, सत्य था। बिबिसारने देखा कि एक छेटेसे पौधेको हटाकर संजय उसके सम्मुख खड़ा हुआ है। भ्रम टूट गया; दोनों एक दूसरेको देखते रहे। बिबिसारने विस्मित होकर पूछा—‘संजय, तू अभी तक मेरे पीछे पीछे ही घूम रहा है !...’

‘नहीं, देव !’

‘नींद नहीं आती ?’

‘नहीं, महाराज !...’

‘तब और कोई कारण नहीं है !’

‘है, देव !’

‘तो अब तक तूने मुझसे नहीं कहा !’

‘अब तक समझ नहीं सका था कि कैसे कहूँ ! अब कुछ कुछ समझा हूँ !’

बिबिसार स्थिर दृष्टिसे उसे देखने लगा; संजय भी उसे देख रहा था। वह वैसी दृढ़ता और शांति पूर्वक बोला, जैसे उसके हार्दिक आवेगको रोकने की सामर्थ्य किसीमें न हो—

‘महाराज, अन्याय और निष्ठुरताको देखनेके लिए आँखें खुली रखनी ही पड़ती हैं, इसीलिए जागता और भटकता हूँ...।’

तत्क्षण बिबिसारका स्वर बदल गया, कुछ कठोरतासे उसने कहा—
—‘संजय !’

किन्तु संजयने बिबिसारको और कुछ कहने न दिया; दौड़कर वह उसके गोमैं लिपट गया और बोला—‘एकबार मुझे अपना वही भोला और सरल मेत्र समझकर आज्ञा दें !...’

बिबिसारने आवेशको रोक लिया बोला—‘संजय, तू मागधियोंका महामंत्री है, और मैंने तो तुझे सदा अपना मित्र ही समझा है !’

‘तो महाराज, मुझे जो कुछ भी भर कर कहना चाहूँ, कह लेने दीजिए ...!’

बिबिसारने संजयको उठाकर पास बैठाया और स्नेह-पूर्वक बोला—‘कह सखा !... मैं तेरी कोई बात नहीं टाल सकता, मैं तेरी किसी भी रायसे विमुख नहीं हो सकता...जो कुछ कहना हो कह दे !’

संजयका गला भर आया था; कुछ देर वह सिर झुकाये बैठा रहा, तब बिबिसारको देखकर गद्गद् कंठसे बोला—‘महाराज, आपका यह अर्किचन बालसखा यही चाहता है कि आप आम्रपालीको घृणासे न देखें...!’

बिबिसार अवाक् होकर संजयको देखने लगा । संजय भी शब्दशः वही बोला जो चलनाने कहा था; उसकी वह याचना और भावना ठीक चलना जैसी ही थी. मानों दोनोंने एक ही ढंगसे यह एक ही बात कहनेका पहिलेसे निश्चय कर लिया हो !

कुछ देर तक बिबिसार संजयको उसी तरह देखता रहा; कभी चलना और कभी संजय उसकी आँखोंके आगे झिलझिलाने लगे । हृदयको जैसे एक जोरोंकी ठेस लगी; क्षण भरमें अंधकार दूर हो गया !...घृणा सहसा विलीन हो गई ।

वह संजयसे सिमटकर बैठ गया, और आवेशमें बोला— बोल सखा, यह, मैं आम्रपालीको घृणासे क्यों न देखूँ ?

संजय उसे विस्मित होकर देख रहा था; आँखें भर कर उसने कहा— ‘सुनोगे महाराज ?...देखो...’ कहकर उसने वह मसली हुई कठपुतली उसके हाथमें रख दी; पुतलीके रौंदे हुए हृदयमें दो अँगूठियाँ दबी हुई दिखाई दे रहीं थीं । विवाहके बाद, यह बिबिसारकी दी हुई एक भेंट थी ।

[६]

‘ तो अब तक मुझसे यह बात क्यों नहीं कही संजय ? ’ पुतलीको हाथ में खिलाते हुए बिंबिसारने पूछा; उसका सिर झुका हुआ था ।

‘ महाराज, पालीकी यही आज्ञा थी ! मैं उसके आत्म-त्यागकी बात आपसे कहता उसके पहिले वह आपकी पत्नी हो चुकी थी; उस आत्म-त्याग की बात सुनकर आप लिच्छवियोंसे शत्रुताका बदला लेनेका निश्चय करते, और राजनीति भूलकर व्यर्थ ही असंख्य मागधियोंके रक्तकी नदियाँ बहा देते; इतना ही नहीं, पाली स्वयं अपने देशवासियोंको आपके विरुद्ध लड़नेको प्रोत्साहित करके अकारण ही उनकी मृत्युका कारण बनती !...महाराज, पाली अपने पतिको स्त्रीके पीछे पागल होनेवाला दुर्बल मनुष्य नहीं, बल्कि सच्चा सम्राट बनाना चाहती थी ! महाराज, आपने भीषण अन्याय किया है, आपको, इस संसारमें पालीसे अधिक चाहनेवाला कोई नहीं !...उसकी मुस्कानके पीछे आपकी रिकतामें विजृम्भित हृदय है, उसके नृत्यके पीछे अपने देश और जातिको बचानेकी उच्च भावना है !...उसका शरीर नृत्यसे सुगठित और नर्तकीके रंगोंसे अभिषिक्त अवश्य है, पर महाराज, उसका हृदय और मन हम सबोंसे ऊँचा है, बहुत ऊँचा है !...’

बिंबिसार शांतिपूर्वक सुनता रहा, उसके आँठ धीरे धीरे हिळे—‘उसने मुझे सुखी करनेके लिए इतनी वेदना सही, देशको सुखी करनेके लिए उसने देहका बलिदान किया !’

‘ हाँ, देव ! इस प्रेममूर्तिपर इसी तरह अनेक आघात हुए; वह पतिसे दूर, पुत्रसे अलग रहकर, जीवनके सुखको सदाके लिए छोड़कर अपना सच्चा कर्तव्य निबाहती रही, उसे ही आप...’

‘ संजय, तू निर्दय है, तूने मुझे यह सब करने क्यों दिया ?’

‘ मुझे निर्दय होना पड़ा महाराज ! पर, पति ही पत्नीको अधिक निकट से पहिचानता है ! यदि जौहरी ही हीरेको न पहिचान सके तो इसमें किसका दोष है ?...आपें केवल पालीसे प्रेम करना जानते थे, पहिचानना आपने नहीं सीखा !’

संजय इतना कहकर चुप हो गया; उसका कंठ भर आया था; उसने मर्यादाको लौंघकर बहुत कुछ कह दिया, फिर भी बिंबिसारने चुपचाप सब कुछ सुना। उसे अब ज्ञात हुआ कि पालीको हर एक व्यक्ति क्यों चाहता है; उसकी छायामें बैठकर हर कोई उसका पुजारी क्यों बन जाता है ? कुछ देर ठहर कर संजयने मंद स्वरमें कहा—‘जमा करें, महाराज ! मुझसे सहन नहीं हो सका इसलिए...’

‘मित्र, तेरी बातें मुझे क्रोध नहीं दिलातीं, मेरी आँखें खुली हैं; मुझे अब समझमें आता है कि मैंने चेलनाको पसन्द क्यों किया; हार्दिक अनिच्छा होते हुए भी मैंने उससे बलात् प्रेम करनेकी चेष्टा कैसे की !...संजय, पाली मेरे मनमें ही बैठी थी, और बैठी है, मैंने उसे वहाँ हटानेकी व्यर्थ कुचेष्टाएँ कीं, मैं यह बात समझ न सका था !...मैंने एकपर क्रोध करके अनेकोंको कष्ट देना चाहा, और दुःखी किया !’

‘नहीं, महाराज, ऐसी अशुभ बात न कहें !...महाराजाके लिए अनेक महारानियाँ होनी चाहिए, यह राजाका धर्म भी है !...किन्तु हृदयकी सम्राज्ञी तो जो होती है वही होती है ! फिर चाहे वह पट्टरानी बने या...’

बिंबिसार यह उपदेश चुपचाप सुन रहा था; वह संजयका संकेत समझ गया, किन्तु कुछ बोला नहीं। संजयको और अधिक कहना उचित प्रतीत न हुआ, जो कुछ कहना चाहिए वह उसने कह दिया था। वह वहाँसे उठ खड़ा हुआ और वन्दन करके चला गया।

बिंबिसार विश्राम-बैठकपर बैठ रहा; उसके एकाकी हो जानेपर विचारों और भावनाओंको कुछ बाधा न रही; उसका हृदय और मन एक साथ पुकार उठे—‘पाली मुझसे महान निकली...’

उसी समय दूसरी ओर—

पाली अकेली ही जानती थी कि बिंबिसारका स्मरण होते ही वह अपने आपको कितनी निःसहाय अनुभव करती थी। जिस समय बिंबिसार उद्यानमें अकेला बैठा था उस समय पाली शय्यामें मीनकी तरह तड़प रही थी।...प्रियतम मिले, न मिले सरीखे !...उसने बिंबिसारको देखने भरके

लिए क्या कुछ नहीं किया !...कितने संकट भेले, कितनी विपदाएँ सहीं !! और जब मिले, तो लगा कि न मिले होते तो अच्छा होता !...सहस्रों बार उसने अपने मनमें बिबिसार और चेलनाके विवाहका दृष्य खींचा और मिटा दिया; अपने प्रियतमको अपने हाथों दूसरीको सौंप दिया !....

गत पाँच वर्षोंमें कितने ही रस्तिक पुरुषोंसे उसका सम्पर्क हुआ था; उनके व्यवहार मनको आकर्षित करने जैसे थे । यदि उसने उस निम्न सुखक्री इच्छा की होती तो आज उसके जैसा सुखी और कोई न होता; किन्तु उसने सैकड़ोंको मूर्ख बनाया था; मूर्ख बनानेकी कलामें वह इतनी निपुण थी कि जो मूर्ख बनता उसे यह ज्ञात ही न होता था कि वह मूर्ख बना है । उसके द्वारपर रूप, शक्ति और संपत्तिशाली कई राजा, श्रेष्ठी और गृहस्थ लोग रूपकी भीख मांगने आते थे । उनके लोचन मनको खींचते थे, उनकी बोलीसे मन डौल उठता था !...ऐसोंके साथ रात-दिन मनो-विनोदमें समय बिताते हुए भी पाली अपनेको कैसे सम्हाल सकी थी यह वही जानती थी...पुत्रसे वियुक्त होनेके बाद इस नर्तकीके जीवनक्रममें विचित्र परिवर्तन हो गया । पालीने नर्तकी बनकर नर्तकीका कर्तव्य पूर्णतासे निबाहना सीख लिया था; उसे धीरे धीरे दुःखोंको जलाकर हँसनेका अभ्यास हो गया । वर्षोंके बीतनेके साथ उसके दुःखोंमें वृद्ध हुई थी । फिर भी वह उन्हें भूलना सीख गई...इतनेपर भी उसके हृदयने बिबिसारकी स्मृतिको छोड़ा नहीं । वर्षोंके बाद आज पतिको देखा; कदाचित और वर्षों तक देखनेको न मिले यह सोचकर, और आजके मिलनकी बात सोचकर पाली निराशामें डूब गई और शय्यापर व्याकुल होकर लोटने लगी; वैसे भी शांति न मिली और थककर शय्यापर बैठ गई ।

सबेरे जब सुनेत्राने शयनगृहमें पैर रखा तो देखा कि पाली वैसी ही बैठी थी । उसने सारी रात सोचनेके बाद यही निष्कर्ष निकाला कि सब दोष उसीका था, बिबिसार उसे क्यों देखे ? उसने अपनेमें देखने जैसा रखा ही क्या था ?...इसके बाद भी पालीका नारी-हृदय चाहता था कि बिबिसारने एक बार भूलकर भी यदि उसकी ओर प्रेमसे देख लिया होता तो उसकी इतने एकाकी वर्षोंकी वेदना धन्ध हो जाती ! यही एक बात पाली

के मनको उत्थित और पतित कर रही थी; सहसा सुनेत्राने उसे सचेत किया—‘देवि, देवि, शीघ्र श्रृंगार कीजिए !’...

‘क्यों, क्या है ?...कोई आया हो तो उससे कह दे कि मैं...’

‘देवि, मगधराज इस ओर आ रहे हैं !’

‘ऐं !...’ चौंककर पालीने आँखें विस्फारित करके उसे देखा।

‘हाँ, देवी ! अब तक वे आ भी गये होंगे, मैं आपको सचेत करने आई हूँ, विलम्ब न कीजिए !’

पाली सहसा खड़ी होकर, ऊँचे स्वर बोली—‘जा, मूर्खा ! जा यहाँसे, उनके स्वागतकी तैयारी कर ! सुप्रभा और तुम जाकर दासियोंसे कह कि उनका सत्कार करनेके लिए वे प्रवेश-द्वार पर खड़ी रहें ! जा मेरे सामने खड़ी न रह !’ कहकर पाली उल्लास पूर्वक अपना श्रृंगार करनेकी शीघ्रतामें इधर-उधर दौड़ने लगी। वह इन्हीं संकल्प विकल्पोंमें खो गई कि ऐसा क्या पहिनकर वह अपने घर आये हुए प्रियतमका मनोरंजन करे ? याद आया—एक दिन नंदीग्राममें बिंबिसारने उसे नीले रंगकी कंचुकी पहननेका हठ किया था; वह उसे ढूँढ़नेकी शीघ्रता करने लगी। फिर याद आया—उनके प्रथम-मिलनमें बिंबिसारने उसके हाथोंमें बँधे हुए बाजूबन्दको ध्यानसे देखा था; उन्हें शुभ समझकर उसने एकके बाद एक आभूषण एकत्रित करके श्रृंगार करना प्रारंभ किया। उस समय वह इतनी अस्त-व्यस्त हो रही थी कि हाथ के आभूषण पैरोंमें, और पैरके आभूषण गलेमें पहनने लगी। उसका सारा शरीर काँप रहा था। ‘मगधराज आ रहे हैं’ इन शब्दोंने उसकी कल दिन भर की थकावट और रात-भरके जागरणको जाने कहाँ विलीन कर दिया। प्रेम और प्रियके पीछे बावरी होकर पाली, प्रियतमको रिझानेके लिए अपना सब कुछ भूल गई।

इतनी शीघ्रता करनेपर भी बहुत समय बीत गया; अन्तमें जब सुनेत्राने पंचधातुओंवाला दर्पण उसे दिखाया तब ही वह रुक गई; कुछ देर तक वह अपनेको दर्पणमें देखती रही।...तब उसने एक एक करके सब आभूषण निकालकर फेंक दिये; सुनेत्रा यह देखकर अक् रह गई; मुँह

खोले वह पालीको देखती रही। अलकें ठीक करते हुए पालीकी दृष्टि अपने पिताकी दी हुई अँगूठीपर पड़ी; और वही अँगूठी पहिनकर उसने निश्चित कर लिया कि वह अपना कर्तव्य निबाहनेके लिए हृदयमेंसे बिंबिसारको सदाके लिए दूर कर देगी।

आभूषण फेंक देनेका यही कारण था।

उसने बैठते हुए सुनेत्रासे पूछा—‘सुनेत्रा, तूने मगधराजसे क्या कहा?’

‘देवि, मैंने कहा कि देवी शृंगार करके अभी ही आपकी सेवामें आती है।’

‘मूर्खा !...’ पाली सहसा खड़ी होकर चिल्ला उठी—‘अन्धी ! हट जा मेरे घामनेसे, चली जा यहाँसे ! सावधान, जो अब मुझे दिखाई भी दी तो !...’

‘पर, माँ...’

‘मुँह न खोल। तुझे यह चतुराई करनेको किसने कहा था कलंकिनी ! बोल न गूंगी, बोलती क्यों नहीं?’

‘आ...आपने ही तो कहा था कि जाकर उनका सत्कार करो।’

‘अन्धी, मूर्खा ! मैंने तुझे सत्कार करनेका कहा था या यह भी कहा था कि मैं भी आऊँगी ऐसा कह दे ? भाग यहाँसे। कहीं जाती है ? खड़ी रह !’

सुनेत्रा अर्धमृत सी उसके पास आकर खड़ी रही; पालीने पूर्ववत् रोषपूर्वक कहा—‘कह दे, मैं यहाँ नहीं हूँ; सुभद्रा तैयार होकर सेवामें उपस्थित होती है।’

‘पर माँ सुभद्रा तो कल ही यहाँसे चली गई है।’

‘फिर चतुराई ? जो मैं कहती हूँ वह कह दे। बुद्धि भी है कि सब राख हो गई ? जा, चाहे जो कह दे; चाहे जैसे हो, उन्हें यहाँसे बिदा कर।’

किसीने कभी भी पालीको इतनी क्रोधित नहीं देखा था। उसका यह अकारण क्रोध देखकर सुनेत्रा तो भयसे इतनी सूख गई कि यदि किसीने उसे काट डाला होता तो भी रक्त न निकलता। उसे अभी तक यह विश्वास नहीं हो रहा था कि यह बोलनेवाली उसकी सदाकी स्वामिनी आम्रपाली भी या कोई दूसरी ?...किसी तरह प्राण बचाकर वह वहाँसे चली गई।

पालीसे मिलनेकी उमंगमें बिंबिसारके पैर धरतीपर टिक नहीं रहे थे।

सुनेत्राको पुनः अकेली लौटती देखकर वह हँस पड़ा और धीरेसे बोला—

‘देवी आ रही हैं ?’

‘अभी ही आ रही थी; पर मैं यह कहती थी...पर...’

‘पर क्या ?’

‘पर, मैंने आपसे क्या कहा था ? हाँ याद आया, देवि आम्रपाली यहाँ नहीं है, सुभद्रा अभी ही आपकी सेनामें उपस्थित हो रही है...’ और बात वहीं समाप्त कर दी हो इस तरह आसपास देखकर पुकारने लगी—‘काली, सुन्दरी, कहाँ गई?...’ कहकर वह भाग जानेको उद्यत हुई। किन्तु बिबिसारने हाथ पकड़कर उसे रोक लिया, उसे देखकर मुस्कराया, और गालपर एक हलकी सी चपत लगा दी; सुनेत्रा घबराकर एक डग पीछे हट गई। उसकी जीभ तालुसे चिपक गई थी। तब बिबिसारने, सुनेत्राके ‘ना’ ‘ना’ करते हुए भी अपने गलेसे तीन मालाएँ निकालकर उसके हाथमें रख दीं और धीरेसे उसके कानमें कहा—‘भीतर जाकर देवीसे प्रार्थना कर वे यहाँ नहीं आ सकतीं तो मैं वहाँ आ रहा हूँ।’

‘अरे बाप रे !...नहीं, नहीं, महाराज ! मैं देवीसे कहती हूँ—याने सुभद्रासे कहती हूँ...याने...याने मैंने क्या कहा ? मैंने कुछ नहीं कहा न ?’ कहकर सुनेत्रा प्राण लेकर वहाँसे भागी।

बिबिसार यहाँ छुपकर आया था; उसके पास अधिक समय न था। सुनेत्राके जाते ही वह प्रासादके अन्तःप्रदेशमें जा पहुँचा; सुनेत्रा उसके सम्मुख ही थर थर काँपती हुई खड़ी थी। बिबिसार उसके निकट आया; वह अब और अधिक भूठ नहीं जोल सकती थी; बिबिसारको समीप आता देखकर वह जोरोंसे रो पड़ी; उन तीनों मालाओंको बलपूर्वक मुट्ठीमें पकड़कर वह वहाँसे भाग गई।

सुनेत्राका वह परिवर्तित रूप बिबिसार देख न सका; वह सीधा शयन-गृहके बन्द द्वारोंके पास आकर खड़ा हो गया और कड़ी खटखटाकर धीरेसे बोला—‘पाली !’

पाली भीतर खड़ी थी; उन द्वारोंके बिल्कुल पीछे। वह द्वारसे सटकर खड़ी हो गई; बाहरसे बिबिसारका मृदुस्वर सुनाई दिया—‘पाली ! जड़

वस्तुएँ मनुष्योंको एक दूसरेसे दूर रख सकती हैं, किन्तु उनके हृदयोंको दूर नहीं रख सकतीं, द्वार खोलो ।’

उत्तर न मिला ।

‘पाली ।’

फिर भी उत्तर न मिला ।

‘पाली...।’

पाली निरुत्तर थी ।

‘प्रिये, क्या क्षमा माँगनेवालेको क्षमा करना लिच्छवियोंका धर्म नहीं है ? संजयने मुझसे सब कुछ कह दिया है; द्वार खोलो ।’

पाली निरुत्तर थी; निरुत्तर ही रही ।

‘पाली, मैंने तुम्हे भूलनेका बहुत बहाना किया, मन ही मन तेरा तिरस्कार भी किया किन्तु आज वही तिरस्कार दूना होकर मुझे विक्षुब्ध कर रहा है । द्वार खोल दे ।’

पाली अब भी मौन थी । बिंबिसारका स्वर धीमा हुआ—‘यदि पतित पतिको देखते हुए लज्जा आती हो तो द्वार न खोलना, प्रिये !...पर एक देशनर्तकीके रूपमें मुझे देखनेसे संकोच होता हो तो मुझ जैसा अभाग कोई नहीं है । पाली, तू मेरी है; चाहे तू मुझसे दूर रहकर नर्तकी बन जाय, संन्यासिनी हो जाय, पर तू मेरी है । द्वार खोल, पाली ! तुझ जैसी देशनायिकाको देखकर मैं गर्व और आनन्दसे पुलकित हो जाऊँगा; तेरा दर्शन, मेरा अहोभाग्य होगा ।’

पालीके गलेमें द्विचकियाँ बँध गईं; उसे छुपानेके लिए वह अपनी चुँदरीका छोर मुँहमें लेकर खड़ी रही । पुनः बिंबिसारका स्वर सुनाई दिया—‘पाली, मुझे पतिके रूपमें भले ही न आने दे, पर तेरे पुत्रका पिता समझकर तो मुझे एक बार भीतर आ जाने दे; मुझे इतना अभाग न बना, पाली !’

सिसकी सुनाई न दे इस डरसे पालीने मुँहको दबा दिया । बिंबिसारका प्रार्थनामय स्वर फिर सुनाई दिया—‘क्या मैं सम्पूर्ण रूपसे तेरे हृदयसे निकल गया हूँ ?’

यह प्रश्न सुनकर पाली पागलकी तरह द्वार पकड़कर खड़ी रही, उसके ओंठ काँप उठे—‘नहीं, नहीं, मेरे प्राण ! तुम मेरे रोम रोममें हो ! मेरी प्रत्येक साँसमें हो !’ किन्तु केवल ओंठ ही काँपकर रह गये; उसने स्वरको बाहर न निकलने दिया । स्वरका कार्य अश्रुओंने किया ।

बिबिसारका कण्ठ सुनाई दे रहा था; उस स्वरमें दुःख, प्रेम और हार्दिक अनुताप था । वह बोला—‘ मुझे अपना मुँह दिखानेका अधिकार नहीं है; और मैंने सुना है कि तुम्हारी प्रवेणी-पुस्तकमें अनधिकारीको देखना पाप कहा गया है !...पर पाली, आज नहीं तो कल, तू मुझे क्षमा अवश्य कर देना, क्योंकि मैं क्षमाका पात्र हूँ । मैं जाता हूँ ..पाली ! जीवनमें कुछ दिन ऐसे भी बीते थे जब मुझे लगता था कि स्वर्ग यहाँ, पृथ्वीपर ही है, और उसका साक्षात्कार मुझे तूने ही कराया था !...आज मैं जाता हूँ, बिना क्षमा-के, बिना दर्शन किये ! आज मुझे अनुभव हो गया कि मैं यहाँसे हृदयको प्रेमसे भरकर, और प्रेमसे ही पराजित होकर जा रहा हूँ ! तुम्हें और तेरे पुत्रको इच्छित सुख मिले ! किन्तु यदि किसी दिन इस भूले हुए ‘अपने’ को क्षमा करनेकी इच्छा हो तो मैं मृत्युशय्यासे उठकर भी उस खोये हुए प्रेमका स्वागत करनेके लिए प्रस्तुत रहूँगा, क्योंकि मैं अपना हृदय यहीं रखकर जा रहा हूँ !’.....

बस; बिबिसार चला गया और पाली उसकी पदध्वनि विलीन होते ही द्वारके पास पछाड़ खाकर गिर पड़ी ।

उसी दिन संध्याको बिबिसारने चलनाके साथ अपनी राजधानीकी ओर प्रस्थान किया । किन्तु आम्रपाली उसके पहले ही चेटकराजकी नगरीसे चली गई थी ।

[७]

‘आम्रपाली, मेरे चार जहाज अभी ताम्रलिपिसे आये हैं, समुद्रपारके विविध उपहारोंसे भरी हुई चार गाड़ियाँ आज ही तेरी वैशाली तक आ पहुँची हैं; तू जो चाहे, जितना चाहे ले ले; पर मेरे पुत्रको लौटा दे !’ एक

प्रौढ़ पुरुष घुटनोंके बल बैठे हुआ, सुख-शय्या पर लेटी हुई मदिर पालीसे प्रार्थना कर रहा था ।

आसवकी एक घूंट मृदु-स्वरके साथ गलेमें उतारकर पाली, वैसी निश्चिन्तासे यह सब सुन रही थी, जैसे कोई बिल्ली एंजेमें पकड़े हुए चूहेको निर्भय और निर्दग होकर खिलाती है । छत्तीस वर्षकी उम्रमें पाली पूरी युवती मालूम होती थी । उसके यौवनका तेज प्रातःकालके मनोहर सूर्यके स्थानपर मध्याह्न कालके सूर्यकी प्रचण्ड ज्वालासे अभितप्त हो रहा था, जिसे देखनेवाला या तो अन्धा हो जाता या जल जाता था; उसके लिए तीसरा मार्ग ही न था । उसके नूपुरकी भंकार सुननेके लिए कोई राजा, अपना देश और राज्य छोड़कर, वहाँ, उसके पाद प्रहारोंके बीच पड़ा रहता था । तत्तशिलाकी शारदा-पीठमें शिक्षित युवकोंसे लेकर जीवनके विश्वविद्यालयकी शिक्षाओंमें निपुण प्रौढ़ों और जीवनका सम्पूर्ण उपयोग कर चुकनेवाले वृद्धों तक कोई भी उसके सम्मुख खड़ा नहीं रह सकता था । उसका यौवन महाप्रवाहकी तरह गतिमान था जिसके वेगमें अशक्त और शक्तिमान, नये और पुराने सब ही बह जाते थे !

पाली जीवनको सुख समझती थी, सुखको विलास, और विलास किसे कहते हैं यह भी उसके लिए निश्चित था । वह बुद्धिमानको मूर्ख बनाने के लिए सदा प्रस्तुत रहती थी, यदि वह मूर्ख बन जाता तो दूसरे ही दिन उसे दासियोंके आधीन कर देती थी; और यदि मूर्ख न बनता तो उसे बनानेके लिए अपने सब साधन लगाकर अंतमें वह उसे हराकर छोड़ती थी; जीवनमें नृत्यके समयको छोड़कर यही उसका मुख्य कार्य था ।

एक महीने से, कोशांबीके एक श्रेष्ठीका एकलौता युवक पुत्र, पालीके प्रासादमें रह रहा था; उसमें यौवनके सिवा और अधिक कुछ न था । केवल बुद्धिमान और कला-निपुण पुरुषोंके सम्पर्कमें रहनेवाली पालीने इस धनवान मूर्खको अपने पास रखा है, यह बात उसकी अंगरक्षिका सुनेत्रा भी नहीं जानती थी । तब कोशांबीके श्रेष्ठी माघको तो यह बात कितनी कठिनाईसे ज्ञात होती !

पाली माघ श्रेष्ठीको धरतीसे उठाकर एक ओर बैठनेका संकेत करके व्यंग-मयी मुस्कानके साथ बोली—‘श्रेष्ठी, आजसे चौदह वर्ष पहले तुम मेरे पैरों पकड़कर, मेरे खिलौने होकर मेरे प्रासादमें पड़े रहना चाहते थे, उस समय मैंने तुम्हारा तिरस्कार कर दिया था; जो तुम उस समय नहीं कर सके वह तुम्हारा पुत्र आज कर रहा है; चौदह वर्ष पहले मैंने तुम्हें मना किया था उसके प्रायश्चित्तके लिए उसकी सहायता करना, मेरा कर्तव्य है !’

पुनः माघ घुटनोंके बल बैठकर पालीसे बोला—‘पाली इतनी निष्ठुर न बन !’

पाली पूर्ववत् व्यंगमें बोली—‘नर्तकी, दयाकी देवी बनकर जी नहीं सकती श्रेष्ठी !’... किंतु माघ ऐसे ही छोड़ देनेवाला न था, उसने बहुत नम्र स्वरमें कहा—‘पाली, तू मेरा सर्वनाश कर रही है, मेरे पुत्रको छोड़ दे पाली !’

हाथका असव-पात्र एकदम फेंककर पाली झनझना उठी—‘एक नर्तकी तुम्हारा सर्वनाश करेगी ? कल तो तुम रण-भेरी बजाकर संसारको सुना रहे थे कि मैं अधम हूँ, सर्वभक्षिका हूँ, देशनर्तकीके रूपमें पिशाचिनी हूँ, यदि मैं वैशालीमें न होती तो तुम मुझे मसल डालते...ऐसा वीरतापूर्ण शब्दोंका प्रयोग करनेके बाद, तुम एक शक्तिमान धनपति होकर एक अधम नर्तकीसे प्रार्थना क्यों कर रहे हो ? श्रेष्ठी, मैं तुम्हारा सर्वनाश कर ही कैसे सकती हूँ ?’

‘पाली !’ माघने अत्यन्त द्रवित होकर कहा—‘धन मिल सकता है, विद्या मिल सकती है, गँवाया हुआ यश, नष्ट यौवन पुनः मिल सकता है पर खोये हुए पुत्रका आघात बहुत गहरा होता है; पर तू यह नहीं समझेगी पाली ! कि माँ बापके लिए एकलौता पुत्र क्या होता है !’

मानों किसीने पालीके वक्षमें कटार भोंक दी ! वह तत्क्षण खड़ी हो गई; उसकी मुखाकृति कठोर हो गई । किंतु धीरे धीरे नम्र हुई; इतनी नम्र कि अन्त में वह हँस ही पड़ी, और बोली—‘हाँ श्रेष्ठी ! सच कहते हो ! मैं क्या जानूँ कि एकलौता पुत्र माँ बापके लिए क्या होता है !’...

माघका साहस बढ़ा; वह और नम्र होकर बोला—‘आम्रपाली, देशनर्तकी माँ हुए बिना माँ या बापका दुःख नहीं समझ सकती !’

‘सच बात है, मैं कैसे समझ सकती हूँ?’ पाली शान्तिपूर्वक बोली। माघको और प्रोत्साहन मिला; बोला—‘अर्थात्...अर्थात्...देवि मैं अपने कठोर वचनोंको, अपनी भूलों और अभिमानके लिए तुम्हारे पास क्षमा माँगने आया हूँ; मुझे क्षमा करदो। मेरे लिए नहीं तो उसकी माँके लिए मेरा पुत्र!’...

श्रेष्ठीकी बैठकके पीछेकी ओर जो द्वार था उस ओर अंगुली-संकेत करके पाली-शान्ति पूर्वक बोली—‘श्रेष्ठी, मेरे द्वारमें आने वालेको मैंने अनेक बार रोक दिया होगा किंतु इस महलके इसी द्वारसे चले जाने वालेको मैंने कभी नहीं रोका। मैं इस नियमका सोलह वर्षोंसे पालन करती आई हूँ! तब मैं आपके पुत्रको रोकने वाली कौन होती हूँ? मैं तो केवल मनोरंजनके लिए नाचनेवाली हूँ, पिशाचिनी हूँ! यदि वह जाना चाहता हो तो अपने उस पुत्रको आप प्रसन्नतासे ले जा सकते हैं!’

माघकी आशा टूटती दिखाई दी। वह नम्र तो था ही, और अधिक नम्र होकर बोला—‘पाली, वह तेरी आज्ञाके बिना यहाँसे तिल भर भी न हटेगा; तू ही उसे यहाँसे निकाल सकेगी। पाली, वह सुकुमार है, अज्ञान है, मूढ़ है, और तुमसे...’

‘मुझसे बहुत छोटा है, यह मैं जानती हूँ; पर प्रेमको वय और वर्णका बन्धन भी होता है यह आपसे किसने कहा?—एक समय मैं सुकुमार थी और आप मुझसे कई वर्ष बड़े थे, फिर भी वय और वर्णको ताक में रखकर आप मुझे छोड़ना नहीं माने थे। आज चौदह वर्षोंके बाद, एक सुकुमारको यदि मैं छोड़ना नहीं चाहती तो आपको बुरा क्यों लग रहा है? नहीं श्रेष्ठी, तुम्हारा पुत्र नहीं दिया जा सकता, अपनी इच्छासे जाना चाहे तो जा सकता है। वह आपका पुत्र है, मेरा...’

‘मेरा पुत्र’ कहते कहते पाली विस्फारित नेत्रोंसे अट्टालिकामें से नीचेके मार्गको देखने लगी। माघसे बातें करते करते वह बाहर आ गई थी। मार्गमें बौद्ध भिक्षुकोंकी एक छोटी सी मंडली चली जा रही थी; सबसे आगे एक नवयुवक भिक्षुक चल रहा था, पाली उसे ही देख रही थी।

इन दिनों वैशालीमें जटिलों, परिव्राजकों और निर्ग्रथोंका प्रभाव बढ़ता जा रहा था; इनमेंसे प्रत्येक धर्मानुयायी, लिच्छवियोंको अपने धर्मध्वजके नीचे लाने का प्रयत्न कर रहा था ।

स्वातन्त्र्यपिय लिच्छवियोंका मन इन नये धर्मोंसे प्रभावित हो रहा था; यदि कोई उच्च पदस्थ लिच्छवी किसी नये धर्म-प्रवर्तकको मान लेता तो उसके दूसरे ही दिन से उस धर्मप्रवर्तकके शिष्यगण अपनी ध्वजा और भेरीके साथ वैशालीकी गली गलीमें अपने गुरुजनोंका गुणगान करते घूमते थे । किन्तु इन सबोंमें निर्ग्रथों और बौद्ध भिक्षुओंका प्राचुर्य था, किन्तु अनुशासन और विनय के प्रदर्शन कारण बौद्धोंने जनताको अधिक प्रभावित किया । लिच्छवियोंकी आँखें अब विशेषकर बौद्ध भिक्षुओंकी ओर जा लगी थीं, क्योंकि 'थेरगाथा' में वर्णित 'पियज्जहो थेरो' जैसे कूर लिच्छविगण संसारका त्याग करके तथा-कथित 'अर्हतपद' प्राप्त कर चुके थे, और ये ही लिच्छवी भिक्षुक गोतमबुद्धकी आज्ञा और प्रभावका अनुकरण करके बौद्धधर्मका प्रचार कर रहे थे । प्रातः-काल बौद्ध भिक्षुकगण भिक्षाके लिए 'चिवरपिंडपात' लेकर निकल पड़ते थे; यदि कोई भक्त उन्हें भोजनके लिए आमन्त्रित करता तो वे वहाँ जाते, और आमन्त्रण न मिलता तो मध्याह्न के पहले दिनमें एक बार भिक्षा माँगकर पेट भर लेते थे । आज किसीका आमन्त्रण न होनेसे यह छोटी सी भिक्षुमंडली भिक्षा माँगती हुई पालीके महलके आगेसे निकल रही थी ।

मंडलीका अगुआ वही युवक श्रमण था जो अपने काषाय वस्त्रोंमें उन सबोंकी प्रेरणापूर्ति ज्ञात होता था; लगता था कि गोतमबुद्धने अपने शरीर और गुणोंका एक अंश निकालकर एक छोटा सा दूसरा बुद्ध ही बना दिया था—उसका नाम था विमल कोडंगज ।

पालीके प्रासादके सम्मुख माणव लिच्छवीका छोटा सा घर था; यह लिच्छवी एक जटिलका शिष्य होनेके कारण बौद्ध भिक्षुओंसे घृणा करता था ।

युवक श्रमण विमल कोडंगज पालीके प्रासादकी ओर न जाकर माणव के घरकी ओर मुड़ा; भिक्षुओंको अपने घरकी ओर आते देखकर माणवको बहुत क्रोध आया, विमलने भिक्षाके लिए उसके सम्मुख पात्र बढ़ाया भी न-

था कि उसने कई अपशब्द कहकर घृणापूर्वक उसकी ओर थूँका और द्वार बंद कर दिये। विमल इससे जरा भी विक्षुब्ध न हुआ, उसने अपना दाहिना हाथ उठाकर आशीर्वचन कहे और अपनी मंडलीके साथ लौट पड़ा। पाली आँखें फाड़कर यह सब देख रही थी; किन्तु जब उसने युवक श्रमणको अपनी मंडली सहित अपने प्रासादकी ओर आते देखा तो चिल्लाई—‘सुनेत्रा, सुनेत्रा, भिक्षा दे,!’ तू भिक्षा लेकर जल्दी बाहर आ !...’ वह पुत्रकी भीख माँगने आये हुए कोशाम्बीके श्रेष्ठीको छोड़कर, उस भिक्षुकको भीख देनेके लिए दौड़ गई। घबराहट और दौड़नेके श्रमसे वह हाँफ रही थी। प्रासादके बाहर वह तेजस्वी श्रमण अपनी मंडलीके साथ खड़ा था, एकाएक उसके पास आकर पाली कुछ बोल न सकी। वह देख रही थी—विमलको, उसके सुन्दर मुखको, उस मुखकी दाहिनी ओर दिखाई देनेवाले तिल को, उसकी तीक्ष्ण आँखोंको—हाँ, वे ही आँख थीं। पाली उसमें बिंबिसारकी प्रतिमाको देख रही थी; नासिका, आँठ, मुस्कान सब कुछ वैसी ही थीं !

पाली पगली बनकर, लोह-चुम्बककी तरह विमलके पास आकर खड़ी हो गई, उसका हृदय इतनी तेज़ीसे धड़क रहा था मानों वज्र फाड़कर बाहर निकल पड़ेगा ! वह विमल श्रमणके इतनी समीप खड़ी थी कि, श्रमणके पास खड़े हुए अधिक अवस्थावाले भिक्षुक छू जानेके डरसे संकुचित होकर पीछे हट गये। किंतु विमल स्थितप्रज्ञकी तरह वैसा ही खड़ा रहा; उसी शांतिसे उसने आशीर्वचन कहकर भिक्षापात्र को आगे बढ़ाया; साथ ही अन्य भिक्षुओंके हाथ भी आगे बढ़े।

एक भिक्षुकने, पालीके प्रासादकी ओर पैर बढ़ानेके पहले विमलसे एक नर्तकीके घरसे भिक्षा न लेनेका अनुरोध किया था। किंतु विमल श्रमण, जिसने ऊँच नीचको न मानकर भूतकालमें दासत्व करके इस समय अर्हन्तत्व पाये हुए उपाली थेर, तथा एक समयके मछलीमार यसोजथेर और कुछ ही वर्षोंपूर्व शूद्रकर्म करके अब अर्हत् सुनीतथेर जैसे उच्च बौद्धभिक्षुओंसे उपदेश पाया था, उस ओर जानेसे जरा भी नहीं हिचकिचाया। उस भिक्षुकी ओर एक स्मित-दृष्टि डालकर वह पालीके प्रासादके सम्मुख आ खड़ा हुआ।

विमल भिक्षापात्र आगे करके भिक्षाकी प्रतीक्षा कर रहा था; पाली उसके मुखारविन्दको देखनेमें अपनी सुध खो बैठी थी, और दूसरे भिक्षु इन दोनोंको देख रहे थे।

पाली, श्रमणके और समीप आने लगी; वह तब ही रुकी जब भिक्षापात्र ठीक उसके वक्षको छू गया। तब उसे कुछ सुध हुई कि ये भिक्षुक इतनी देरसे किस लिए खड़े थे। वह तुरन्त कान, हाथ और गलेके आभूषण एकके बाद एक उतारकर श्रमणका भिक्षापात्र भरने लगी; देखते ही देखते भिक्षापात्र स्वर्ण और रत्नोंके बहुमूल्य आभूषणोंसे भर गया।

सब भिक्षुगण विमलको देख रहे थे और विमलकी दृष्टि अपने भिक्षापात्रपर थी; उसने धीरे धीरे पालीके हाथकी ओर देखा और पालीके पास खड़ी हुई सुनेत्राके स्वर्णपात्रमें सारा भिक्षापात्र उँडेल दिया। पाली विस्मित होकर देख रही थी, उसने कुछ चिढ़कर कहा—‘भिक्षुक !’

तत्क्षण विमलने अपनी जीवनमयी मुस्कानके साथ नतमस्तक होकर कहा—‘देवि ! हमें तो पेट भरनेके लिए अन्नप्राशन चाहिए, हम आभूषणोंको क्या करेंगे ?’

‘श्रमण, तू जानता है इन आभूषणोंका मूल्य क्या है ?’ पालीने उसे प्रलोभन दिया—‘दस वर्ष तक तुमसे दुगुने भिक्षुकोंको भी भीख नहीं माँगनी पड़ेगी।’

‘उसके बाद ?’

‘मैं और आभूषण ढूँगी।’

‘उसके बाद ?’

‘मैं उतना ढूँगी, जिससे तुम सारे जीवन सुखसे निर्वाह कर सको !’

‘उसके बाद ?’

‘उसके बाद क्या ? मैं तुम्हें अपने महलमें अपनी आँखोंके सामने रखूँगी। पाली, मनोवाञ्छित वस्तु, इच्छित सुख दे सकती है; तू जो कहेगा वह तुम्हें मिलेगा।’

‘उसके बाद ?’

‘श्रमण, अभी तू नवयुवक है, अभी तेरे सत्रह वर्ष भी पूरे नहीं हुए होंगे, जीवनका सुख तूने देखा ही क्या ? इन वस्त्रोंमें, तेरे गुरुने उसकी कल्पनाको भी तेरे पास न आने दिया होगा ! मेरी बात मान ले, मेरे पास रह जा ! तू कहे उस सुन्दर बालाके साथ मैं तेरा विवाह कर दूँगी, सारा वैभव तेरे पैरोंपर उँडेल दूँगी !’

‘उसके बाद ?’

‘निर्दोष, अज्ञानी श्रमण ! उसके बाद तू उन पुत्र-पुत्रियोंका पिता बनेगा जिसे देखकर देवताओंको भी ईर्ष्या हो !’

‘उसके बाद ?’

‘युवक, मुझे मूर्ख न बना ! तेरे ‘उसके बाद’ से जीवनकी किसी वस्तुका अन्त नहीं आ सकता !’

‘हम लोग ‘अन्त’ पूछकर ही जीवनको पहिचाननेका प्रयत्न करते हैं और तब हमें ज्ञान होता है कि प्रत्येक वस्तुका अन्त दुःखमें ही परिणत होता है । जीवन दुःख है ।’

‘जीवनके प्रवाहसे अनजान युवक, जीवन दुःख नहीं, सुख है । तेरे ये साधारण काषाय वस्त्र, तेरा यह अकिंचन भिक्षापात्र, माणव लिच्छवीके प्रहारोंकी तरह गन्दे प्रहार, अपमान और गालियाँ क्या तुझे सचमुच सुहाती हैं ? क्या यही सच्चा सुख है ? तेरे सन्तोष और जीवनकी इति क्या जीवनको रौंद डालनेमें ही है ?’

‘तुमने किसी दिन भीख माँगी है ?’

‘नहीं ।’

‘तो उसमें समाया हुआ सुख और दुःख तुम कैसे समझ सकोगी ? सब आवश्यकताओंसे दूर रहकर, भीख माँगकर, एक दिन तो बिताओ, तब इस सरल जीवनका सुख समझमें आयेगा !’

जब ये दोनों बातें कर रहे थे, दूरके भोपड़ेमें रहनेवाली एक निर्धन स्त्री हाँफती हुई उनके पास आकर खड़ी हो गई । सुनेत्रा, पाली और विमलका चार्तालाप सुननेमें इतनी तल्लीन हो गई थी कि दासीके साथ जो फल और

मिठाई भिक्षुओंको देनेके लिए लाई थी, वह भूल गई। उस स्त्रीने विमलका भिक्षापात्र रिक्त देखकर काँपते हाथोंसे गेहूँ और बाजरेकी मोटी रोटियाँ, भुंजे हुए धान्य, चटनी और चाँवलकी मिठाईका एक टुकड़ा उसमें डालकर भिक्षु के पैर छुए। विमलने चौंककर देखा, भिक्षापात्र भर गया था। पूर्ववत् मुस्कानके साथ उसने ब्राह्मणीके लिए आशीर्वचन कहे और स्तब्ध पालीको नमस्कार करके जाने लगा। इस बीच सुनेत्राको ध्यान आया, उसने शीघ्रतासे दौड़कर अन्य भिक्षुओंके पात्र फलों और मिठाईसे भर दिये; भिक्षुओंने चुपचाप उन्हें ले लिया और आशीर्वादमें हाथ उठाकर विमलके पीछे पीछे जाने लगे।

पाली, उस बौद्ध भिक्षुकको बहुत देर तक देखती रही, जिसने जाते हुए न इधर देखा, न शीघ्रता की, और न कुछ कहा ही। सुनेत्राने तब कुछ घबराकर कहा—‘माँ, भीतर चलिए न !’.. किन्तु पाली पलक टिमकाये बिना उसी तरह देखती रही।

‘माँ, सुनो तो, भीतर चलो ! यह देखो सामने कितनी भीड़ लग रही है, भीतर चलो माँ !’

‘मैंने किसी दिन भीख नहीं माँगी !’ पाली जैसे अपनेसे बातें कर रही थी।

‘हाँ, माँ ! भीतर चलो !’

‘सुनेत्रा, हमने किसी दिन भीख नहीं माँगी ?’

‘नहीं माँ, अब अंदर चलो !’

‘सुनेत्रा, बौद्धभिक्षु महाउद्यानमें ठहरे हैं ?’

‘हाँ माँ ! आपको ज्वर मालूम होता है, भीतर...’

‘यह श्रमण कौन है ?’

‘मे अभी मालूम करती हूँ, पहले आप भीतर...’

‘सुनेत्रा’...सहसा पालीने सुनेत्राके कंधे जोरसे पकड़कर कहा—‘बह भ्रष्टी अभी सड़लमें ही बैठा है ?’

‘हाँ, माँ ! इसीलिए तो कह रही हूँ कि भीतर...’

सुनेत्राका वाक्य पूरा होनेके पहले पाली महलकी ओर दौड़ी ।

सुनेत्राने विस्मित जन-समूह पर एक दृष्टि डालकर पालीका पीछा किया; उसे विश्वास हो गया था कि उसकी स्वामिनीका उन्माद बढ़ता जा रहा है ।

महलमें जानेके कुछ ही क्षणों बाद पाली एक नवयुवकका हाथ पकड़कर माघ श्रेष्ठीके पास आ खड़ी हुई ।

‘श्रेष्ठी, लो अपने इस पुत्र-रत्नको ! यह क्षमा माँगता है, अब किसी दिन यह मेरे घरमें पैर नहीं रखेगा !’

युवकने चौंकर पालीको देखा; तब बहुत दीनता पूर्वक बोला— ‘देवि, अभी तो आप कह रही थीं कि आप मेरे घर आनेको तैयार हैं, और...’

‘इन दिनों मैं मूर्खोंको ही देख रही हूँ; अब और किसी मूर्खको देखनेकी इच्छा होगी तो पहले तेरे घर आऊँगी ! अभी तू चला जा ।’

‘देवि !...’

‘मैं देवी नहीं हूँ मूर्ख !’

‘हाँ, मैं ही मूर्ख हूँ ! तुमने मुझसे एक माता जैसा बर्ताव किया है, मुझे मूर्ख बनाया है । तुम्हें एक प्रेमदग्ध आर्तहृदयका क्या मूल्य ! मैं जाता हूँ; तुम कह रही हो इसलिए अवश्य जाऊँगा किंतु... नहीं, नहीं, निष्ठुर ! तूने मुझे इतने दिनों तक आशामें रखा..मैं..मैं...’

‘मुझे क्या दंड देना चाहिए यह अपने पितासे पूछ लेना ! यह भी मुझे चौदह वर्षोंसे दंड देनेकी ही बातें करते हैं; तुम दोनों निश्चित करके यहाँ अवश्य आना !’

कहकर उसने सदाकी तरह, युवकको वात्सल्यपूर्ण आँखोंसे देखकर उसके गालपर एक हलकी चपत लगाई; भ्रमित और सुग्ध बनकर युवक पालीसे कुछ कह न सका, जिसने सदा उसके साथ माँ जैसा ही व्यवहार किया था । क्रोध और तीव्र अपमानका अनुभव करके उसकी आँखोंमें आँसू आ गये । माघने पालीके उपकारसे गद्गद् होकर कुछ समझा, और उसे सहानुभूति तथा श्रद्धासे वन्दन करके अपने क्रोधित पुत्रका हाथ पकड़ा और चला गया । पाली फीकी मुस्कानसे उन्हें देखती रही ।

सुनेत्रा सिर धुन धुनकर थक गई पर कुछ समझमें न आया; अंतमें

कुछ सोचकर दौड़ती हुई पालीके पास आकर बोली—‘माँ, इस युवकके गाल पर उस साधुके जैसा एक तिल था न ?’ पालीने चौंककर उसे देखा और हँस कर बोली—‘उसके आँठ और आँखें भी साधुके जैसी ही थीं !’

बेचारी सुनेत्रा कुछ कह न सकी । उसे अभी तक यह समझमें न आया था किसी भी ‘तिल’ वाले युवककी ओर पाली किन भावोंसे देखती थी !

[८]

पालीका हृदय घनी वेदनासे भरा था । पूरे सोलह वर्ष बीत जानेपर भी वह अपने पुत्रको बिलकुल नहीं भूल सकी । जित्त माँने बच्चेके सुखके लिए अपने हृदय पर पत्थर रखकर उसे सदाके लिए दूर कर दिया था, उसीने इन सोलह वर्षोंमें लाखों बार कल्पनाएँकी थीं कि अब उसका पुत्र कैसा होगा, कैसा दिखाई देता होगा ?...

इतने लम्बे समयमें एक बार भी उसने अपने भाई या पुत्रको नहीं देखा, इसीलिए जब कोई तेजस्वी किशोर या युवकपर उसकी दृष्टि जाती, वह उसे उत्सुकतासे देखने लग जाती थी । यदि उनमेंसे किसीका मुख बिंबिसारके मुख से जरा भी मिलता-सा होता तो उसके लिए पूछ-ताछ करती; हो सकता तो अपने पास रखकर पुत्रकी भँति उसका लालन-पालन करती; गरीब होता तो उसकी सहायता करती, महत्वाकांक्षी होता तो जहाँ जाना चाहता वहाँ जाने का प्रबन्ध कर देती और मूर्ख होता तो कुछ दिन उसे अपने पास रखती और फिर पराया समझकर चला जाने देती थी । इस तरह सम्पर्कमें आनेवाले कितने ही भ्रमित नवयुवक समझ पाकर अपने घर लौट जाते थे । ऐसे किशोरों को रखनेके कारण पालीके लिए कई तरहकी अफवाहें उड़ों, किंतु वह उन बातोंका जरा भी प्रतिकार किये बिना, ऐसी बातोंको बढ़ने देती थी । यही बात सुनेत्राकी समझमें नहीं आती थी !...

‘देवि...’ अचानक सुनेत्रा दौड़ती हुई आई और कहने लगी—‘सबेरे वे बौद्ध भिक्षु आये थे न !...वे मध्याह्नके बाद याने अभी संथागारमें दिगम्बर पाटिकपुत्रके साथ वादविवाद करेंगे...’

‘दिगम्बर पाटिकपुत्र कौन ?’

‘हाँ, देवि...आप नहीं जानतीं, आधी वैशाली पाटिकपुत्रके पीछे पागल हो रही है ? उस महान् संन्यासीके प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए बौद्ध साधु आयेंगे...!’

‘सब भिक्षुक आयेंगे ?’

‘नहीं, माँ, केवल वह सुंदर श्रमण ही आयेंगा; उसे साधारण न समझना ! उसका स्थान बहुत विद्वान और उच्चकोटिके भिक्षुओंमें है; वही पाटिकपुत्रके प्रश्नोंका उत्तर देगा ।’

शीघ्रतापूर्वक यह कहकर सुनेत्रा चुप हो गई; प्रश्नोंकी अपेक्षा अधिक उत्तर दे देनेके कारण उसे संकोच हो रहा था । किंतु पालीने कुछ नहीं कहा ।

जब संध्या समय सारा संथागार धार्मिक और कौतुहलप्रिय लिच्छवियोंसे ठसाठस भर गया तब अपनी शिष्यमण्डलीके साथ दिगंबर पाटिकपुत्रने संथागारमें प्रवेश किया । उसके आते ही उसके अनुयायियोंने हर्षनाद करके इतना होहल्ला मचा दिया कि एक दूसरेके शब्द भी सुनाई न देते थे । अनुशासन-प्रिय लिच्छवियोंकी व्यवस्था भी धार्मिक उन्मादमें डगमगाने लगी । राजकारिणी सभाओंमें एकतापूर्वक रहते हुए भी वे इन दिनों बढ़ती हुई विभिन्न धर्म-सभाओंमें खुला मतभेद करना सीख गये थे । कुछ देर बाद एक गगन-भेदी हर्षनाद पुनः सुनाई दिया; इस हर्षनादके साथ सारी सभाने प्रवेशद्वार की ओर देखा । सब लोग समझे थे कि बौद्धभिक्षु आये होंगे, किंतु आगंतुक के प्रवेशद्वार तक आनेपर बहुतसे लोग विस्मित होकर उधर देखने लगे—आगंतुक पाली थी !

पालीका पैर संथागारमें पड़ते ही वातावरणमें विचित्र परिवर्तन हो गया; कोने कोनेमें कानाफूसी होने लगी; और एक धर्मान्ध वृद्ध खड़ा होकर कहने लगा—‘आम्रपाली, यह राजकारिणी लिच्छवी परिषद नहीं है और न युवकों की कोई स्वच्छंद सभा है; यह धर्मसभा है !’...

‘तो क्या हुआ ?’ पालीने प्रश्नसूचक दृष्टिसे देखा ।

‘धर्मसभामें नर्तकीकी आवश्यकता नहीं है !’ दूसरा वृद्ध बड़बड़ा उठा ।

‘लिच्छवियोंकी सभामें स्त्रियोंको स्थान नहीं ? ऐसा हास्यास्पद नियम-

कबसे प्रारंभ हुआ है ?'

'यह धर्मसभा है और धर्मसभामें स्त्रियोंके लिए स्थान नहीं है !' बौद्ध अनुयायियोंसे तीव्र घृणा करनेवाला माणव लिच्छवी बोल उठा । वह आज विशेष रूपसे बौद्ध भिक्षुओंकी पराजय देखने ही आया था ।

पाली, माणव लिच्छवीको तीव्र उत्तर सुनानेको प्रस्तुत हुई, उसके पहिले ही संथागारमें विमल श्रमणका स्वर सुनाई दिया—

'धर्म केवल पुरुषोंके लिए नहीं है !'

अपना उत्तर दूसरेके मुँह सुनकर पालीने चौंककर पीछेकी ओर देखा; संस्थागारके प्रवेश द्वारमें वह तेजस्वी श्रमण खड़ा था । सब लोग विस्मित होकर उस युवक बौद्धभिक्षुकको देखने लगे । उसे वयोवृद्ध पाटिकपुत्रके साथ बाद-विवाद करनेके लिए भेजा गया था; पालीके भगड़ेमें किसीको ज्ञात ही न हुआ कि युवक भिक्षुक अपनी मंडलीके साथ वहाँ आकर खड़ा है ।

प्रतापी सिंह लिच्छवी भी सभामें बैठा था, वह तत्क्षण खड़ा होकर पूछने लगा—'तुम्हारे तथागत बुद्ध, स्त्रियोंको धर्मसभामें प्रवेश करने देते हैं ?'

अभी तक स्त्रियाँ बौद्ध संघमें भिक्षुणियोंके रूपमें प्रविष्ट नहीं हुई थीं, किन्तु गौतमबुद्ध अपने उपदेशोंमें स्त्रियोंको पुरुष जैसा ही स्थान देते थे । सिंहका व्यंग बौद्धसंघमें साध्वियाँ नहीं हैं, इसी ओर था । किन्तु श्रमणने शांति पूर्वक उत्तर दिया—

'स्त्रियों और पुरुषोंके लिए गौतम बुद्ध, धर्म, और संघ एक जैसे ही वन्दनीय हैं और वे स्त्री और पुरुष दोनोंको एक मानकर शरण देते हैं !'

सिंह लिच्छवीने पुनः पुकार कर कहा—'पर यह बात पाटिकपुत्र नहीं मानते !'

श्रमणने तत्क्षण उत्तर दिया—'अर्थात् यह पंथ अपूर्ण है !'

श्रमणके इस वाक्यने अभी तक शांत बैठे हुए पाटिकपुत्रको जला दिया ; उसने उग्रतापूर्वक पूछा—'तू किसे, किसके सम्मुख अपूर्ण कह रहा है, इसकी कुछ सुध है ?'

पाटिकपुत्रका यह प्रश्न सुनते ही उसके प्रशंसकोंने कानोंके पर्दे फट जाब इतना कोलाहल मचा दिया । पाटिकपुत्रने महत्ताका अभिनय करके सबोंको शांत रहनेकी सूचना दी; तब बाह्य शांति और मुस्कानके साथ युवकको तनिक ईर्ष्या भरी आँखोंसे देखकर कहने लगा—‘बच्चे, धर्म केवल बुद्धिवाद से कहीं चलता; यदि बुद्धिवाद ही सर्वोपरि होता तो यह महान पराक्रमी सिंह लिच्छवी इस सभामें मेरे पक्षमें न होता ।’

श्रमणने शांतिपूर्वक उत्तर दिया—‘यह कौन जानता है कि तुम्हारा धर्म पूर्ण है या अपूर्ण ! और सिंह लिच्छवी बुद्धिसे न भी देखते हों । और यह भी कौन कह सकता है कि कि वे सदाके लिये आपके ही अनुयायी हो गये हैं ?’

‘मैं अपने धर्मानुयायियोंके बारेमें तर्क करने नहीं आया, अपने धर्मकी बात करने आया हूँ, और तुम्हारे शाक्यमुनिके मिथ्याप्रभावसे प्रभावित हो जानेवाले इन निर्दोष और निर्मल हृदयके लिच्छवियोंको यह समझाना चाहता हूँ कि तुम कितने भूटे और पाटिकपुत्रका पंथ कितना सच्चा है ! नौसिखिए ब्रह्मचारी, मैं तुझसे नहीं तेरे तथागतसे मिलना चाहता था ! अस्तु, सुन ले—साधारण मनुष्य लौकिक और पारलौकिक वस्तुओंसे अवगत होता तो तेरे भगवानका बुद्धिवाद अवश्य सर्वव्यापी होता ।’

श्रमणने आँखें मूँद लीं और गम्भीरतापूर्वक बोला—‘भगवान सच कहते हैं—बुद्धिमान और चमत्कारी पुरुष ही धर्मप्रवर्तक हो सकता है ।’

माणव लिच्छवि पुनः खड़ा हुआ, और आवेश पूर्वक बोला—‘तेरे भगवान जो कहते हैं वह बात फिर कहना ! उसके पहले ही हमारे भगवान पाटिकपुत्र जो चमत्कार दिखा सकते हैं वैसे एक दो चमत्कार तो तेरे भगवान दिखा दें ! तब देखेंगे कि तेरे भगवान कितने पूर्ण हैं और महान पाटिकपुत्र कितने अपूर्ण हैं !’

माणव लिच्छवी जैसे दूसरे अंधविश्वासी भक्त हँस पड़े, और सारी सभामें कोलाहल मच गया । पाटिकपुत्रका आवेश इससे और बढ़ा; वह श्रमणको भगाकर आजकी सभा जीत लेनेके लिए अपने स्थानसे उठ खड़ा हुआ और

ऊँचे स्वरसे बोला—‘लिच्छवियों, मैं आज तुम लोगोंके सम्मुख इस लड़के और इसके भगवानको चुनौती देता हूँ कि इसके भगवान जितने चमत्कार यहाँ दिखाएँगे उससे दूने चमत्कार मैं दिखाऊँगा।’ इतना कहनेके बाद, उसने उतने ही आवेशसे युवक विमलकी ओर घूमकर कहा—‘कह देना तेरे तथागतसे कि शब्दोंके खेल खेलकर और तर्कोंके उलट-फेरमें वह भले ही आठों-सभाओंको जीतता ‘फिरे, किन्तु पाटिकपुत्रके सम्मुख आकर चमत्कार दिखाये तब ही उन्हें और इन वीर पुरुषोंको विश्वास हो जायगा कि कौनसा पन्थ कितना अधूरा है।’

तब ही पाटिकपुत्रोंने गगन मेदी जयनाद किया—‘जय पाटिकपुत्रकी ! जय महासिद्ध पुरुषकी !

सभाका कोलाहल शांत होनेपर विमल धमराने पूर्ववत् शांति और प्रसन्नतापूर्वक कहा—‘पाटिकपुत्र, मैं अपने भगवानकी ओरसे आपकी चुनौती स्वीकार करता हूँ, और आपके सम्मुख वचन देता हूँ कि मैं उन्हें, कौनसा पन्थ कितना अधूरा है इसका निर्णय करनेकी प्रार्थना करूँगा।’ माणव लिच्छवीके निकट बैठा हुआ पाटिकपुत्रका एक श्रंभभक्त सुनक्षत्र बोल उठा—‘साथ ही साथ तेरे भगवानसे यह भी कह देना कि शांतिपूर्वक सबोंकी धृणा और धिक्कार स्वीकार करनेके बाद उनका पन्थ दुर्बलोंका धर्म सिद्ध हो चुका है।’

सुनक्षत्रके शब्दोंसे प्रोत्साहित होकर अवसरका लाभ उठाकर माणव लिच्छवी भी बोल उठा—‘शाक्यमुनि स्वयं यह बात अच्छी तरह जानते हैं, इसीलिए तो बेचारे क्रोध, मोह और मत्सरके प्रहार सह सहकर एक गाँवसे दूसरे गाँव भटकते रहते हैं।’

पाटिकपुत्रके पास बैठा हुआ एक वृद्ध इससे भी आगे बढ़ा, बोला—‘अरे भाइयों, हाथोंसे शस्त्रों और भाग्यसे राज्याका त्याग करनेवाला क्षत्रिय

* आठों सभा

क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति, श्रमता, चतुर्महाराजिक, तावंत्रिस, मार, और ब्राह्मपरिषद; ये आठ प्रकारकी सभाएँ बौद्ध लोग मानते थे।

पौरुषहीन नहीं होगा ? काषाय पहिननेसे ही क्या वह दुर्बलता निकल जाती है ? यदि ऐसोंके शिष्य भी वैसे ही निर्वीर्य हो तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है ? ’

तुरन्त सुनक्षत्र बोला — ‘ इसके भगवान कहते हैं कि संसारमें जीवन दुःख है, तुच्छ है, कटु है; समझे वीर लिच्छवियों, जीवन कड़वा है ! अरे यह रही आम्रपाली, पूछो इससे क्या जीवन कटु है ? ’

सबकी दृष्टि अब तक चुप बैठी हुई आम्रपालीकी ओर गई; पालीने उपेक्षित भावसे उस वृद्धसे पूछा— ‘ आपकी धर्म-सभामें स्त्रियोंको बोलनेका अधिकार है ? ’

‘ पूछे गये प्रश्नोका उत्तर देनेका अधिकार अवश्य है ! ’ सुनक्षत्रने व्यंग भरे स्वरसे कहा । पालीने उतना ही घृणित भाव दिखाकर उसकी ओर से आँखें हटाकर पाटिकपुत्रकी ओर मुँह करके पूछा — ‘ पाटिकपुत्र, आप संसारको क्या समझते हैं ? ’

पाटिकपुत्रने तत्क्षण उत्तर दिया— ‘ इस लड़केके भगवान जो कुछ समझते हैं, वह नहीं ! ’ ...पाली खीझ उठी; अपनी समस्त शक्ति एकत्रित करके वह बोली— ‘ लिच्छवियों ! जिस धर्मसभामें हास्य, व्यंग और अपमान करनेकी वृत्ति ही मुख्य हो, जहाँ अपनी विजयकी अपेक्षा दूसरेको पराजित करनेका विशेष ध्यान हो; जो वैशाली जैसी नगरीमें, लिच्छवियोंके सन्तानगारमें धर्म, सम्प्रदाय स्त्री-पुरुष और ऊँच-नीचके भेदभावकी चर्चा करने बैठें, उन्हें जीवन, पशुपत्नीकी अपेक्षा कीटकी आँखोंसे जैसा दिखाई देता है, वैसा ही दिखाई देगा ! फिर उस जीवनको सुख समझें या दुःख ! ’

पालीका यह स्पष्ट पक्षपात था । पाली केवल राज-कार्यकारिणी परिषदोंमें ही विशेष अवसरोंपर आती थी । आज जब वह धर्मसभामें आई तो लोगोको विस्मयके साथ आकर्षण भी हुआ था । उसके शब्दोंकी अपेक्षा उसकी देहने कितने ही मनचलोंकी सुष्ठु वृत्तियोंको जागृत किया था । पाटिकपुत्रकी चुनौतीसे बौद्धमिन्नुक हार गये हैं ऐसा समझकर उसके शिष्य विजयोन्मादमें मस्त हो रहे थे, वे आम्रपालीकी वाणी सुनकर शांत हो गये । भग-

वान तथागतकी मिथ्या वाद-विवाद न करनेकी आज्ञाके अनुसार बौद्धमिश्रक धर्मसभाको नमस्कार करके जाने लगे; पाली भी उनके पीछे पीछे जाने लगी।

किंतु लोगोंने पालीको आज बहुत दिनोंके बाद देखा था; उसे रोकने के लिए वे मनचले लिच्छविगण धर्मसभाको छोड़कर उसके पीछे पीछे गये और उसका मार्ग रोककर खड़े हो गये।

कुछ ही क्षणोंके बाद पालीने पुनः धर्मसभामें प्रवेश किया; वह नृत्य करनेको प्रस्तुत हुई, यह सिद्ध करनेके लिए कि लोग नर्तकी आम्रपालीको अधिक मानते हैं या महान चमत्कारिक पाटिकपुत्रको। धर्मसभामें जितने व्यक्ति थे, उससे दुगुने लोग यकायक आंधीकी तरह संथागारमें पालीका नृत्य देखनेके लिए उमड़ने लगे। पालीका नृत्यही सच्चा चमत्कार था। पाटिकपुत्र यह बात ठीक तरहसे समझा गया, और अपने अनृत्यायियोंको उनकी प्रिय वस्तुसे रोकनेमें कुछ लाभ न देखकर, उसने भी नृत्यके लिए अनुमति दे दी।

पाली ने धर्मसभामें नृत्य करना प्रारंभ किया, पर उसकी आँखें संथागार से दूर जाती हुई उस मिश्र-मंडली पर थीं।...

... जीवन सुख है या दुःख, यह तो धर्म प्रवर्तक ही जानें!... पर यह जीवन था—नृत्य करती हुई पाली; अनृत्यायियों को प्रसन्न करने वाला पाटिक पुत्र; और संसार में रहकर संसार से दूर रहने वाले वे बौद्ध मिश्रक!...

[६]

पालीकी आँखें खुलीं तब प्रभात हुए बहुत समय बीत गया था; यदि सुनेत्रा ने आकर पुकारा न होता तो वह अभी भी सोयी ही रहती। कलके संथागारके नृत्यने उसे बहुत थका दिया था। सुनेत्राकी चिल्लाहटके कारण उसकी लाल आँखें तो खुलीं पर रोष भी उतना ही बढ़ गया। सुनेत्रा फिर भी कहती ही रही—

‘देवी, जागीं!.... वे...वे...वह.....वो...’

‘वह, वह क्या? सूखा, ठीकसे बोल न!’

‘माँ, उस सभामें वे सुन्दर युवक संन्यासी आये थे न! वे आज हमारे यहाँ मिश्र लेने आये हैं।’

‘भिक्षा माँगने ? तो मूढ़, यहाँ क्यों खड़ी है ? जा, उन्हें भीतर बुला ला !’

‘वे महलमें ही हैं, मुख्य भवनमें बैठे हैं !’

‘तो मेरे सामने खड़ी न रह, भिक्षा देनेकी तैयारी कर !’

‘मैंने कर ली है !’

‘तो...तो...!’ मुझे जगाया क्यों ? जा उनके पास खड़ी रह, मैं अभी आई !’

कहकर पाली शीघ्रता-पूर्वक उठी। वर्षों पहले, एक दिन जब बिबिसार आया था तब भी उसने ऐसी ही शीघ्रता की थी, आज भी वह वैसी ही दौड़-धूप करने लगी। इस युवक भिक्षुकको क्या सुहायेगा और क्या नहीं, इसी दुविधामें इतनी खो गई कि वैसे ही आधा प्रहर बीत गया।

जब वह मुख्य भवनमें आई तब उसने बहुत ही सादे वस्त्र पहिन रखे थे। विमल और उसका एक साथी फर्शपर एक सादे आसनपर नीची दृष्टि किये, बैठे थे। पाली ने मुँहपर मुस्कान लाकर नमस्कार किया। उसे आज सबसे अधिक आश्चर्य इस बात पर हो रहा था कि—आज वह एक ही भिक्षुक के साथ आया था, और वे बौद्ध भिक्षु, जो बिना आमंत्रण किसी के घर नहीं जाते, आज उसके घर में बिना बुलाये आकर बैठे थे। पाली एक आसन पर बैठती हुई मुस्करा कर बोली—‘ भिक्षु, आज यहां आगमन कैसे हुआ; यह तो नर्तकीका घर है !’

‘मैं जानता हूँ !’

‘क्या जानते हो ?’

‘तुम जो हो, वह नहीं हो !’

‘क्या तुम्हारा धर्म लोगोंकी आंतरिक बातें भी जाननेकी आज्ञा देता है ?’

‘नहीं, पर यदि मनुष्यके उद्धारके लिए ये बातें जानना आवश्यक हो तो उन्हें जाननेमें कोई पाप नहीं है !’

‘तो तुम मेरा उद्धार करने आये हो ?’

‘तुम्हारा उद्धार तो तुम्हारे संस्कारों, कर्मों और बुद्ध परकी श्रद्धापर निर्भर करता है; मैं तो यहाँ निमित्त बनने आया हूँ !’

‘अबतक कोई मुझे जीत नहीं सका है, इसलिए कदाचित मुझे जीतनेकी इच्छा हुई होगी ?

‘इच्छा हो तो तुम्हें जीतना कठिन नहीं है !’

विमलके इस शांतिपूर्वक निकले हुए वाक्यसे पाली चौंक उठी; किंतु वह वार्तालापमें कुशल थी, हतोत्साह नहीं हुई, हँस पड़ी ।

‘मुझे ? इतनी बड़ी आम्रपाली को ?’

‘हाँ; जो दूसरोंको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करता है, उसे जीतना कठिन है, ऐसा कौन कहता है ?’

पाली कुछ विचलित हुई, युवकका यह प्रश्न वह समझ नहीं सकी । उसने मंद स्वरसे कहा—‘मैं दूसरोंको प्रसन्न करती हूँ, प्रसन्न करनेका प्रयत्न नहीं करती !’

‘करती हो, नहीं तो इतनी सम्पत्ति-शाली नर्तकी होकर एक सिधुकको प्रसन्न करनेके लिए सब अलंकार छोड़कर ऐसे सादे वस्त्रोंमें न आती !’

पाली क्षुब्ध हुई, किंतु कुछ देर ठहरकर हँसती हुई बोली—‘भिन्नु, तुम्हें प्रसन्न करनेसे मेरा क्या हित हो सकता है ? तुम मेरे पुत्रके समान हो !’

‘मैं भी कल रातसे यही सोच रहा था कि मैं आपका पुत्र होता तो कितना अच्छा होता !’

‘मेरे पुत्र ?’ पाली सहसा आवेशमें बोल उठी । उसका हृदय आनन्दसे भूमने लगा । किन्तु वह क्षणिक आवेग शान्त हो गया ।

‘मेरा पुत्र, नर्तकीका पुत्र ? तुम होते तो अच्छा होता ? नहीं, नहीं, भिन्नु ! तुम्हारा मस्तक...नहीं, नहीं.. युवक, तू भूल रहा है !’

भिन्नुने सिर उठाकर पालीकी ओर देखते हुए कहा—‘सच कहता हूँ, क्योंकि पुत्रको ही माताका उद्धार करनेका अधिकार अधिक है !’

पालीकी आँखोंकी कोरें आँसुओंसे भर गई; उन्हें छुपानेका व्यर्थ प्रयत्न करके पालीने व्यंगमें कहा—‘श्रमण, वर्षों पहले एक संन्यासी मेरा उद्धार करनेके लिए मेरे पास आया था । किन्तु पहले ही दिन उसने काषाय वस्त्र छोड़ दिये, दूसरे दिन मेरे साथ विवाह करनेको प्रस्तुत हुआ और तीसरे दिन मर जानेके लिए तैयार हुआ ! अन्तमें मेरे उद्धारके लिए आये हुए उस

संन्यासीको मुझे अपने रथमें बिठाकर उसके घर, उसका पत्नीके पास पहुँचाना पड़ा !'

‘यदि काषाय वस्त्र पहिननेसे ही संन्यासी बना जाता हो तो तुम ये सारे वस्त्र पहिनकर निर्धनोंकी आदर्श बन जाती !’

‘अर्थात् मैं निर्धनोंकी आदर्श नहीं हूँ यही न ?’

‘तुम किसीकी आदर्श नहीं; तुम किसीकी भी आराध्यदेवी नहीं बन सकती ?’

‘मैं...मैं, आम्रपाली...देशनर्तकी ! किसीकी आराध्यदेवी नहीं बनसकती ?’

‘यह प्रश्न अपनी अन्तरात्मासे पूछ देखो, तुम देशनर्तकी बनकर कितने दुःखकी, कितने द्वेष और कितनी निर्दय हत्याओंकी कारण बनी हो ? नर्तकी बनकर तुमने कितनोंके जीवनसे खेल खेला है ? पतिको पत्नीसे, पुत्रको माँ-बापसे, राजाको राजपाटसे और कितने ही वीरोंको उनके कर्तव्यसे च्युत किया है, तब तुम किसी की आराध्यदेवी बन सकती हो !...और इतना परिश्रम और प्रयत्न करनेपर भी इस वयमें भी तुम्हें शांति मिली है ? जीवनका सुख मिला है ? अपनी अन्तरात्मासे पूछ देखो !’

पाली विस्मयसे विमलको देखती रही, बोली—‘सुख कह सकें ऐसी कोई वस्तु ही संसारमें नहीं है !’

‘तथागत भी ऐसा ही कहते हैं !’

‘तब तुम्हारे तथागत बुद्ध और मैं एक ही कोटिके हैं ?’

‘अभी नहीं हो, पर तुममें उष कोटि तक पहुँचनेकी क्षमता है !’

‘अर्थात् तुम मुझे संन्यासिनी बनाने आये हो !...मार्ग भूलते हो भिक्षुक ! मैं तुमसे वादविवाद करना नहीं चाहती। कृपया एक बात तो बताओ कि तुम पूर्वाश्रममें किस देशके, किसके पुत्र थे ?’

‘माँ, निर्वाण प्राप्तिके लिए भूतकालको याद करनेकी आवश्यकता नहीं है ! भविष्यकी चिन्ता करके दुःख, दुःखकी उत्पत्तिका कारण, दुःखका अन्त, बुद्ध द्वारा बनाये हुए आठ प्रकारके आर्य मार्ग—इन चार सत्त्योंको समझकर उसके अनुसार आचरण करनेकी आवश्यकता है; उसीमें सच्चा

सुख है, मैं यही समझाने आया हूँ !’

पाली विमलकी बात ध्यानसे सुन रही थी; कोई प्रच्छन्न आनन्द उसके हृदयमें उमड़ पड़ा। क्षण क्षणमें उसकी इच्छा होती थी कि उठकर इसे चूम लूँ ! उसके हृदयमें वात्सल्यकी धारा बहने लगी। संन्यासीके वे सत्य और समझकी बातें उसे नहीं सुहा रही थीं, फिर भी संन्यासी ज्यों ज्यों बोलता जाता था, त्यों त्यों पाली उससे विवाद और विरोध कम करती गई। पुत्रप्रेम और तज्जन्य विह्वलताने उसे अस्तव्यस्त कर दिया। संन्यासीने भूतकालकी बातें न कीं, वर्तमान कहा; और भविष्यका भय दिखा कर उसे चार सत्य सुनानेके लिए तैयार हुआ। विमल निःसंदेह पालीका उद्धार करनेके लिए आया था !

‘पर तुम्हें मेरा उद्धार करना ही कैसे सूझा ?’ अन्तमें पालीने पूछ लिया।

‘तुम दुःखी हो, अशांत हो !’

‘यह तुमने कैसे जाना ?’

‘मैं यह कहनेके लिए प्रस्तुत हूँ। वह मुझे तुम्हारी वाणीमें, व्यवहारमें, मुस्कानमें और क्रोधमें दिखाई देता है ! माँ, जीवनका सच्चा सुख कोई नहीं जानता, और जो जानता है कोई उसे समझना नहीं चाहता। केवल तुम जैसे ही सत्यको समझ सकते हैं। पैदा होना दुःख है, जन्म लेकर जीना दुःख है, जीकर मरना दुःख है... दुखोंकी यह परम्परा चळती ही रहती है। मोह और तृष्णामें फँसा हुआ प्राणी एक भवसे दूसरे भवमें दौड़ा करता है, जिसका अन्त नहीं। अन्त केवल तथागतने पाया है; और जब तुम्हें उसका साक्षात्कार होगा तब ही तुम्हारे दुःख और अशांतिका अन्त आयेगा। माँ, तथागतकी शरण लो; उनकी शरणमें ही तुम्हें सच्ची शांति और सच्चा सुख मिलेगा, तथास्तु !’

इतना कहकर विस्मित पालीको आशीर्षचन कहकर विमल अपने साथी भिक्षुको लेकर चला गया; न उसने पीछे देखा और न रुका ही।

पाली द्वारके पास खड़ी हुई श्रमणकी पीठ देख रही थी; धीरे धीरे

उसके ओंठ काँपे—‘मैं दुःखी और अशान्त हूँ यह तुम कैसे जान गये, अज्ञानी श्रमण?...मोह क्या है, माया क्या है, माँ क्या है...? तुम्हारी माँ मिलती तो उससे पूछती कि उसने ऐसे पुत्रको दूर कैसे किया, और ऐसा करके वह जी कैसे सकी है?...’

पालीकी आँखें भर गईं। प्रातःकालसे मध्याह्न हुआ; और मध्याह्नसे सन्ध्या हुई...। किन्तु पालीकी अन्तरात्मा यही प्रश्न पूछ रही थी—पूछती ही रही !

[१०]

यह वही आम्रवृक्ष था, जहाँसे आम्रपालीने सर्वप्रथम संसारको देखना प्रारम्भ किया था; जिसकी छायाके नीचे पालीने प्रति वर्ष लिच्छवियों और समस्त वज्जियोंको अपने नृत्यप्रयोग दिखाये थे। आज उसी आम्रवृक्षके नीचे महाकप्पिनो स्थविर विराजित थे, जो अवस्थामें गोतमबुद्धसे भी बड़े, और भिक्षुणीयोंको उपदेश देनेमें श्रेष्ठ वक्ता माने जाते थे। उनके पास ही पियन्नहो स्थविर और अन्य वयोवृद्ध भिक्षुक बैठे थे। वहाँ उनसे मिलनेके लिए कोशलके मनसाकर और ब्राह्मणगोँवके कई ब्राह्मण आये हुए थे। अग्निपूजकों और भगवे साधुओंने गोतमबुद्धके उपदेशोंको उल्टी तरहसे समझाकर लोगोंको विरुद्ध मार्ग बताना प्रारम्भ कर दिया था; वे लोगोंको अश्वमेध और पुरुषमेध यज्ञ करानेके लिए कई तरहसे प्रेरित करते थे। गोतम बुद्धने ऐसे हिंसक यज्ञोंके विरुद्ध उग्र प्रचार किया; और इससे बुद्धानुयायी ब्राह्मणोंके सम्मुख एक बड़ी समस्या खड़ी हो गई थी। इतना समय बीत जानेपर भी, दूरसे आये हुए सत्संगियोंको निराश न करनेके लिए महाकप्पिनो अभी तक उपदेश देनेके लिए वहाँ बैठे थे। रात्रिका नीरव वातावरण मंद मंद जलती हुई मशालोंसे अधिक गंभीर हो रहा था, और उस नीरवताको मेदता हुआ महाकप्पिनो स्थविरका गम्भीर प्रेरणाप्रद स्वर हृदयमें एक विचित्र आस्था उत्पन्न कर रहा था।

रथको खड़ा करके पाली कुछ देर तक स्थविरका उपदेश सुनती रही;

उसके पैर अचानक बढ़ते बढ़ते रुक गये। कुछ देर रुककर वह सोचती रही, किन्तु फिर साहस एकत्रित करके शीघ्रतापूर्वक भोताओंके पाससे निकलकर स्थविरके सम्मुख आकर उन्हें नमस्कार किया; भोताओंने मुँह फिराकर एक बार पालीको देख लिया।

इस समय यदि कोई दुःखकी मारी अकेली स्त्री वहाँ आती तो आश्चर्य करनेका कोई कारण न था, किन्तु आज पालीका इस तरह आना अवश्य आश्चर्यजनक था। महाकप्पिनोने उसे देखकर शान्त और निर्मल मुस्कानके साथ आशीर्वचन कहे। गोतम बुद्धके वे शिष्यगण भी बुद्धमय प्रतीत होते थे। पालीकी गरिमा टूट गई; गौरव अदृश्य हो गया; वह अपनी निराशा, भय और संकोच भूल बैठी। सहसा वह स्थविरके चरणमें आकर बैठ गई और रोकर बोली—

‘प्रभु, वह युवक संन्यासी कहाँ है?’

ब्राह्मण भोतागण चौंक पड़े; कोई अश्रद्धालु भक्त प्रकाशमें भी अन्ध-कार देखने लगे; किन्तु सब मौन थे। स्थविरने स्नेहपूर्ण स्वरमें पूछा—

‘किसकी बात करती हो? युवक भिक्षुक तो यहाँ बहुतसे हैं!’

‘वह जो मेरा, मेरे हृदयका, मेरे जीवनका, उद्धार करनेके लिए मेरे घर बिना बुलाये आया था...’

‘आचार्य, यह विनल श्रमणके बारेमें पूछ रही है!’ सहसा वह भिक्षु बीचमें बोल उठा जिसने भिक्षाके लिए पालीके घर न जानेके लिए कहा था।

स्थविरने मंद मुस्कानके साथ कहा—‘श्रमण विमल तो राजगृह गया है देवि!...’

‘मुझे आप देवि न कहें...!’ पाली बोल उठी, तब अत्यंत कर्णार्द्र स्वरमें बोली—‘राजगृह किसलिए, मुनि?’

‘तथागतको बिंबिसारके पाससे यहाँ ले आनेके लिए।’

‘प्रभु, भले ही तथागत आएँ, पर उनके साथ वह भी आएगा न?’

‘आयेगा...कदाचित न भी आए...’ स्थविरने मुस्कान रोककर उत्तर दिया।

‘ऐसा न कहें महाराज, ऐसा न कहिए; वह क्यों नहीं आएगा ? ...
आये बिना रह ही नहीं सकता !’

‘देवि !’

‘मुझे फिर देवी कहा, प्रभु...?’

स्थविरका मुख पुनः मुस्कानसे भर उठा, जैसे वे अपनी भूल स्वीकार कर रहे थे, बोले—‘तू इतनी आतुर किसलिए है ?’

‘मैं, पाली ?...किसलिए आतुर हूँ ?...प्रभु, यदि वह तथागतके लेने गया है, तो उसे ले जानेके लिए मैं आई हूँ !’

‘किसलिए ?’

‘मैं कैसे समझाऊँ...’

‘संसारमें घसीट कर तू उसे क्या दे देगी ?’

‘वह दूँगी जो उसने कभी सुना न होगा, जाना न होगा !’

‘क्या ?’

‘माँ का हृदय !’

‘तू उसकी माँ है ?’

‘माँ होना चाहती हूँ...नहीं महाराज, मैं उसे यहाँ नहीं रहने दूँगी; संसारमें वृद्ध बहुतसे हैं, दुःखोंसे व्यथित असंख्य मनुष्य आपको इस जगत में मिल जाएँगे उन्हें श्रमण बनाइये, संन्यासी बनाइये ! पर आप, और आपके तथागत इन कोमल किशोरोंसे अपना बुद्धसंघ भरना क्यों चाहते हैं ? प्रकृति-प्रदत्त सुख मनुष्योंके हाथोंसे क्यों छीना जाता है ? इन सुंदर युवकोंको अपने माता-पिताकी दुलार भरी दृष्टिसे बलात् ले जाकर आपका यह कठिन जीवन—पेड़ तले रहना, पंसु कूलचीवर, उग्र तपस्याएं और ये गूढ़ उपदेश किसलिए दिये जाते हैं ? उन्हें इतना कठिन जीवन जीना किसलिए सिखाया जाता है ? किसलिए...क्यों ?’

‘यह ‘क्यों’ तू तब ही समझ सकती है जब उनके जैसी बन जाए !’

‘समझना नहीं चाहती भगवन्, मैं वह श्रमण चाहती हूँ, मुझ पर दया करो !...मुझे यह बता दो कि वह श्रमण किसका पुत्र है ?’

‘जान कर क्या करेगी बेटी ?’

‘आप संन्यासी हैं, स्त्री नहीं ! मैं आपको समझा नहीं सकूंगी !’

‘जलके बीचों-बीच तैरने वाला कमल यह जानना नहीं चाहता कि उसकी जड़ कहाँ है। उसे तो पानीकी सतह पर अपनी ओर खिंचते हुए जीव-जंतुओंमें ही सार्थकता विदित होती है। कमलको खींचनेसे जड़में कीचड़ ही दिखाई देगा !’

‘मुझे कवि बन कर उत्तर न दो प्रभु, दयालु बनकर कहो !’

‘अपने घर लौट जा माँ ! यहाँ कोई किसीके भूतकालको नहीं जानता !’
स्थविरने शांतिपूर्वक कहा।

उत्तर सुनकर पाली सहसा खड़ी हो गई, उसकी घबराहट बढ़ गई थी; बुद्ध स्थविरकी ओर एकटक देखकर उसने अत्यन्त क्रोधपूर्वक कहा—

‘मैंने इतनी क्रूरता और पक्षपात बौद्ध-भिक्षुओंमें ही देखा है ! पर आप मेरी बात भी सुन लें, आज तक कोई पालीके निश्चयको बदल नहीं सका है ! स्थविर, आप ममभ्र बैठे हैं कि उसे छुपाकर आप उसे अपने पास रख सकेंगे, पर आप भूलते हैं...आप सब बौद्ध-भिक्षुओंसे कहे देती हूँ, मैं उसे आपके पाससे ले जाऊँगी; और उस अकेलेको ही नहीं, उसके जैसे प्रत्येक किशोर भ्रमण और भ्रमणरको ले जाऊँगी;...लिच्छवियोंकी सेना लाकर ले जाऊँगी !...तब देखूँगी कि आप और आपके तथागत बुद्ध मुझे कैसे रोकते हैं ?...’

इसी आवेशमें पाली जाने लगी, किंतु कुछ दूर जाकर खड़ी हो गई, उसके पैर अपने आप रुक गये, उसने घूमकर स्थविर मंडलीको देखा। आवेशके कारण वह थक गई थी; आँखोंसे आँसू भी बहने लगे थे। महा-कप्पिनो स्थविर शांतिपूर्वक पालीको देख रहे थे; उन्होंने उन क्रोधपूर्ण शब्दोंके पीछे, पालीके हृदयको जान लिया था। उन्होंने आशीर्वादके लिए अपना दाहिना हाथ उठाया; पालीने धरती पर बैठकर वहींसे नमस्कार किया। आगंतुक ब्राह्मण लोग इस विचित्र घटनाको बहुत कौतुहल-पूर्वक देख रहे थे। उनमेंसे कोई भी उस युवक साधुके पीछे पागल-बनी हुई पाली को समझ नहीं सका।

पालीने खड़ी होकर आँसू छुपानेके लिए मुँह फेर लिया; जब उसने आँखें पोंछनेके लिए आँचलका छोर खींचा कि सहसा उसकी आँखें चमक उठीं। मशालोंके मंद प्रकाशमें भिक्षुकोंकी छोटी-सी मंडली दूर आती हुई दिखाई दे रही थी; पाली तुरन्त आँसू पोंछती हुई उस ओर दौड़ी। वह कुछ ही क्षणोंमें भिक्षुओंके पास पहुँच गई। सबसे पहले उसकी दृष्टि आगे वाले भिक्षु पर पड़ी; उसे देखते ही हृदयसे दुःख भरी चीख निकल पड़ी। दौड़ कर पाली उसकी बाहोंसे लिपट गई और जोरसे रोने लगी। यह भिक्षु उसका भाई आनन्द था; उसके साथ ही अभिराम भी।

‘भैया !...भैया!’ पाली चिल्लाई; हृदयका आवेग रोकनेसे रुक न सका; तीनोंने देखा कि पालीका हृदय अब निर्बल हो चुका था, उसमें पहले की हृदयता न थी। आनन्दने गंभीरता-पूर्वक उसके सिर पर हाथ फेर कर कहा—

‘माँ, इन सबोंमें कौन तेरा भाई नहीं है ? शांत हो ! और मुझे जरा दूर हो...’ किंतु पालीने उसे और जोरसे पकड़ लिया और बोली—‘वह कहाँ है ? मैंने उसे देख लिया है भैया ! वही, वही है...उसकी आँखें, उसके बाल, ओंठ, दाढ़िने गाल पर तिल....अब, सब मुझे याद हैं; बोलो वह कहाँ है ?’

‘संभव है, वही हो जो तू सोचती है।’ आनन्दने पूर्ववत् शांतिसे कहा; वैसी ही शांतिमें जिसे पालीने महाकल्पिनो स्थाविर और किशोर श्रमण विमल में देखी थी। पालीने तत्क्षण उत्तर दिया—‘नहीं, संभव नहीं...वही है !’

‘नाम बताया ?’ वृद्ध अभिरामने पूछा।

‘अभी ही ज्ञात हुआ है—विमल।’

‘वही है...!’ वेदातीने कह दिया। पाली दोनोंको स्थिर दृष्टिसे देख रही थी।

‘भैया, दादा !...उसे लेकर मेरे साथ चलो; तुम सब चलो ! सारा बुद्धसंघ साथ लेकर चलो...! तुम कहोगे तो मैं तुम्हें संन्यासी ही रहने दूँगी; तुम चाहोगे तो मेरा महल तुम्हें सौंप दूँगी तुम चाहोगे तो इस उद्यानमें या मेरे महलमें ही तुम्हारे लिए सुन्दर मठ बना दूँगी। मैं बाहर रहूँगी;

तुम कहोगे तो नगरके भी बाहर रहूँगी ! ..पर तुम सब चलो ..भैया, दादा !
उसे लेकर, उसके साथ...!’

इतना कहकर दुःख, उद्वेग और निराशासे व्यथित पाली आनन्दके हाथोंमें गिर पड़ी ।

आँखें खुलनेपर पालीको ज्ञात हुआ कि वह उसी पुराने आम्रवृक्षके नीचे सोयी थी; उसके समीप महाकप्पिनो और अभिराम बैठे थे; सबोंके मुख शांत और मृदु मुस्कानसे विकसित थे । पाली धीरे धीरे उठ बैठी ।

भाई पर बहिनके समझानेका कार्य छोड़कर दूसरे भिक्षुक वहाँसे चले गये; केवल अभिराम आनन्दके साथ रहा ।

तब आनन्दने उसे संसारकी असारता और मोहमायाके त्यागको लेकर उपदेश दिया । धीरे धीरे पालीकी समझमें आया कि उसके भाई, दादा और वेदांती वयोवृद्ध उससे बहुत ही दूर रहकर, पराये और अपने प्रेमसे रहित होकर ससस्त विश्व प्रेमके रंगमें रंगे हुए थे । वे उस स्तरपर पहुँच चुके थे कि जिन्हें देखकर और जिनकी बातें सुनकर उनके प्रति भ्रद्धा ही उत्पन्न हो ! भाईने पालीको बुद्धिवादसे प्रभावित किया, धर्मकी बातें करके विजित किया किंतु वह ‘माँके हृदय’ को नहीं हरा सका, और न अभिराम ही । जीवनमें अनेक महत्तम बलिदान देकर भी दृढ़ और अटल रहनेवाली पाली हृदयके नव-जागृत पुत्र-प्रेमसे इतनी निर्बल हो गई होगी ऐसा किसीने सोचा तक न था । पाली अपने पुत्रको पुनः लौटा लेना चाहती थी, चाहे वह उसके पास न रहकर उसकी दृष्टिके सामने ही रहे । आनंद और अभिराम दोनों मिलकर पालीको यह न समझा सके कि प्रायः निर्वाणके अंतिम स्तर तक पहुँचकर और संसारसे सदैव अलिप्त रहकर विमल अब उसे पुनः पुत्ररूपमें प्राप्त नहीं हो सकता । यह बात पालीकी समझमें बिल्कुल नहीं आई ।

पाली, जिसके हृदयने माँकी ममता और दुलार खो दिया था, अंतमें दोनोंके चरणोंमें, सिर झुकाकर जाने लगी । दोनोंकी आँखोंमें निर्दोष स्नेह था, न दुलार था न ममता ।

जानेके पहिले पालीको ज्ञात हो चुका था कि तथागत बुद्धकी आज्ञानुसार

देश-विदेशमें विचरण करनेवाले भिक्षुगण किसी विशेष समय तक नहीं लौटते हैं; संभवतः विमल भिक्षु भी न लौट सकेगा।

[११]

वैशालीके परमग्रहके आगे एक निर्ग्रथानुयायीने धूम मचा दी थी; बहुत से लोग उसकी पुकार और चिल्लाहट सुननेके लिए वहाँ एकत्रित हो गये। तब वह जोरसे हँसता हुआ वहाँसे आगे बढ़ा। नगरकी गली गलीमें वह अपने साथकी छोटी-सी भीड़के साथ घूम घूमकर चिल्ला रहा था।

पाली वीणाकी एक कम्पित रागिनीमें खो गई थी; उस चिल्लाहटने उसका ध्यान भंग किया। निर्ग्रथानुयायी अपने साथियोंके साथ कंठकी समस्त शक्ति लगाकर चिल्ला रहा था, पाली वीणा छोड़कर झरोखेमें आकर खड़ी हो गई। उसने सुना—‘सुन लो वैशाली वासियो’! अहिंसाका उपदेश देनेवाला तुम लोगोंका आधुनिक महात्मा श्रमण शाक्यमुनि गौतमबुद्ध. सिंह लिच्छवीके यहाँ एक निर्दोष प्राणीको मरवाकर मांसका भक्षण कर रहा है। आओ, हिंसाके उस कट्टर विरोधीको प्रत्यक्ष देख लो, निर्दोष प्राणियोंको मरवाकर, मीठे और चटकदार मसालोंसे भरकर वह अपने शिष्योंके साथ कितने आनंदसे उसे भक्षण कर रहा है! आओ लिच्छवियों, सिंहके वहाँ आकर देख लो!...

‘सुनेत्रा, सुनेत्रा!’

पालीने जोरसे पुकारा; सुनेत्रा व्यथित-सी उसके पीछे ही खड़ी थी; उसे देखकर पालीने मंदस्वरमें कहा—‘सुनेत्रा, भगवान यहाँ पधारे हैं?’

‘हाँ माँ। पाटिकपुत्रने सात दिन पहिले उन्हें जो आह्वान दिया था, उसे मानकर वे यहाँ आये हैं। आज मध्याह्नके बाद वे प्रवचन भी करेंगे!’

किंतु.....किंतु सुनेत्रा वह आह्वान तो उस श्रमणने ही स्वीकार किया था न! वे यहाँ क्यों...’

सुनेत्राने बहुत काठनतासे अपना रुदन रोककर पालीके हाथ आवेशमें पकड़ लिये और प्रार्थना की—‘माँ, आज भी भोजन करोगी या नहीं; कशे, करोगी या नहीं?...नहीं तो मैं भी...’

‘क्या है री ?’

‘इन सात दिनोंमें तुमने भोजन कब किया है ?’...माँ...’

पाली हँस दी। सुनेत्रा रो पड़ी।

पालीने एकनिष्ठ सुनेत्राके मुखपर अपने गहन दुःखका प्रतिबिम्ब देखा; उसने सुनेत्राकी आँखोंमें देखकर गम्भीरतापूर्वक कहा—‘सुनेत्रा, इसी समय मेरे वस्त्राभूषण तैयार कर, मुझे भी देखना है कि ये मांस-भक्षी, सम्यक्संबुद्ध अर्हत, विद्यासंपन्न, सुगत, देवमनुष्योंके प्रभु गौतमबुद्ध कैसे हैं !’

‘देवि देखकर क्या करोगी ?’

‘देखूँ तो सही ! पूछूँगी कि तुम्हारा यह कैसा धर्म है जो माँको पुत्रसे, स्त्रीको पतिसे, पुत्रको पितासे दूर रखना पुण्य समझना है ? संसारको असार बताकर, सुकुमार युवकोंको शिशिर, शरद् और ग्रीष्मकी भीषण शीत और उष्णताको बलात् सहन करना सिखाकर एक से दूसरे गाँव भटकानेका उपदेश देता है ? सुनेत्रा, मुझे उस संसार-शत्रुसे पूछना है कि तुम्हारा यह कैसा धर्म है जो...’

पालीका आवेश आँसुओंमें बहने लगा। सुनेत्राने शीघ्र वस्त्राभूषण प्रस्तुत करना प्रारंभ किया। पाली सात दिनोंसे महाकपिनों स्थानेर, आनन्द और विमलके धार्मिक उपदेशोंको समझनेका प्रयत्न कर रही थी। किंतु उसके मातृ-हृदयकी अशांति किसी तरह दूर न हो सकी; उसकी विषादमयी निराशा बढ़ती ही गई। सुनेत्रा उसके दुःखका कारण जानती थी; अब उससे पालीके आँसू देखे नहीं जाते थे।

एक प्रहरके बाद जब पाली सिंहके घर पहुँची तो ज्ञात हुआ कि गौतम बुद्ध दिगम्बर पाटिकपुत्रके वहाँ गये हैं। पालीको बहुत आश्चर्य हुआ जब उसने सुना कि पाटिकपुत्र और अन्य सम्प्रदायोंका कट्टर अनुयायी सिंह लिच्छवी भी उनका विनम्र सेवक बनकर उनके साथ गया है ! उसने अपना रथ पाटिक-पुत्रके निवासकी ओर बढ़ाया।

वहाँसे कुछ ही दूर पालीने अपना रथ रोक दिया; किंतु पैरोंके पृथ्वी पर रखते ही, वह आवेग जो उसे गौतमबुद्धसे मिलनेके लिये यहाँ तक खींच लाया

था, बिलकुल शांत होगया। धीरे धीरे पाली मठके द्वारके पास सबके पीछे आकर खड़ी हो गई इस डरसे कि कोई जान न जाय। सहसा वहाँ खड़ी होते ही विस्मयसे स्तब्ध हो गई।...

अनुकम्पा-पूर्ण मुस्कानसे तथागत गौतमका मुख विकसित हो रहा था, उनका शरीर किसी अज्ञात तेजसे दैवीप्यमान था। दिगम्बर पाटिकपुत्र श्रवाक् बनकर वहाँ बैठा था; उसके शिष्यों और अनुयायियोंकी स्थिर दृष्टि गौतमबुद्धकी ओर ही थी। पाटिकपुत्रको उसी तरह मौन देखकर अंतमें गौतम खड़े हुए और आशीर्वचन कहकर वहाँसे जाने लगे। पाटिकपुत्र मानों पृथ्वीसे चिपक ही गया था, गौतमके चले जाने पर भी वह उठ न सका। गौतमबुद्ध के शब्दोंने उसके शरीर और मनको इतना प्रभावित किया था कि उसकी बुद्धि भी उसके अनुयायियों और अंतिम आगंतुक पालीकी ही तरह कुंठित हो गई।

जिस तरह पहाड़की चोटीपर खड़े होकर नीचे दृष्टि डालनेसे खेतोंके विभिन्न आवरणोंसे पृथ्वी ढँकी हुई दिखाई देती है, वैसे ही चिथड़ोंसे जुड़े हुए वस्त्रसे गौतमका शरीर आच्छादित था। उनके हाथमें, सामान्य भिक्षुकी भाँति ही एक भिक्षापात्र था, एक कंधेपर छोटीसी भोली लटक रही थी। उनके पीछे पट्टशिष्य, सारिपुत्र और मोद्गलायन भी थे और कुछ ही दूर आनंद भी अंगरक्षककी तरह साथ ही चला जा रहा था। गौतमकी प्रसन्न मुख-मुद्रा और किसी अलौकिक प्रभावके कारण प्रत्येक व्यक्ति मंत्रमुग्धकी तरह प्रभावित हो जाता था। ज्यों ज्यों वे आगे बढ़ते जाते थे उनके अनुरोधीके साथ साथ विरोधी भी सिर झुका देते थे। सिंह, आनंद और श्रद्धासे पुलकित होता हुआ पालीको घूरकर निकल गया किंतु पालीका ध्यान दूर जाते हुए उस उद्धारककी ओर था।

पालीने बुद्धको देख लिया। उसका मन क्रोधसे उत्तेजित हो रहा था, उन्हें ललकारनेके लिए उसने बहुतसे शब्द सोच रखे थे किंतु जब वे ही बुद्ध सबोंको आशीर्वाद देते हुए उसके पाससे निकल गये तो उसने कुछ न सोचकर उनके आगे सिर झुका दिया; उसके मन पर किसी अज्ञात अंकुशकी नोक रख दी गई थी जो चुभते हुए भी कुछ कहने न देती थी।

पाटिकपुत्रका मौन रहना चमत्कार नहीं था, सिंह लिच्छवीका आँसू बहना चमत्कार नहीं था, किंतु पालीका इस तरह विमूढ़ बनकर सिर झुका देना अवश्य एक चमत्कार था !

पालीके घर पहुँचने पर उसकी व्याकुलता और बढ़ गई; वह क्या करने गई थी और क्या कर आई ! गौतमबुद्धको देखते ही वह अचानक शांत कैसे हो गई ! उन्हें एक बात भी क्यों न कह सकी ! तथागत अवश्य इंद्रजालिक है, जादूगर है; नहीं तो सैकड़ोंमेंसे एक पुरुष भी उससे कुछ कह नहीं सकता ? सोचते सोचते उसका क्रोध पुनः भड़क उठा; अशांति बढ़ गई । वह क्रोध अब बेचारी सुनेत्रा पर उमड़ पड़ा —

‘ सुनेत्रा !’

सुनेत्रा, हाँफती हुई उसके पास आकर खड़ी हो गई, वह अभी ही बाहरसे आई थी !

‘ क्यों, कहाँ भटकने गई थी ?’

सुनेत्रा चुप रही ।

‘ बोल, मूढ़ !’

‘ माँ मैं बौद्ध भिक्षुओंके डेरे पर गई थी !’

‘ क्यों ?’

‘ यों ही, देखनेके लिए; पर कोई मिला नहीं !’

पाली समझ गई कि सुनेत्राका संकेत विमलको देखने जानेकी ओर था । वह आगे कुछ न पूछ सकी । सुनेत्रा, जो पालीके ऐसे क्रोधसे अभ्यस्त थी, धीरे धीरे स्वामिनीके आभूषण निकालने लगी ।

‘ माँ, सब लोग बातें करते थे कि गौतमबुद्ध अद्भुत हैं, देवरूप हैं...!’

पालीकी इच्छा हुई कि सुनेत्राको एक थप्पड़ लगा दे, पर वह मौन ही रही । सुनेत्रा कहती गई—

‘ और माँ, उनके चमत्कारोंकी तो बात ही क्या कहूँ ? लोग कहते हैं कि पाटिकपुत्र तो उन्हें देखते ही धरतीसे चिपक गया और उसकी जीभ पेटमें उतर गई ।...पर उसके शिष्य ऐसे वैसे न थे, वे बुद्धके पीछे लग गये और

कहने लगे कि श्रमण गौतम, तुम्हारा धर्म मूर्खों और अंधविश्वासियों के योग्य है; यदि तुम सच्चे हो, बुद्ध हो, सम्यक् बुद्धि वाले हो तो हमें कोई चमत्कार दिखाओ...

पाली सुनती रही।

‘फिर माँ, गौतमने उन लोगों से कहा कि—‘तुम्हारे पाटिकपुत्र को यहाँ ले आओ तो दिखाऊँ!’...पर जब वे जाने लगे तो झट उन्हें रोक लिया और कहा कि एक बात सुनते जाओ—‘यदि तुम्हारे पाटिकपुत्र के मस्तिष्क में सदा की तरह कुविचार होंगे तो उसका मस्तक फट जायगा। यह सुनकर सब पाटिकपुत्र आशंकित होकर वहीं खड़े हो गये। कुछ लोगों ने यह बात पाटिकपुत्र से कही; पर वह तो इतना डर गया कि अपने स्थान से खड़ा भी न हो सका...।’

पाली सुन रही थी; वाचाल सुनेत्रा बोलती रही—

‘फिर माँ, अत्यन्त अरुचि होते हुए भी, अंधविश्वासियों के मन में विश्वास उत्पन्न करने के लिए, गौतमबुद्ध उन पाटिकपुत्रों के सम्मुख सात ताड़ ऊँचे आकाश में उड़े और उतनी ही लम्बी ज्वाला उत्पन्न करके उसमें अदृश्य हो गये! माँ, उसी समय सब पाटिकपुत्र भिजसंघ की शरण में गये और उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली!’

पाली बोली—‘अर्थात् मैं भी दीक्षा ले लूँ? मुझे गौतम तथागत पर विश्वास नहीं है, वह इन्द्रजालिक है, जादूगर है, वशीकरण करने वाला है!’

पाली सहसा रुक गई; वह बहुत जुब्ब हो रही थी, उसने सुनेत्रा की ओर देखकर पूछा—‘तूने उन्हें देखा?’

‘हाँ माँ! मैंने उन्हें ज्वाला बनते हुए देखा; तथागत सर्वश्रेष्ठ हैं, दयामय हैं...!’

‘दयामय?’

‘हाँ माँ! दयामय हैं, स्नेहमय हैं, कल्याणमय हैं!...’

‘दयामय?’ पाली के ओठों से अस्फुट शब्द निकला।

सौंभ होने पर जब पाली महाउद्यान में पहुँची तब बौद्ध भिक्षुओं के डेरे पर

अकेला सिंह लिच्छवी आँसू बहाता हुआ खड़ा था। तथागत बुद्ध कुछ ही समय पहले अपनी शिष्यमंडलीके साथ साकेतकी ओर प्रस्थान कर चुके थे; और महापराक्रमी सिंह उनके वियोगसे व्यथित होकर, बालककी तरह रो रहा था। उसकी दृष्टि तथागतके प्रस्थान-पथकी ओर थी। पाली उसके बिलकुल समीप आकर खड़ी हो गई, जैसे श्रद्धाके पास निराशा हो !

‘किस बातका विचार कर रहे हो, सिंहराज ?’...पालीने धीरेसे पूछा।

‘यदि इस बार तथागत अपना वर्षावास लिच्छवियोंके बीचमें बितायें तो...’

‘तो अपना सर्वस्व उनके चरणोंमें रख दो, यही न ?’

‘हाँ, यही महत्वाकांक्षा है !’

‘तो तथागतको निमंत्रण देने तुम जाओगे ?’

‘यही चाहता हूँ..!’

‘उनके सब भिक्षुओंको भी...?’ पालीने स्वरमें आशा भरकर पूछा।

‘यही आकांक्षा है..नहीं तो जितने आ सकें उतने भिक्षुओंको ! उनकी शिष्यमंडली छोटी नहीं है ! जिस तरह सूर्य धीरे-धीरे तेज होता है उसी तरह तथागतका तेज भी धीरे-धीरे संसारियोंके हृदयको प्रकाशित कर रहा है ! आज, सहस्र ही नहीं, लाख लाख शिष्य उनकी आज्ञाके लिए प्रस्तुत हैं !’

‘तो क्या हम दोनों मिलकर उन सब शिष्योंको नहीं बुला सकते ?’

‘यदि सारी वैशाली मिलकर निमंत्रित करे तो अवश्य ही सब शिष्य आ सकेंगे !’

‘ऐसा ही होना चाहिए !..’ पालीने कहा, वह और अधिक कुछ कह न सकी। उसने ऊपर देखा, आम्रवृक्षकी एक पतली सी टहनీपर एक कोयल कूक रही थी। पाली, वृक्षके नीचे चौतरेपर बैठ गई; और उसे गम्भीरतापूर्वक देखती रही...एक दिन, सबसे पहिले उसने यहीं से संसारको देखा था; आज उसने संसारको समझ लिया था।

सात दिन बाद, वैशालीके वार्षिक महोत्सवके दिन, उसी वृक्षके आस-

पास, वज्रि और वैशालीके लिच्छविगण पालीकी प्रतीक्षामें बैठे थे; तब पाली के स्थानपर सुनेत्राने नृत्य प्रारंभ किया। पाली, देशनर्तकी बननेके पश्चात् पहिली ही बार यहाँ नहीं आई थी।

उसी दिन वैशालीमें बात फैल गई कि पालीमें कोई विचित्र परिवर्तन हुआ है।

दिन बीतने लगे; ज्यों ज्यों समय बीतता था त्यों त्यों पालीके दर्शन कम होने लगे।

महीने बीतने लगे; पालीका नगरमें आना जाना बिलकुल कम हो गया।

वर्ष बीतने लगे, पालीके लिए, संथागारमें लिच्छवियोंकी वार्षिक परिषद् के अतिरिक्त नृत्य करना असम्भव हो गया। विलासी धनिकों और राजाओंकी टोलियाँ पालीको देखनेके लिए तरसने लगीं।

पालीने माया ममता छोड़ दी थी। वही पाली जो देशके लिए कोई भी सेवा करनेके लिए तत्पर रहती थी अब केवल लिच्छवी परिषद्के सिवा किसी विषयमें रस न लेती थी।

प्रत्येक वर्ष वैशालीमें पहलेकी अपेक्षा, आगन्तुक भिक्षुओंकी संख्या बढ़ती गई। प्रत्येक वर्ष पाली अपना रोष निकालनेके लिए भिक्षुओंके पास जाती और फिर उनके उच्च आचार विचारोंसे प्रभावित होकर, दिनों दिन वह भिक्षुओंकी संगतिमें अधिक रहने लगी; किन्तु उसे विभल न मिला।

कई वर्ष बीत जानेपर भी पालीकी आशा नष्ट नहीं हुई। आधी वैशाली अब गौतमको मानने लगी थी। धीरे धीरे वैशालीसे अन्य धर्मप्रवर्तकों और अनुयायियोंका लोप होने लगा। तथापि संथागार पूर्ववत् ही था; प्रवेणी-पुस्तकके आदेश और लिच्छवी गणतन्त्रमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। ठीक दस वर्ष बाद पाली बुद्धानुयायी बनी।

आज पौ फटते ही बात फैल गई कि तथागत बुद्ध वैशालीमें आये हुए हैं। पालीने तुरन्त सुन्दर अश्वों वाला रथ तैयार कराया और सबसे पहिले कूटाराममें पहुँच गई; तथागतका आशीर्वाद लेनेके बाद उसने बहुत विनय

पूर्वक उन्हें भिक्षुक संघके साथ भोजनके लिए आमन्त्रण दिया। समदृष्टि के साथ साथ तथागत मनोवैज्ञानिक भी थे, उन्होंने पालीकी आस्था देखकर प्रसन्नता पूर्वक उसका आमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

एक ही प्रहरके बाद सारी वैशालीमें धूम मच गई। कई बुद्धानुयायी श्रेष्ठी और महाजेठुकगण पालीके यहाँ दौड़ गये। तथागत वहाँ एक ही दिन रुकनेवाले थे; प्रायः सब ही मुख्य शिष्यगण उनके साथ थे। सिंह लिच्छवी ऐसा सुन्दर अवसर हाथमेंसे जाने नहीं देना चाहता था; अन्य श्रेष्ठियोंकी अपेक्षा उसकी आस्था अधिक थी। उसने पालीसे बहुत प्रनुनय पूर्वक प्रार्थना की कि तथागतके भोजनका आमन्त्रण वह उसे दे दे; वह पाली चाहे उतना धन देनेके लिए तैयार था। आज बहुत दिनोंके बाद अचानक वैशालीके सब ही गणमान्य नागरिक पालीके प्रासादमें एकत्रित हुए थे। किन्तु पाली उससे मस न हुई; वह सदा अजित रही थी, आज तथागत और उनके शिष्योंको आमन्त्रण देनेमें सब पुरुषोंमें उसीकी जीत हुई।

दूसरे दिन नियत समयपर तथागत अपने शिष्योंके साथ आ पहुँचे; पालीका हृदय आशा और आनन्दके भूलेमें भूल रहा था। उसने स्वादिष्ट खाद्योंसे भोजन और भिक्षुओंको देनेके लिए वस्त्र प्रस्तुत रखे थे।

पालीने सोझास, अपने हाथोंसे भिक्षुओंको भोजन परोसा और उन्हें सन्तुष्ट किया।

भोजनसे निवृत्त होकर तथागतने अपने नियमानुसार पाली और आमन्त्रित नागरिकोंको पहले दान-कथा फिर शील-कथा और अन्य कथाएँ कहीं, और सबोंको प्रमुदित, प्रोत्साहित और सचेत करके अपने निवासको चले गये।

पाली जितनी प्रसन्न थी, उतनी ही निराश भी हुई। उसे विमल कहीं भी दिखाई नहीं दिया; यद्यपि उसने विमलसे मिलनेकी आकांक्षाको बहुत गुप्त रखा था।

दूसरे वर्ष, पालीने अपने प्रासादका तीन चौथाई भाग अलग करके वहाँ बौद्ध भिक्षुओंके लिए एक मठ बनवाया।

मठ पूरा तैयार हो जानेके बाद, एक दिन पालीने राजगृहकी ओर प्रस्थान किया। बीसों वर्ष पहिले वह इसी मार्गसे सदाके लिए प्रस्थान करने वाली थी; आज इसी मार्गपर रथमें बैठी पाली यही सोच रही थी। बहुत समयके बाद उसने अश्वोकी बागडोर अपने हाथमें ली थी। इस समय उसे किशोरावस्थाके उत्साह और आवेगकी अनुभूति हो रही थी। राजगृहकी सीमामें आ जानेपर पालीने रथ रोक दिया। दूसरे दिन सबेरे, जब तथागत भिक्षाके लिए नगरमें निकले तो पालीने उनके चरण पकड़ लिए। अत्यन्त आग्रहसे उसने तथागतसे अपनी शिष्यमण्डलीके साथ उसके घर आनेकी प्रार्थना की—‘भगवान, मुझे लगता है कि मैं अब संसारमें और अधिक न रह सकूंगी। मुझे कोई पुत्र पुत्री नहीं है; मैं अपना प्रासाद आपको समर्पित करने आई हूँ, आप इसे स्वीकार करें!’ तथागतने शांतिपूर्वक उसका आग्रह स्वीकार किया। पालीने हर्षाश्रु पोंछे, और तथागतके शिष्यों सहित चले जानेके कुछ समय बाद तक वह पराई धरतीपर पैर बैठी रही। जीवनमें पहली बार आज उसने मागधियोंकी भूमिपर पैर रखा था। उसकी आँखें मुँद गईं; हृदयमें रमे हुए पुत्र और उस पुत्रके पिताके स्मरणमें वह बैठी रही। यह वही भूमि थी, जिसकी वह स्वामिनी होती; यह वही पृथ्वी थी जिसपर उसके हृदय-धन राज्य करते थे; यह वही भूमि थी जिसपर उसके जीवनको आशा-निराशाके भूलेमें झुलाकर उसका पुत्र ग्राम-ग्राम भटकता था और यह वही धरती थी जिस पर उसके शांतिप्रदायी तथागत विहार करते थे। भूतकालकी स्मृति ससहा जागृत हो गई। भूतकालके दृश्य आँखोंके आगे क्लिप्तमिलाने लगे। वह हँसी, रोयी, फिर हँसी और एक दीर्घ निःश्वास लेकर वैशालीकी ओर प्रस्थान किया।

एक सप्ताहके बाद वैशालीके निवासी आश्चर्य-चकित हो गये क्योंकि पालीने समस्त भिक्षुसंघको निमंत्रित किया था। दूर देशोंके भिक्षुगण भी वैशालीमें एकत्रित होनेवाले थे। वर्षोंके बाद आज पुनः पालीका नाम घर घरमें लिया जाने लगा। निश्चित दिनपर तथागत अपने भिक्षुसंघके साथ वैशालीमें प्रविष्ट हुए। सारी वैशाली उनके दर्शनके लिए उमड़ पड़ी।

उस रातको पालीने अपने हाथों भोजन तैयार किया। सबेरे तथागत अपने शिष्यसंघके साथ पालीके घर आये; पालीने स्वागत किया। आज उसने एक नई बात देखी; तथागतके साथ भिक्षुगण तो थे ही किन्तु इस बार उनके साथ भिक्षुणियाँ भी थीं। अबतक महाप्रजापति गौतमीके नेतृत्वमें भिक्षुणीसंघकी स्थापना हो चुकी थी। पालीने उनका स्वागत किया और साथ ही साथ उनके भोजनकी तैयारी भी की।

पाली अपने हाथसे उत्कृष्ट खाद्य परोसने निकली। वह प्रत्येक भिक्षु और भिक्षुणियोंको देख देखकर रखती जाती थी। ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ती थी ल्यों ल्यों हृदयमें उत्सुकता और आशा निराशाका एकसाथ स्पन्दन होता था। धीरे धीरे निराशा बढ़ती गई; आगन्तुकोंमें विमल दिखाई न दिया। पालीने प्रयत्न किया पर आँखोंके आँसू रुक न सके।

पालीने अभी तक एक बात सोची तक न थी कि कहीं कल्याणमूर्ति तथागत उसके हृदयकी व्यथाको न जानते हों। अब पालीने अंतिम पंक्तिको परोसना प्रारंभ किया। एक, और दो के बाद जब उसकी दृष्टि तीसरे भिक्षुपर पड़ी कि सहसा उसके हाथसे पात्रका एक भाग खिसक गया। यदि सम्मुख बैठे हुए भिक्षुके तत्क्षण उसे पकड़ न लिया होता तो पात्रका सब खाद्यान्न बिखर जाता। जिसने पात्र सँभाल लिया, वह भिक्षुक विमल था।

पाली विमूढ़ सी देख रही थी; किसी अपूर्व भावसे उसकी आँखें चमक उठीं। विमलकी वह गम्भीरता दूर होकर उसका मुख मृदु मुस्कानसे विकसित हो उठा, आँखें मृदुतासे विहँस उठीं। इस श्रमणने अरहत्त्वको प्राप्त कर लिया था, अब वह स्थविर था। वर्षों अदृश्य रहनेके बाद उसे ज्ञानप्राप्ति हुई थी। तथागत दूरसे माँ बैठेको देख रहे थे। विमलने क्षीरपात्र सम्हालकर पालीके हाथोंमें रखा, पाली पुनः परोसने लगी। परोसनेके बाद वह सीधी अपने भवनमें चली गई। सुनेत्रा भी उसके पीछे पीछे गई; पाली शय्यापर लेट गई। सुनेत्रा उसका सिर दबाते हुए बोली—‘माँ...’ पालीने चौककर ऊपर देखा तो सुनेत्रा रो रही थी।

दूसरे दिन पौ फटते ही विमल पालीके प्रासादके सम्मुख आ खड़ा

हुआ; वह बिना बुलाये प्रासादमें प्रविष्ट हुआ। पाली घबराई सी उसके पास दौड़ आई; विमलने उसे शान्त किया।

‘देवि, चलो समय हो चुका।’

पाली स्तब्ध होकर एकटक देखनेके बाद बोली—कहाँ ?’

‘संसारसे दूर’

‘कहाँ ?’

‘निर्वाणपथकी ओर !’

‘निर्वाण ?’

‘माँ, तुम्हें मेरे साथ आनेकी इच्छा है न ?’

‘माँ !...स्थविर, इतने वर्षोंके बाद जिस शब्दको सुननेके लिए मैंने तड़प तड़प कर दिन, रात, महीने और कई वर्ष निकाल दिये, आज वही शब्द सुनकर मालूम होता है कि यदि यह नहीं सुनती तो अच्छा होता। मुझे संसारकी हर एक वस्तुसे अरुचि थी ! अब तुझे देखकर याद आता है कि मैं जीवित हूँ; बेटा ! तू कह वहाँ जानेको तैयार हो जाऊँगी, पर अब मुझे न छोड़ना।...नहीं तो मैं प्राण छोड़ दूँगी।’

‘इसीलिए तो लेने आया हूँ माँ, मेरे साथ चलो !’

‘यह तो कहा ही नहीं कि कहाँ ले जाएगा ?’

‘निर्वाणके पथको !’

इतना कहकर विमल स्थविरने माँको उपदेश देना प्रारंभ किया। धीरे धीरे मायाका पटल दूर होने लगा; ममता, मोह और क्रोध विलीन होने लगे। पालीके मनने काम और कुविचारोंको छोड़कर वितर्क, विचार और विवेकजन्य प्रीतियुक्त सुखको स्पर्श किया; जिसे ‘प्रथम-ध्यान’ कहते हैं। उसे फिर द्वितीय ध्यानावस्था प्राप्त हुई। तृतीय ध्यानावस्था प्राप्त हो जानेके बाद सुख और दुःखसे अलिप्त समतापूर्ण अन्तिम चतुर्थ ध्यान प्राप्त हुआ। उसके बाद उसे जन्ममरणका ज्ञान प्राप्त हुआ। वह जन्ममरणके कारणोंको समझ गई। उसे जन्म-मरण नष्ट करनेके उपाय दिखाई दिये। भावी जन्मोंका क्षय हुआ; पवित्र वर्तमानसे साक्षात्कार हुआ। अब उसे

करनेका कोई कार्य शेष न रहा। उसे सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया था। पाली धेरीने अर्हत्व पाया। अन्तमें 'पाली धेरी' के नामसे अरहत्त्वको पाकर वह बौद्ध-भिक्षुणी बनी।

दूसरे दिन पाली वैशाली छोड़कर चली गई; सारी नगरी विस्मित होकर यह घटना देखती रही। वह भिक्षुसंघकी शरणमें राजगृहकी ओर जा रही थी।

जीवनके अंतिम स्तरपर देशनर्तकीकी महान पाली, पुनः एक बार अपने गुरु, अपने ही पुत्रकी कृपासे महान बनी।

एक ही व्यक्ति, जिसे जानना चाहिए था वह इस घटनाको न जान सका; वह था—बिबिसार।

[१२]

‘मैं नहीं मान सकता, संजय !’

बिबिसार वृद्धत्वकी देहलीजमें पैर रख चुके थे, महामात्य संजयका उन्होंने जोरसे सिर हिलाकर विरोध किया—‘लिच्छविगण चाहे जैसे हों, वीर अवश्य हैं, वे एकाएक इतने शांत हो सकते हैं, यह बात मैं नहीं मान सकता।’

‘मुझे मानना पड़ा है महाराज; इन बीते आठ महीनोंमें मगध और अपरान्तकी किसी सीमापर ऐसी एक भी घटना नहीं हुई जिससे कहा जा सके कि मागधी और लिच्छविगण अभी भी लड़ते हैं !’

‘तब यह लिच्छवियोंकी कोई चाल होगी !’

‘नहीं, महाराज !’

‘तब लिच्छवी किसी रोगसे पीड़ित होंगे !’

‘अभी देखा, उन्हें नशा चढ़ रहा है।’

संजय, मैं तुम्हें प्रति दिन कहता हूँ कि अब तु बूढ़ा हो गया है; तू

बोलता बहुत है, मानता बिल्कुल नहीं !'

'देव, मुझपर भी लिच्छवियोंकी तरह नशा चढ़ रहा है !'

'ऐ...?'

'हाँ प्रभु, वैशाली और मगधकी सीमा पर एक थेरी बहुत घूमती रहती है। वह जहाँ जहाँ जाती है, लिच्छवी और मागधी लोग उसकी आज्ञा मानने के लिए सिर झुकाकर तैयार रहते हैं। वह जिस बातका निषेध करती है वह बात प्रत्येक लिच्छवी और मागधी प्रसन्नतासे मान लेता है।'

'मागधी और लिच्छवीगण एक हो रहे हैं ? जिस कार्यको मेरा विवाह भी सफल न कर सका वह एक थेरी सफल कर रही है ?...वह थेरी कौन है संजय !...उपचारा, पटाचारा,...किसागोतमी ?'

'नहीं, महाराज !'

'तो कोई नई थेरी होगी !'

'हाँ महाराज, संघमें आये उसे अभी एक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ; फिर भी वह अर्द्धत्त्वको पाकर संघमें प्रविष्ट हुई है। उस थेरीका मुख्य उपदेश यही है कि जिस तरह तथागतके मिश्रसंघमें सब कोई समान हैं वही तरह उनके अनुयायी लोग एक और अविभाज्य हैं। उसने एक छत्रके नीचे सबको खड़ा करके, पारस्परिक शत्रुता दूर करके, सबोंके हृदयमें मानवप्रेमके नये अंकुर बो दिये हैं !

'संजय, आज उसे राजमहलमें पधारनेका निमंत्रण दे दो !'

'वह राजमहलोंमें नहीं जाती महाराज !'

'यह बात ? तो संजय, तू मुझे उनके पास ले चल।'

'नहीं, देव, आपको वहाँ जानेकी आवश्यकता नहीं है...।'

बिंबिसार चौंक उठा; क्योंकि कहने वाला संजय नहीं था; किंतु ऐश्वर्य और अधिकारके मदसे मदमानी महारानी चलना थी। उसकी वाणीमें नम्रता की अपेक्षा अधिकार अधिक था। महाराजके पास आकर उसने संजयसे कहा—
'जब तक गोतमबुद्ध और उनका संघ जीवित है, तब तक थेरियोंकी कमी नहीं है। यह थेरी राजगृहमें किसीके यहाँ आने पर भी देखी जा सकेगी महामंत्री जी !'

‘महारानीजी, ये थेरी राजगृहमें आयेंगी...।’ संजयने कहा—

‘नगरश्रेष्ठीने उन्हें निमंत्रण दिया है; पवारणाः के बाद वे स्त्रियोंको उपदेश देनेके लिए यहाँ भी आयेंगी।’

‘कितने दिनोंमें, संजय ?’ बिंबिसारने अत्यन्त उत्सुक होकर पूछा।

‘इसी पूर्णिमाको..महाराज !’

‘पूर्णिमाको ?’ बिंबिसारने विस्मित होकर पूछा। ‘...’ ओह, पूर्णिमा !... महारानी, इस पूर्णिमाको युवराज अजातशत्रु रूठ गये थे, वे अभी तक मुझे भिँके भी नहीं ! जरा देख तो आओ, अभी तक क्रोध शांत हुआ या नहीं ?’

‘अपका पुत्र मेरा कहा मानेगा ? उसके हठाग्रहको आप बदल सकेंगे या मैं...?’

‘मगधकी महारानी, अब मैं बूढ़ा होने आया हूँ; शायद बोलनेमें कुछ भूल चूक भी हो गई हो, पर इतनी सी बातसे युवराजका इतना क्रोध ठीक नहीं मालूम होता, जाओ, उसे समझ लो !’

बिंबिसारके इन अंतिम शब्दोंमें अनुनय था।

चेलना अधिक कुछ न कहकर वहाँसे चली गई: उसे यह पसंद नहीं था कि महाराज रात दिन संजयके ही साथ रहें; यह बात संजय और बिंबिसार को ज्ञात हो गई थी, इसलिये चेलनाके जाते ही संजयने महाराजके बिस्कुल समीप आकर कहा—‘देव, जानते हैं वह कौन है ?’

‘कौन है ?’

‘पाली थेरी !’

‘हाँ...! हाँ वह कौन है संजय ?’

‘वह वैशालीकी है महाराज !’

‘वैशालीकी ?’ बिंबिसार सोचने लगा।

‘अभी भी न समझे महाराज ! वैशालीकी एक नर्तकी, लिच्छवी राष्ट्रकी

ः बौद्धभिक्षु वर्षमें आठ महीने घूमते रहते थे और चार महीने एक ही स्थान पर निवास करते थे; जिसे वे वस्मावास (वर्षावास) के नामसे पुकारते थे। वर्षावासके अंतमें होने वाली धार्मिक क्रियाका नाम ‘पवारणा’ था।

एक महान देशसेविका...

‘बस, संजय...आगे न बोल !’ मानों बिंबिसारके किसी मर्मस्थानपर आघात हुआ हो; फिर बोला—‘वह धेरी हो गई ? न होती तो करती भी क्या ? पर संजय, तुने मुझे इसका आज तक कुछ भी संकेत न किया ?’

‘वर्षोंकी विस्मृत घटनाको याद दिलाया उचित न लगा !’

‘तब आज ही क्यों याद दिलाई ?’

‘महाराज...’ संजयका स्वर बदल गया, उसके मुखपर भयका स्पष्ट आतंक छा गया था। सहसा बिंबिसारके निकट जाकर वह उसके गले लिपट गया और धीरेसे बोला—‘आप धेरीको देखनेका बहाना लेकर यहाँसे चले जायँ तो अच्छा है: धेरीसे पूर्णिमाके पहले सीमान्तपर मिलना ही हितकारी है !’

अर्थात्...’ संजयको अलग करके बिंबिसारने कहा। संजयने आस पास देखकर बहुत मन्द स्वरमें कहा—

‘महाराज, युवराज रुठे नहीं हैं, बात कुछ दूसरी ही है, वे चाहते हैं...’

बिंबिसारने तत्क्षण उसका हाथ पकड़ लिया और उसे झुकभोर बोला—‘क्या चाहता है, संजय ? शीघ्र कह... ! रुक नहीं, बात पूरी कह... !’

‘महाराज...देव !’

‘कह दे संजय, शीघ्र कह, युवराज क्या चाहते हैं ?’

‘राजसिंहासन !’

‘राजसिंहासन ?’...कहकर बिंबिसारने अट्टहास किया; सहसा रुककर धीरेसे बोला—‘राजसिंहासन तो उन्हींका है संजय ! अजात ही सिंहासनका सच्चा उत्तराधिकारी है !’

‘पर वे तो अभी ही उसे चाहते हैं !’

‘इसमें कौन-सी बड़ी बात है ? अभी ही ले ले...पर वह मेरे पास तो आये !’

‘आपके पास आयेंगे तो आप उनकी परीक्षा लेंगे !’

‘सिंहशावकको यदि शूरवीरनाकी परीक्षा देनी पड़े तो इसमें दुःख किस बातका ? मेरे पिताने अनेक परीक्षाएँ लेनेके बाद मुझे सिंहासन सौंपा था । मैं भी अजातकी परीक्षा लेनेके बाद ही सिंहासन सौंपूँगा...किन्तु सिंहासन तो उन्हींका है न !’

‘मेरे प्रभु, वे परीक्षा नहीं देंगे; वे तो पुराने रीति रिवाज और कुल परम्पराको एक ही झटकेमें तोड़कर राजसिंहासन लेना चाहते हैं !’

‘और मैं न दूँ तो ?’

‘तो... वे ऐसा होनेपर पिताको अलग करनेमें भी संकुचित न होंगे !’

‘इसीलिए तू मुझे सीमापर ले जाना चाहता है ? क्या राजनीति यही कहती है कि पुत्रके नादान होनेपर पिता भी नादान बन जाये ?’

‘राजनीति कभी भी केवल स्नेहवश होकर सिंहासन छोड़ देनेकी सम्मति नहीं देती !’

‘मित्र, तेरे गुप्तचरोंने भूल की है; ब्रह्मदत्तके सदाकी तरह बुढ़ापेमें भी मुननेमें भूल कर सकता है; अजात यह नहीं कर सकता... !’

‘देव, यह बात मेरी आँखों देखी, और कानोंसे सुनी हुई है !’

‘जिस पिताके हृदयमें स्नेहके अतिरिक्त कुछ नहीं है, अजात वैसा नहीं, जो यह बात जानकर, किसी भी मूल्यपर मुझसे सिंहासन लेनेको तैयार हो जाय... !’

‘आप पुत्रको कितना अगाध स्नेह करते हैं, यह सभी जानते हैं... यह स्नेह अंधा है !’

‘संजय !’

‘महाराज, मुझे भय मालूम होता है, आप शीघ्र यहाँसे चल दीजिए.... चलिए, हम थेरीके पास चलें !’ संजयने गद्गद् होकर कहा; उसका कण्ठ महाराजके प्रति भक्ति और दुःखसे भर गया था । बिंबिसार विस्मित होकर उसे देखने लगा; संजयने किसी दिन इतनी अनुनय नहीं की थी । तत्क्षण

बिंबिसारने निश्चय कर लिया और संजयके समीप बैठकर बोला—‘मैंने कुछ ही देर पहले सोचा था कि पालीसे मिल आऊँ, पर अब सोचता हूँ कि पहले पुत्रसे मिलूँ ! संजय, नगरश्रेष्ठीको कह दे कि वह शीघ्र ही आम्रपालीको उसके भिक्षुणीसंघके साथ ले आये ! मैं राजगृहमें दोनोंको ही पहिचान लूँगा; पुत्रको और...

‘पत्नीको !’ संजयने पूर्ति की ।

बिंबिसारने आर्द्र दृष्टिसे संजयको देखा जैसे कह रहा हो कि वह आम्रपालीका पति होने योग्य नहीं है !

संजयने भीगी पलकें पोंछी, और प्रणाम करके चला गया । बिंबिसार सोचने लगा; सारा संसार उसे विचित्र सा दिखाई दिया । आज यौवनके मदमय जीवनने उसे वृद्धत्वके द्वारपर लाकर खड़ा कर दिया था । जो चलना किसी दिन उसपर न्योछावर हो गई थी, आज उसके लिए महारानी पदके सिवा अन्य सब वस्तुएँ गौण थीं । पुत्र आज सिंहासन छीन लेनेके लिए उद्यत हो रहा था; और जिसे वह अब तक हृदय-स्वामिनी समझता था वह आज संसारसे विरक्त होकर धेरी बन गई थी । क्रमशः उसे जीवन और विशेषकर यौवनसे वृद्धत्व तककी सब घटनाएँ स्मरण होने लगीं । वह जीवनकी विगत स्मृतियोंमें विलीन हो गया—खो गया ।

जब चलनाने आकर द्वारकी देहरीपर बैठे हुए बिंबिसारको झकझोरकर सचेत किया, तब बहुत समय बीत चुका था । विचार-शृंखला टूटनेपर, उसने विस्मित होकर अनुभव किया कि उसके मनमें खेदके स्थानपर स्फूर्ति प्रकट हुई थी । उसका हृदय शान्त होनेके बदले अधिक चञ्चल हो उठा । उसने मन ही चलनापर, जो कि महारानी पदको ही अधिक महत्व देती थी, सब बोझ छोड़कर निर्वृत्त होना चाहा । वह प्रमाद और विश्रान्ति छोड़कर सहसा सचेत हो गया; मानों बुढ़ापेको नया यौवन मिला हो, अंधेको आँखें मिली हों; मानों मूकको वाणी मिली हो !

उसने यह देख लिया—महारानी चलनासे रात दिन राज्यभोगकी

बार्ते ही सुननेको मिलती थीं; दूसरी रानियोंके द्वारा क्रोध, द्वेष और रुदन मूर्ते-मान होते थे; नर्तकियोंके पाससे वह छिछला सम्मोहन मिलता जिसे संसारकी भाषामें ' सुख ' कहा जाता है ! शेषमें, उसे पुत्र-प्रेममें कुछ शान्तिकी अनुभूति होती थी, किन्तु आज वह भी मृग-जल ही प्रतीत हुई ।

आज उसे लगा कि वह एकाकी है; उसका कोई नहीं...! उसके जीवन में कोई नहीं है...यदि कोई था, तो वह पाली थी । उसने पालीको देखनेका निश्चय किया । इस निश्चयसे उसका मन स्फूर्ति और उत्साहसे विलसित हो उठा ।

पाँचवे दिन पूर्णिमा आ गई । संध्या होनेमें अब कुछ ही देर थी । बिंबिसारकी प्रतीक्षामें संजय और ब्रह्मदत्त एक गुप्त आवासमें इधरसे उधर टहल रहे थे । बिंबिसार आ गया; उसे देखते ही ब्रह्मदत्तके मुँहसे एक हल्की चीख निकल पड़ी—आज बिंबिसारने राजवेष छोड़कर कठपुतलीवालेका स्वाँग रचा था; काले बालोंके बदले श्वेत केश धारण किये थे । चेहरेपर झुर्रियाँ होते हुए भी, एक विशिष्ट प्रकारका ओज था, जो पच्चीस वर्ष पहिले जैसा ही था, जब जीवनमें प्रथम बार बिंबिसारने कठपुतलीवालेका अभिनय किया था ! शीघ्र ही संजय और ब्रह्मदत्तने भी अपने भेष बदल डाले और वे तीनों गुप्त-द्वारसे पालीको देखनेके लिए निकल पड़े, जो आज राजगृहके नगरश्रेष्ठीके यहाँ प्रवचन करनेवाली थी ।

राजगृहके मुख्य चौराहेपर नगरश्रेष्ठीका महल था; उसके पीछेके उद्यान में आज नगरकी असंख्य स्त्रियाँ एकत्रित होकर आम्रपालीका उपदेश सुन रही थीं । सभी स्त्रियाँ उच्चकुलकी थीं; जहाँ जहाँ दृष्टि पड़ती, हीरे, नीलम, प्रवाल और स्वर्णके बहुमूल्य अलंकार जगमगाते हुए दिखाई देते थे; दूसरी ओर, निर्धन और निम्न वर्गकी स्त्रियाँ भी बैठी थीं ।

इन सबोंके बीचोबीच, कुछ ऊँचे आसनपर बैठकर पाली उपदेश दे रही थी; काषायवस्त्र पहिनेसे उसका दिव्य तेज प्रोज्ज्वल हो उठा था ।

यह उपदेशका अन्तिम भाग था; पाली मनुष्य-देहकी असारता समझा

रही थी। स्त्रियोंके पीछेकी ओर नगरश्रेष्ठीके सिवा अन्य कई प्रमुख नागरिक बैठे थे; तीनों कठपुतलीवाले धीरेसे उनके पास आकर बैठ गये।

सभा शांतिपूर्वक सुन रही थी; पाली निर्विकार, अलिप्त और अगार्थिव सी बनकर वाणीका दिव्य स्रोत बहा रही थी।

आज कठपुतलीवाला बिंबिसार, पूरे पच्चीस वर्षोंके पालीको शांतिपूर्वक देख रहा था। पालीके शब्द उसके हृदयपर आघात करते हुए निकलने लगे—

...‘एक दिन मेरे भी सुन्दर केश थे, हीराजटित चक्र, और बारीक तारोंसे सुव्यवस्थित मेरी अलकें कवियोंकी कविता बनती थी। मेरा शरीर चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थोंसे महकता था। नित नये श्रृङ्गारोंसे सज्जित होकर मेरी देहसुषमा दूसरोंकी ईर्ष्याका कारण होती थी। मेरी स्वर्णकान्तियुक्त देह-छट्टा किसी शिल्पकारकी कला द्वारा निर्मित प्रतीत होती थी; मेरी आँखें हीरेकी तरह चमकदार थीं जो सम्मुख होने ही दूसरेकी दृष्टिको चौधिया देती थी। मेरी बाँहें जो कमलनाल सी प्रतीत होती थीं, वे सब आज नहीं हैं। रक्त-मांससे भरे हुए अंग प्रत्यंग आज मुरझा गये हैं। मेरा स्वर्णकान्ति-वाला अनूप शरीर आज भुर्रियोंसे भर गया है और अहर्निश स्वर्णनूपुर बाँधकर थिरकनेवाले चरण आज दुर्बल हो गये हैं। जिस स्त्रीको अपने शरीर-सौंदर्यका गर्व है उसे समझ लेना चाहिए कि उसका अंत ऐसी ही परिस्थितियों में होगा। देहकी ममता मिथ्या है; जो आज है वह कल नहीं! शरीरसे प्राप्त सुख और अनुभूति अनित्य है। दुःख नित्य है, और उसमेंसे कूटनेका प्रयत्न करना ही प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है।’

सौंदर्य-देवियाँ सचमुच दुःख और क्लेश भूलकर प्रसन्नता और शांतिपूर्वक आम्रपालीका उपदेश सुनकर मुग्ध हो रही थीं। प्रवचन समाप्त हुआ।

फिर वन्दनविधि प्रारंभ हुई। संजयने देखा कि बिंबिसार आम्रपालीको देखनेमें तल्लीन है; वह अब क्या करेगा, यह कौतूहल संजय और ब्रह्मदत्त दोनोंके हृदयको उत्सुक बना रहा था।

क्रमशः स्त्रियोंने आकर आम्रपालीके चरणोंमें मस्तक झुकाया और प्रदक्षिणा देकर जाने लगीं। अंतमें पुरुष भी उठे। सस्मित आशीर्वाद देने समय पाली, अमृत बरसाती हुई किसी दिव्यलोककी तपस्विनी प्रतीत होती थी। धीरे धीरे बिंबिसार भी उसके समीप पहुँचा; प्रेममयी श्रद्धासे संजय और ब्रह्मदत्तकी आँखोंमें नीर भर आया।

किंतु पाली अब उस स्तरपर पहुँच चुकी थी जहाँ भावोंकी लीला, दुःख और सुख, प्रेम और घृणा, क्रोध, मोह और तृष्णाके खेल नहीं खेलती; जहाँ स्त्री और पुरुषकी भिन्नता प्रतीत नहीं होती। जहाँ लौकिक और पारलौकिक का भेद नहीं होता। जहाँ दुःख और कार्योंसे रहित सनातन शांति होती है; पालीने उस 'निर्वाणपद'को प्राप्त कर लिया था।

धीरे धीरे बिंबिसार पालीके चरणोंके पास आ पहुँचा। दूसरे भक्तोंकी तरह उसने भी चरण छूनेके लिए हाथ बढ़ाये; मस्तक चरणोंमें झुका दिया। उसका मन विश्वास दिला रहा था कि पाली उसे आशीर्वाद देगी; उसे प्रेम भरी आँखोंसे देखकर क्षमा कर देगी !

पालीने आशीर्वाद तो दिया, किंतु उसने चरणोंमें झुके हुए बिंबिसार को—कठपुतलीवालेको, देखा नहीं; उसकी दृष्टि दूरसे नमस्कार करते हुए नगर-श्रेष्ठी और उसकी पत्नीकी ओर थी। जब उसने नीचे दृष्टि की तब कोई अन्य भक्त उसके चरणोंमें झुका हुआ था; उस समय बिंबिसार, संजय और और ब्रह्मदत्त आशीर्वाद लेकर दूर खड़े थे।

बिंबिसारने संजय और ब्रह्मदत्तको मनकी बातें बिल्कुल गुप्त रखनेका आदेश दिया; वह एकटक पालीकी ओर देख रहा था। दिव्य मुस्कान के साथ पालीने एक बार चारों ओर दृष्टि डाली—उसकी आँखोंने तीनों कठपुतलीवालोंको भी अन्य सामान्य श्रोताओंकी तरह देखा। येही आम्रपाली ने कठपुतलीवालोंको किसी विशेष दृष्टिसे नहीं देखा, और न पहिचाना ही; क्योंकि देशनर्तकी आम्रपाली तो कई दिनों पहिले मर चुकी थी।

आम्रपालीने देशके लिए अपने अनेक सुखोंका बलिदान किया था; आज वह संसारसे दूर रहकर भी दोनों बिरोधी राष्ट्रोंकी सेवा कर रही थी।

बिंबिसारने मनसे पूछा—पाली क्या अभी भी भूतकालको याद करती होगी ? क्या अभी भी उसके हृदयमें अपनी बीती स्मृतियाँ जीवित होंगी ?...वर्षोंसे दबी हुई पालीकी स्मृति जागृत हो गई । बिंबिसार को लगा कि वर्षों पहिले उसने जिस बुद्धिको जान बूझकर गँवा दिया था, आज वह पुनः उसे मिल गई; वर्षों पहिले देखा हुआ संसार पालीको देखनेसे उसे बिलकुल बदला हुआ दिखाई दिया ।...

रानियाँ मिलीं, राजपुत्र हुए, राज्यकी वृद्धि हुई और साम्राज्य निर्मित हुआ; किंतु अनेक वर्षोंसे हृदयका जो स्थान पालीके लिए रिक्त था वह पाली के सिवा कोई भी भर न सका था; इस बातका प्रत्यक्ष अनुभव उसे आज हुआ । अर्हत्व प्राप्त हो जाने पर भी आम्रपाली, बिंबिसारके हृदयमें तो अब तक संसारी बनकर ही बैठी थी । पाली अपनी शिष्याओंके साथ उसके पाससे निकल गई तब ही बिंबिसार जान पाया कि 'थेरी पालीने संसारका त्याग कर दिया है, और संसारी पाली, अब पूर्णरूपेण उसकी हो गई है ।

थेरी पाली अपनी शिष्योंके साथ अनेक जयनादोंके बीच नगरके राज मार्गपर जा रही थी; उन्हें वैशालीकी ओर जाना था । उनके पीछे पीछे बिंबिसार भी नगरके बाह्य प्रवेश-द्वार तक गया ।

संध्या हो चुकी थी; धीरे धीरे मिथुणियाँ दूर होने लगीं; बिंबिसार निर्मेष दृष्टिसे उन्हें देख रहा था ।

सहसा कई सैनिकोंने उन तीनोंको घेर लिया । बिंबिसार अभी भी जाती हुई पालीको देख रहा था; संजयने जब उसका हाथ जोरसे खींचा तब ही उसे मुध आई । एक सैनिकने अधिक शिष्टाचार न करके कहा—'अविनय के लिए क्षमा करें; किंतु आपको हमारे साथ चलना होगा !'

बिंबिसार, सिपाहियोंको विस्मित दृष्टिसे देख रहा था, वे उसका छद्म-वेश कैसे जान गये ?...संजयने आगे बढ़कर कबे स्वरमें पूछा—'कहाँ ?'

'आप जानते हैं, कारावासमें ! यह प्रभु अज्ञातशत्रुका आदेश है !'

'अज्ञातका आदेश, मुझे कारागृहमें डालनेका ? बिंबिसारने और अधिक

विस्मित न होकर पूछा ।

‘जी, आप भागनेका व्यर्थ प्रयत्न न करें; सारे नगरमें गुप्तचरोंकी ऐसी कठिन व्यवस्था है कि कोई भी आपके लिए तलवार नहीं उठा सकता ! सबोंने महाराज अजातशत्रुके सम्मुख यही स्वीकार किया है कि आप अस्थिरचित्त हैं, और वे भी यही मानते हैं कि आप विजित हैं ! अब आपके लिए हमारे साथ आनेके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं है !’

‘भले ही अजात मुझे कारागारमें डाल दे...किंतु विजित बनाकर...’

‘महाराज !’ संजयने तलवार पर हाथ डालकर कहा ।

‘संजय !’...बिंबिसारका स्वर बदल गया था; उसने इधर उधर दृष्टि डालकर कहा—‘मारने और मरनेमें कोई लाभ नहीं है—पाली कहती थी कि मरकर फिर जन्म लेना होगा !...दूर रहो सैनिकों, मैं तुम्हारे साथ आता हूँ .. कहोगे तो पागल बनकर भी ! किंतु मेरी एक बात मान लो, मुझे उस भिक्षुणी-संघको देख लेने दो !’

सैनिक तत्क्षण अलग हो गये । बिंबिसार शीघ्रता-पूर्वक आगे बढ़ा और एक विशाल वृक्षके पास आ खड़ा हुआ; संध्याके मंद प्रकाशमें पाली और उसकी भिक्षुणियाँ वृक्ष श्रेणियोंमें अदृश्य हो रही थीं । एक कोयल कूक उठी । बिंबिसारने ऊपर देखा—वह आम्रवृक्ष था । उसे याद आया कि आम्रवृक्षने ही पाली को आसरा देकर संसारके कारागारमें भेजा था । बिंबिसारने मुस्कराकर वृक्षपर से आँखें हटा लीं और अंतरिक्षकी ओर अंतर्हित होती हुई पालीको देखने लगा । वायु, दूरसे भिक्षुणियोंकी गीत-ध्वनि खींचकर ला रही थी—‘बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि...’

बिंबिसार उसी स्तब्ध अवस्थामें धीरे धीरे भिक्षुणियोंके उन शब्दोंको ओंठोंमें बोला और एक दीर्घ निःश्वास फेंककर संजयकी ओर देखा ।

‘जल संजय, कारागारमें !...एक पुत्रने माताको संसारके कारावाससे मुक्त किया, दूसरा पुत्र पिताको कारावासमें डाल रहा है...!’

‘देव...’ आँखोंमें आँसू भरकर संजय मुस्कराया; बोला—‘कठपुतली वाला कुशल नट नाटक समाप्त करनेके बाद हँसत’ है...’

‘वह यह समझकर हँसता है कि रंगभूमि पर कठपुतलियाँ ही हैं ! मुझे पितार्जाने यही याद रखनेको कहा था, पर मेरी बातें तो तू ही याद रखता है, अच्छा..चन संजय !’ इतना कहकर बिंबिसार, संजयका हाथ पकड़कर सैनिकों के आगे चलने लगा । ब्रह्मदत्त क्षणमें वृक्षोंमें अदृश्य होती हुई पालीकी ओर तथा क्षणमें बिंबिसारको देखता हुआ, निःश्वास छोड़कर उनके पीछे पीछे चलने लगा ।

: समाप्त :

नहि वेरेन वेरानि सम्मन्ती कदाचन ।

अवेरेन च सम्मन्ती एस धम्मो सनन्तनो ॥

बैरसे कदापि वैर नष्ट नहीं होता; प्रेमसे ही नष्ट होता है । यही सनातन धर्म है ।

गौतम बुद्ध

यमकवर्ग, धम्मपद

मुद्रक : श्री कन्हैयालाल; दी ओरियन्ट प्रिंटिंग हाउस,

नईवाड़ी, दादीसेठ अग्यारीलैन, बम्बई २.

प्रकाशक.: अेम. के. वोरा, वोरा अ्रेन्ड कंपनी पब्लिशर्स लिमिटेड
राउन्ड बिल्डिंग बम्बई २.

शुद्धि-पत्र

अनावश्यक विरामादि सहित, निम्नलिखित अशुद्धियोंको पाठक कृपया सुधारकर पढ़ें ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६	२२	सुधीरने	संजयने
२९	२२	मुख	प्रमुख
७६	२२	स्वार्थवाह	सार्थवाह
८२	४	महानाममे	महानामने
१०६	१६	बैठा	बैठा था
१०७	६	पीछ	पीछे
११४	१४	आद	आप
१३४	१	तीक्ष्ण	तीक्ष्ण
१४९	९	सर्वज्ञाता	सर्वज्ञता
१६१	१७	तरहके	तरह तरहके
१७३	९	अभराज	अभयरज
१७४	२०	वषका	वर्षकी
१७६	१४-१६	निर्मिमेष	निर्मिमेघ
१०७	९	तूम	तू
१११	५	कगठ	कगठ-स्वर
११३	३	पकड़कर	पड़कर

‘आम्रपाली’ के लिए

विभिन्न साहित्यिकों, और पत्रकारों के उद्गार

उपन्यास के क्षेत्र में भाई रामचन्द्र ठाकुर का यह प्रयास पहला होते हुए भी अत्यन्त आकर्षक है।

आपका चुना हुआ विषय, बौद्धकालीन भारत, अपनी प्रभावशाली शैली के कारण सम्मोहक बन पड़ा है। आपकी व्यक्त करने की कला एक विशेष क्षमता रखती है, जिसको लेकर पूरा उपन्यास रस से पढ़ा जा सके।

गुजराती-साहित्य में आपका प्रथम-सत्कार करते हुए मुझे आनंद होता है।

—श्री० कन्हैयालाल मा० मुंशी

बौद्ध-कालीन भारत का चित्रण बहुत ही सफलतापूर्वक किया गया है ! इस प्रकार आपने एक अत्यन्त मनोरंजक उपन्यास लिखने के साथ ही इतिहास की भी बड़ी अमूल्य सेवा की है।

—प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता:

श्री० व० गौरीशंकर ही० ओझा

गुजराती-भाषा-भाषी पाठक एक बार इसे अवश्य पढ़कर देखें; कारण, आम्रपाली, भारतीय नारीत्व के अधिकतम अपमान और उच्चतम लांछना का ज्वलंत उदाहरण है। निलास-प्रिय पुरुषों के कठोर विधान पर नारीत्व के बलिदान की यह कृष्ण एवं लज्जास्पद कहानी, भारत के सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पतन की यथेष्ट परिचायिका है। भारत में स्वातन्त्र्य-पूजा और सम्मान के रूप में पशुबल की वेदी पर मूक नारीत्व का जो बलिदान एक दीर्घ छाल से होता आया है, आम्रपाली, उसका एक दुःखद प्रतीक है। भारत के अधःपतन के कारण और नारीत्व की लांछना को समझने में यह उपन्यास काफी सहायक होगा।

—विशाल-भारत’

‘आम्रपाली’ के रचयिताकी दूसरी कृति

‘बीरबल’

(सचित्र)

यों तो जनसाधारणमें, यहाँ तक कि अशिक्षितोंमें भी अकबरके दरबारी या साथी बीरबलके विषयमें सैकड़ों किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। ‘बीरबल-विनोद’-जैसी अनेक पुस्तकें बीरबलके नामसे लिखी गई हैं, जिसमें उसे कहीं विदूषक और कहीं हाज़िरजवाब बतानेका प्रयत्न किया गया है। जो भी हो ऐसी किंवदंतियोंको, जो बीरबलके नामसे चाहे जिस रूपमें हिन्दुस्तानके जनसाधारणमें प्रचलित हैं, आजकलकी शिक्षित जनता बनावटी और सिर्फ़ मनोविनोदके लिए गढ़ी हुई समझती है; और ऐसी किंवदंतियोंपर विचार करनेसे यह बातें सही भी मालूम होती हैं।

यह उपन्यास, ‘बीरबल’ के विषयमें अधिकतम सचाई जाननेकी प्रबल उत्कंठाका परिणाम है। कई भाषाओंके सैकड़ों ग्रन्थोंकी छानबीन और अनुसंधान तथा मनन-पठनके बाद इतिहासके निकटतम रहकर, कल्पनाका अनुकूल रंग देते हुए भारतके इस महान राजनीतिज्ञ, विद्वान और मनीषी व्यक्तिका चित्रण इस उपन्यासमें किया गया है। हम विश्वासके साथ कह सकते हैं कि मनोरंजक प्रसंगोंसे परिपूर्ण यह उपन्यास इतिहासप्रेमी शिक्षितोंके मनमें, उपेक्षा दूर हटाकर, महान् ‘बीरबल’ के विषयमें सचाईसे अवगत करानेमें सहायक होगा। ‘आम्रपाली’ के ही अनुवादक द्वारा अनुवादित यह पुस्तक कुछ ही महीनोंमें १२ से अधिक तिरंगे चित्रों सहित रसिक पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत होगी।

आम्रपालीके रचयिताकी तीसरी कृति:—

मीरा प्रेमदीवानी

इस नामसे भारतका कोई भी व्यक्ति अपरिचित नहीं। भक्ति, श्रद्धा, प्रणय और साहित्यमें मीरा समान रूपसे प्रसिद्ध है।

भारतीय नारीत्वकी एक अत्यावश्यक मर्यादाका उल्लंघन करके भी मीरा, भारतमें उसनी ही आदरकी पात्र है जितनी कोई सती ! मेवाड़की इस महारानीका गिरधर गोपालके पीछे दीवानी बनकर राजपाट, वैभव और सुख-भोग सब कुछ छोड़ देना, भक्तके लिए साधारण किंतु एक नारीके लिए असाधारण बात है। यह उपन्यास, भारतीय नारीत्वकी कसौटी पर कसनेके बाद, इस भक्तनकी भक्ति और प्रणयका मनोवैज्ञानिक चित्रण है।

भक्ति और रुढ़ श्रद्धाकी अलौकिकता और चमत्कारसे दूर रहकर, शुद्ध-रूपसे, एक साधारण मानुषीकी अनुभूत होनेवाले सुख दुःख, आशा-निराशा, और मानसिक उत्थान-पतनका मनोवैज्ञानिक और सजीव चित्रण, लेखकके अपने नये दृष्टिकोण और शैलीको लेकर इस उपन्यासमें सन्निद्ध है।

कथावस्तु, लेखककी अन्य कृतियोंकी तरह पर्याप्त अध्ययनका परिणाम है; यह बात पढ़नेके बाद पाठक अच्छी तरहसे जान सकेंगे।

